निस्सन्देह, इस पुस्तकने अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है, हर हिटलरके तानाशाही-विंचारोंके कारण नहीं, जर्मनीकी भविष्यत् क्रांतिके लिये इसमें बहुत कुछ मसाला है। भविष्यत्-क्रांतिकारियोंको इस पुस्तकसे बहुत कुछ मदद मिलेगी। वह शुभ दिन जल्द आयेगा जब दुनियांको यह शुभ सम्वाद सुनाई पड़ेगा कि जर्मनी तानाशाही का परित्याग कर साम्यवादकी ओर बड़े ज़ोरोंसे बढ़ रहा है।

चन्द शब्द इसके अनुवादके बारेमें कह देने जरूरी हैं। अनुवादकने चेष्टा की है कि अनुवाद .मूलके सादृश्य ही रहे और इसमें उसे सफलता भी मिली है। कहीं कहीं तो अनुवाद मूलसे भी अच्छा हुआ है। इस पुस्तककी हिन्दी भाषामें बड़ी आवश्यकता थी, इसका अनुवाद कर अनुवादकने एक बड़े अभावकी पूर्ति की है। हिन्दुस्थान राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक क्रांतिके लिये जी-जानसे प्रयत्न कर रहा है, उसके नौजवानोंको इसे अवश्य पढ़ना चाहिये। यह पुस्तक निराशाके निविड़ अन्धकारमें मसालका काम करेगी।

हिन्दीमें राजनीतिक पुस्तकोंका नितान्त अभाव है, अनुवादककी इच्छा है कि वह हिन्दीमें महत्वपूर्ण राजनीतिक साहित्यका निर्माण कर, राष्ट्र-भाषा-भण्डारकी श्री-वृद्धि करे। अनुवादककी इस महत्वाकांक्षाका हम हृदयसे स्वागत करते हुए, हिन्दी-पाठकोंसे अनुरोध करते हैं कि वे इस पुस्तकको अपनायें।

स्वाधीनता दिवस
२६ जनवरी १९३८ } (हस्ताक्षर) दयाराम बेरी।

मेरा जीवन-संग्राम—

पुस्तकके अनुवादक—

तरुण साम्यवादी, श्री कृष्णचन्द्र बेरी

लेखककी भूमिका

"नेशनल सोशलिष्ट जर्मन वर्कर्स पार्टी"ने अपने नन्हेसे जीवनके चौथे सालमें पदार्पण किया था। मगर इसी वक्त ६ नवम्बर सन् १९२३ ई०को यह गवर्मेन्टके द्वारा खत्म कर दी गई और आइन्दाके लिए इसपर कानूनी प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इतना ही नहीं, इसीके साथ ही साथ सन् १९२४ ई० में म्यूनिकके राष्ट्रीय न्यायालय के द्वारा मुझे "लैण्सबर्ग अम लीच"के किलेकी चहारदीवारीके अन्दर सजा भोगनी पड़ी।

कई सालोंकी लगातार मिहनत और मशक्कतके बाद आज मुझे यह मौका मिला है कि मैं गत बातोंकी आलोचना करूं क्योंकि मेरे इस कामको सभी पसन्द करते हैं और अपने आन्दोलनके लिये मैं भी इसे फायदेमन्द समझता हूं। इसके अलावा अपने आन्दोलनके उद्देश्योंको समझानेके लिये और उसके विकाशके इतिहासकी एक झलक देनेके लिये मैने पुस्तक लिखना शुरू किया है। कोरे सिद्धान्त की पुस्तकोंकी अपेक्षा इसमें जानकारीका काफी मसाला मिलेगा और पुस्तकके सहायकके रूपमें कुछ अंशोंमें मेरी रामकहानी भी मिलेगी। बदतमीज यहूदी अखबारोंने मेरे मुतअल्लिक़ जो गलत फहमियां फैलाई हैं उनका भी इसमें समाधान किया गया है।

इस पुस्तकमें मै उन लोगोंको हरगिज़ नहीं मुतवज्जह करना चाहता जो मेरे आन्दोलनसे खिंचे हैं बल्कि महज उनलोगोंको जो

इसके हिमायती और मददगार हैं, और कुछ जाननेकी दिलीख्वाहिश रखते हैं।

मैं खूब समझता हूं कि दुनियांमें आजतक जितने महान कार्य हुए हैं, वे लेखकोंके द्वारा हरगिज़ नहीं हुए हैं किन्तु महान वक्ताओंके द्वारा और यह ध्रुव सत्य है कि वक्तृता-शक्ति लेखन शक्तिसे कहीं बढ़ कर है।

यद्यपि मेरी यह पुस्तक कोरी सिद्धान्तकी पुस्तक नहीं है जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूं किन्तु, फिर भी किसी भी सिद्धान्तकी पुष्टिमें तारतम्य स्थापित करनेके लिये कुछ खास नियमोंका रखना जरूरी है।

हमारा विशाल जर्मन राष्ट्र आज गौरवमय है, हमारा दल पहले की अपेक्षा कहीं अधिक शक्तिशाली एवं सुदृढ़ है। हम सभी मिल कर अपने राष्ट्रका निर्माण कर रहे हैं। ईश्वर करे सहकर्मियोंके सहयोग-दानमें मेरी यह पुस्तक प्रकाश-स्तम्भका काम करे।

Adolf Hitler

(एडल्फ हिटलर)

सूचीपत्र

प्रथम खण्ड ।

द्वितीय खण्ड ।

मेरा

जीवन-संग्राम।

पहला अध्याय।

मेरा घर।

सौभाग्यवश मेरा जन्म ब्रौनोशहरकी एक पहाड़ीपर हुआ। यह छोटा शहर उन दो जर्मनराज्योंकी सीमापर बसा हुआ है, जिनका पुनर्गठन करना हम नवयुवकोंका एकमात्र लक्ष्य है। जर्मन एवं अस्ट्रियाका एकीकरण आर्थिक समस्याको लेकर नहीं वरन जर्मन मातृभूमिकी सेवाके लिये है। इतना ही नहीं, यदि उस एकताको हम आर्थिक दृष्टिसे देखें जो कि वास्तवमें हानिकारक एवं लज्जाजनक है तथापि जर्मनी-अस्ट्रियाका सम्बन्ध अनिवार्य है। हमारा खून एक है, समयानुसार हमारे स्वार्थ भी एक हो हैं। अपने भाइयोंका संगठनकर जर्मन राज्योंमें पुनः मैत्री स्थापन किये बिना जर्मनोंको उपनिवेश नीतिमें दखल देनेका कोई भी अधिकार नहीं है। क्या जर्मनी उपनिवेशोंपर अधिकार जमा उन्हें अपनी आवश्यकताओंकी पूर्त्तिका

साधन बनानेका नैतिक अधिकार रखता है ? नहीं, तब तक नहीं, जबतक कि जर्मन-जनतामें भ्रातृत्वभावकी भावना जागृत हो उसे आदर्शवादी होनेका आदेश दे। हमारे भ्रातृत्वका आदर्श ही हमारे धन-वैभवकी समृद्धिका सूचक है। इस प्रकार सीमान्त-प्रदेशीय यह छोटा नगर मुझे एक महानकार्यकी पूर्त्तिका साधक प्रतीत होता है।

"क्या हम अन्य जर्मनोंकी तरह भाई-भाई होनेका दावा नहीं रखते ? अथवा हम एक खूनके नहीं हैं ?" यह समस्या बचपनमें मेरे विचारोंको हमेशा उभाड़ा करती थी। जब मैं इन तुच्छ विचारों पर विचार करने बैठता था,तभी मेरे दिलमें एक प्रकारकी कसमसाहट सी हो उठती थी। अन्तमें मैं इस निर्णयपर पहुंचा कि वास्तवमें सभी जर्मन बिस्मार्क-घरानेके लोगोंकी तरह भाग्यशाली नहीं हैं।

मैं सरकारी नौकरीके नामसे ही सौ कोस दूर भागता था। विभिन्न विचार-संघर्ष तथा अकाट्य दलीलोंसे भी मैं अपनी धारणासे तनिक विचलित न हुआ। बचपनमें मेरे पिताजी मुझसे सरकारी नौकरीकी प्रशंसाके पुल बांधा करते थे। उन्हें इससे अत्यन्त ही आनन्द प्राप्त हुआ होता यदि मैं सरकारी आफिसमें किसी बड़े ओहदेपर काम करता। परन्तु मेरे विचार ठीक इसके विपरीत थे। मै नौकरी पेशाके विचारोंको पास भटकाना भी नहीं चाहता था। मेरी यह धारणा होगई थी कि आफिसोंमें बैठ समयका पाबन्द होते हुए फार्म भरते भरते मेरी जिन्दगी व्यर्थ ही बीत जायेगी।

अब जब मैं अपने उन विचारोंका ध्यान करता हूं तो मुझे उनसे दो लाभ स्पष्ट प्रतीत होते है, (१) मेरे राष्ट्रीय विचार

तथा (२) इतिहासको उसके वास्तविक रूपमें समझनेकी शक्ति।

प्राचीन अस्ट्रियामें अनेकों स्वातन्त्र्यप्रिय जातियां थीं। मुझे उन दिनोंका भलीभांति ध्यान है जब कि मैंने तत्कालीन अस्ट्रियाके एक राजनीतिक आन्दोलनमें भाग लिया था। मै उस समय एक स्कूलमें पढ़ता था। उस समय मेरी अवस्था १४ या १५ वर्षकी थी। उक्त स्कूलमें हमलोगोंने एक बाल-राजनीतिक-समिति खोल रक्खी थी। वह अपने विचारोंके लिये प्रमुख मानी जाती थी। हमलोग चेताव-नियों और सजाके प्रतिवादमें निन्दाके प्रस्ताव पास करते थे और गाया करते थे कि "उचित न्यायतः मांग हमारी।" इस प्रकार राज-नीति युवकोंके लिये जीवन-संगिनी स्वरूप हो गई। यह परिवर्त्तन अभूतपूर्व था। इसमें क्रान्तिके शोले थे। पहले जमानेमें इतनी कम उम्रके युवक अपनी मातृभाषाके अतिरिक्त किसीभी अन्य राष्ट्रीय भावोंमें रुचि नहीं रखते थे। ऐसी दशामें इतना परिवर्त्तन भी समय को देखते हुए कम न था। उन दिनोंमें मेरे विचार किसी हालतमें भी कम उग्र न थे। मैं शीघ्र ही एक कट्टर जर्मन देश-भक्त बन गया, परन्तु वैसा नहीं जैसा आज माना जाता हूं।

बहुत शीघ्र ही ये विचार उन्नतिशील एवं दृढ़ हो गये और पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें ही मै राजभक्ति और जनप्रिय राष्ट्रीयताके महत्व को भलीभांति समझ गया। राजभक्तिके विषयमें पहलेसे ही मुझे बहुत कुछ ज्ञान था।

नित्यप्रति घटनेवाली राजनीतिक घटनाओंने जिन्हें कि हम स्वयं देखा करते थे, हमारे हैप्सवर्ग घरानेके ऐतिहासिक ज्ञानकी ओर भी

पुष्टि कर दी। उत्तर तथा दक्षिणमें विदेशियोंका प्रभाव हमारी राष्ट्रीयताके महत्वको विलुप्त कर रहा था। और तो क्या वियेना जैसे शहर को भी जर्मनीका शहर कहनेमें अत्युक्ति होती थी। राजघरानेमें विदेशियोंका बोलबाला हो रहा था। दैवीप्रकोप तथा निर्दयतापूर्वक लौह-शासन-प्रणालीको मानवताकी ओटमें प्रचलित करनेकेविचारोंने जर्मनवादके कट्टर शत्रु आर्कड्यूक फ्रान्सिस फर्नीनैण्डको गुलामीका पासा फेंकनेके लिये प्रोत्साहित किया जो उसके लिये आगे चल घातक सिद्ध हुआ। फ्रांसिस फर्नीनैन्ड उस घृणित आन्दोलनका संरक्षक था, जिसका एकमात्र उद्देश्य जर्मनीमें गुलाम-राष्ट्रका बीज-रोपन करना था, परन्तु "है दुनियांमें पाप गुलामी" की स्मृतिने सच्चे देशभक्तोंको आन्दोलनके प्रारम्भकालमें ही चेतावनी दे दी।

तरुण जर्मन-साम्राज्य तथा अस्ट्रियाके अभागे सन्बन्धसे भविष्य में विश्व-व्यापी महायुद्धकी आशङ्का हो रही थी।

अपनी इस आत्मकथाके सिलसिलेमें मुझे इस विषयपर अधिक प्रकाश डालना होगा। यहां पर यह कह देना उचित होगा कि युवावस्थाके प्रारम्भसे ही मेरा यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि जर्मन जातिकी रक्षाके लिये अस्ट्रियाका पतन अवश्यम्भावी है, क्योंकि राष्ट्रीयताके भाव राजभक्तिके परिचायक नहीं हो सकते। मुझे यह भी विदित था कि हैप्सबर्ग राजघराना जर्मन जातिके अस्तित्वको मिटानेके लिये ही पैदा हुआ है। बचपनमें ही ये विचार बहुधा मेरे दिमागको चक्कर डाल दिया करते थे, परन्तु युवावस्थाके साथ ही साथ प्रत्यक्ष होनेवाले वीभत्स अत्याचारोंने मेरे विचारोंको उद्देश्य

रूपमें परिवर्त्तित होनेके लिये वाध्य किया उसी समयसे मेरा उद्देश्य अपनी जर्मन-अस्ट्रियन मातृभूमिकी सेवा करते हुए अस्ट्रियन-राज-वंशका विनाश करना हो गया है।

हमारे परिवारकी आर्थिक दशा अत्यन्त खराब थी। दुर्भाग्यसे खाने कमानेकी समस्या कुसमयमें आ पड़ी। मुझे स्वप्नमें भी आशा नहीं थी कि मेरे सिरपर यह बला इतनी कम उम्रमें आ पड़ेगी। ठीक ऐसे ही समय मेरी माता रोगग्रस्त हो गई। पिता पहले ही मर चुके थे। अनाथ होनेके कारण मुझे जितनी पेन्सन मिलती थी वह एक परिवारके भरण-पोषणके लिये यथेष्ट न थी। ऐसी अवस्था में मैं किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गया। परिस्थितियोंने मुझे अपनी जीविका उपार्जन करनेका आदेश दिया।

अन्तमें आशाओंसे प्रेरित हो कपड़ों और कटपीसकी एक पेटी ले वियेनाके लिये रवाना हुआ। अपने पिताकी तरह मुझे भी इसी व्यापारमें अपना भाग्य आजमानेका मौका मिला। मैं कुछ बनना चाहता था। मेरी इच्छा दुनियांमें कुछ कर दिखानेकी थी। परन्तु किसी भी हालतमें नौकरी करनेकी नहीं।

दूसरा अध्याय।

वियेना में।

मेरा अध्ययन तथा संघर्ष—

वियेनामें अतुल सम्पत्तिशाली धनिक-वर्ग एवं दरिद्रताके मारे हुए शोषित-वर्गके बीच प्रबल संघर्ष चल रहा था। नगरका मध्यभाग जो कि २५ मिलियन विस्तृत साम्राज्यका सञ्चालन करनेका दावा रखता था, अपनी उस खतरनाक शान-शौकतको दिखा रहा था जिसे उस क्रान्तियुगमें फिजूल खर्चीके सिवाय और कुछ भी नहीं कहा जा सकता था। आंखोंको चकाचौंध करनेवाला चुम्बकशक्तिसे पूर्ण न्यायालय साम्राज्यवादी हैप्सवर्गके राजघरानेकी दुरंगी नीतिका शिकार बना हुआ साम्राज्यकी रही सही धनराशिको चमक-दमकमें फूंक "घर फूंक तमाशा देखने" की लोकोक्तिको चरितार्थ कर रहा था।

इन्हीं कारणोंने जन-सङ्गठनको और भी उत्साहित किया। फलस्वरूप राजधानीके अधिकारीवर्गके बीच एक प्रकारकी खलबली मच गई।

वियेना राजनीतिक दृष्टिकोणसे नहीं वरन राज्य प्रबन्धके ख्याल से डैन्यूब राजवंशका केन्द्र था। वहां उच्च अधिकारियों, राज-कर्मचारियों, कलाविज्ञों तथा विद्वानोंके अतिरिक्त दरिद्रताका मारा हुआ शोषितवर्ग भी बहुत बड़ी संख्यामें रहता था। उन दिनों यहां पूंजीवाद और मजदूरवादमें भीषण संघर्ष छिड़ा हुआ था; परन्तु इससे गरीब ही हानि उठा रहे थे। अमीरोंका बोलबाला था। हजारों बेकार रिंजट्रेसिके राजमहलोंके इर्द-गिर्द फांसीपर चढ़ा दिये गये। गृहहीन हजारों परिवार कालकोठरीसे भी बदतर स्थानोंमें रहने लगे। बहुतोंने तो नहरोंके बाहर कूड़े-करकट पर रातें काटीं। हजारों मनुष्य दिनोंदिन बेकार होते जा रहे थे। हजारों घरोंमें एक ही समय भोजन बनता था। इतना ही नहीं, सैकड़ों परिवारोंको तीन २ दिन तक उपवास करना पड़ा। इस प्रकार समस्त देशमें अशान्त वातावरण उपस्थित हो गया। यह थी अस्ट्रियन राज्य-व्यवस्था —हैप्सबर्गके वंशधरोंके अत्याचारोंका ताण्डव नृत्य। उन्हें इतने पर भी सन्तोष न था। उनका पत्थरका कलेजा कुछ और देखना चाहता था। ठीक ही है, गद्दोंपर सोनेवाले गरीबोंके दुःख क्या जानें।

किसी अन्य शहरकी अपेक्षा जर्मनोंकी सामाजिक परिस्थिति का ज्ञान वियेनामें अच्छी तरहसे हो सकता था। सांप द्वारा काटे जानेपर ही उसके विषकी तेजीको जाना जा सकता है। उसी तरह तत्कालीन सामाजिक-विषका ज्ञान मुझे वियेनाके सार्वजनिक क्षेत्रोंमें काम करनेसे मालूम होगया था। हो सकता है कि उसमें कोई दोष न हो; परन्तु मेरे विचारसे उस सामाजिक व्यवस्थाको दोषरहित

नहीं कहा जा सकता। वह दिखावटी एवं भ्रमोत्पादक थी। उसे कोरी बकझक मान लेना ही ठीक होगा। 'दिखावटी नियमोंसे जनताकी मांग किसी भी हालतमें पूरी नहीं हो सकती। इसी तरह भ्रमपूर्ण कोरे विचार जनताकी वास्तविक परिस्थितिका सुधार नहीं कर सकते। मैं नहीं कह सकता कि दोनोंमें से कोई भी जनसाधारणके लिये उपयोगी सिद्ध होगा। यहां मुझे धनियोंका स्मरण आता है जो कि अपने स्वार्थवश गरीबोंके साथ दिखावटी सहानुभूति दिखानेसे बाज नहीं आते। यही दशा फैशनेबल लेडियोंकी है। बतानेको तो वे सब तरहके सुधार बता देती हैं; परन्तु करने धरनेके नाम उनकी नानी मर जाती है। ऐसे लोग इस छिपे पापको अपनी स्वाभाविक बुद्धिके कारण नहीं वरन जानबूझकर करते हैं। उनकी इस प्रकारकी सेवाका परिणाम जनसाधारणके हृदयमें उनके प्रति घृणा-भाव ही होता है, और उन्हें भी इस फरेबभरी सेवाका यह परिणाम देख कर आश्चर्य होता है। वे अपने कार्यों पर विचार न कर जनताको कृतघ्न कहते हैं।

ऐसे लोग सामाजिक सेवाके अन्दरूनी महत्वको नहीं समझ सकते। मैं यहां इस तरहके कार्यकर्त्ताओंको आगाह कर देता हूं कि जन-सेवा वाहवाहीके लिये नहीं वरन कर्त्तव्य-रूपमें करनी चाहिये। सामाजिक मांगोंपर हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। इनके लिये किसीकी कृपा-भिक्षा मांगना पतन नहीं तो क्या है:?

इस समय मैंने यह अनुभव किया कि वैसी परिस्थितिमें जनता को किसी युक्तियुक्त प्रणालीका अनुसरण करना चाहिये। "अपनी

उन्नतिके लिये सामाजिक नियमोंमें यथोचित सुधारका उत्तरदायित्व समझना ही वह प्रणाली है।" उस समयके सामाजिक मर्जका इलाज उसका समूल नाश करना था।

जिस तरह प्रकृति अपनी पुरानी सृष्टिको नष्ट कर नित्य नयी नयी रचना करती है, उसी तरह हमें भी मानवजीवन के ९९ प्रतिशत अंशोंमें न दूर होनेवाले अवगुणोंको निर्मूल बना अपनी उन्नति के लिये नव-विचारोंकी सृष्टि करनी होगी।

अपने वियेनावासमें मुझे यह अनुभव होगया कि वास्तविक कार्य कर्त्ताओंकी देशको कितनी आवश्यकता है। उनकी वास्तविक सेवायें देशके आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवनमें नव-संचार कर सकती थीं। मेरा मन उन दिनों सच्चे कार्यकर्त्ताओंकी खोजमें था। मैं देशको भयंकर भूलोंसे बचानेका उपाय सोच रहा था।

अस्ट्रियन स्टेटका अधिकारी-वर्ग सामाजिक नियमोंका निरादर कर उसके सुधारमें अपनी काहिली प्रदर्शित कर रहा था। मजदूर भाइयोंका आर्थिक संकट, उनकी आध्यात्मिक शक्तिका ह्रास, उनके पतनके प्रत्यक्ष लक्षण, मेरे मनको डरानेके लिये यथेष्ट थे।

[क्या हमारे दिलको उस समय धक्का नहीं पहुंचता जब कि कुत्ते की तरह भोजनपर मारनेवाले टुकरखोर अपनेको जर्मन कहनेसे मुकर जाते हैं? न जाने उनकी राष्ट्रीयता कहां लुप्त हो जाती है? क्या इस पेट-गुलामीसे हम कुछ भी सबक नहीं सीखते? क्या इनसे हमारी राष्ट्रीय-भावनायें जागृत न होंगी? मैं कहता हूं कि यही घटनायें भविष्यमें हमारे राष्ट्रीय विचारोंको और भी उग्र बनाती जायेंगी।]

हममेंसे कितने ऐसे हैं जो कि इन विचारोंकी भलाई और बुराई को सोचा करते हैं ? "हमारी मातृभूमिकी महत्ता सर्वदा ही माननीय है—हमारा सांस्कृतिक तथास्वाभिमानी जीवन ही हमारे सिरको ऊंचा रखना है—हमारा प्राचीन गौरव क्या है?" क्या हम कभी इसे समझने की कोशिश करते हैं ? जिस दिन हमें अपने प्राचीन गौरवका स्मरण होगा, हमारा हृदय स्वाभिमानसे पुलकित हो उठेगा। इसका परिणाम हमारे विचारोंकी पुनरावृत्ति होगी और हमें अपना कार्यक्षेत्र स्पष्ट प्रतीत होगा।

ऐसे अवसरपर मुझे एक नवीन अनुभव हुआ। जन-साधारण को स्वातन्त्र्यप्रिय बनाना ही शिक्षा विषयकी उन्नति करना है। इसकी उन्नति स्वतन्त्रताका संरक्षण है। क्योंकि पढ़ लिखकर ही कोई अपनी संस्कृति, वैभव तथा अपनी राजनीतिक महत्ताको समझ सकता है। यह ज्ञान उसके हृदयको स्वाभिमानसे पूर्ण कर देता है। मैं उसीके लिये लड़ता हूं जिसे मैं प्यार करूं। मेरा प्यार उसी विषयपर है जिसपर मेरी श्रद्धा है। और मेरी श्रद्धा उसीपर रहती है जिसका कि मुझे भलीभांति ज्ञान है।

उस समयसे सामाजिक विषयोंमें मैं और भी सतर्क होगया था। उन्हें अच्छी तरहसे समझ बूझकर ही मैं उनके लिये आन्दोलन करता था। क्योंकि सार्वजनिक कामोंमें नादानीसे बदनामीके सिवाय और कुछ भी हासिल नहीं होता।

१९०९-१० में मैंने अपनी आर्थिक-स्थितिमें इतना सुधार कर लिया था कि मुझे किसीका सहायक बन काम करनेकी आव-

श्यकता न थी। उस समय मैं स्वतन्त्ररूपसे चित्रकारीका काम कर रहा था।

अधिकांश जनता उस कुशासनके खिलाफ थी। उसे ऐसे कमजोर शासनसे सन्तोष न था। जिस तरह एक युवती भावोंसे प्रेरित हो दुबले-पतले रोगग्रस्त पुरुषका वरण एक हृष्टपुष्ट तथा प्रसन्नचित्त पुरुषके सामने करना न पसन्द करेगी, उसी तरह जनता भी उस निकम्मे और कोरे शासनको नहीं चाहती थी। उसकी आन्तरिक इच्छा प्रतिद्वन्द्विता रहित प्रजातन्त्रीय सरकार बनानेकी थी। अपनी स्वधीनताके अपमानका लोगोंको तुच्छ ज्ञान था। ठीक यही दशा उनके आध्यात्मिक उत्पीड़नके विषयमें थी। उन्हें मानापमानका कोई विशेष ध्यान न था और न वे तत्कालीन भ्रान्तिपूर्ण शिक्षाकी जानकारी रखते थे। अतः ऐसी परिस्थितिमें चेतनाका आना ही क्रान्ति की इति श्री है। वे निर्दयी शक्ति तथा उसकी भयोत्पादक रूपरेखा को निहारा करते थे, फिर भी चूं करनेमें उनकी अन्तरात्मा कांप उठती थी। अन्तमें उसके आगे उन्हें झुकना पड़ता था।

सच्चे सिद्धान्तकी विजय अनेकों दुर्द्धर्ष संघर्षोंके पश्चात भी हुआ करती है। उस समय हमारे सिद्धान्त सच्चे थे, हमारी विजय अवश्यंभावी थी। तत्कालीन सामाजिक प्रजासत्तात्मक शासन-प्रणाली का रहस्य मुझे बहुत पहलेसे ही विदित होगया था। उसके व्यवहार मेरे लिये आन्दोलनके कारण थे।

हालांकि इस प्रणालीके सचालक जनताकी शक्ति भलीभांति जानते हैं और उन्हें काफी सतर्क रहकर काम करना पड़ता है,

तथापि शासनपद्धतिकी बुराइयां कुछ ऐसा वातावरण उत्पन्न कर देती हैं, जिनका परिणाम भविष्यमें अत्यन्त बुरा होता है। इसके विपरीत इसका प्रभाव कमअक्लोंपर पड़ता है और वे बहुत अंशोंमें इसके पक्षमें हो जाते हैं। इसका कारण कुछ नहीं केवल उनके मनकी कमजोरी और खुशामदी आदत है।

ऐसी पद्धतिका अस्तित्व सर्वदा ही खतरेमें रहता है, हालांकि अधिकारी वर्ग सर्वदा ही सतर्कता पूर्वक काम लेता है। निस्सन्देह दिखावेके रूपमें पद्धति शांति एवं जन-रक्षाके लिये हितकारक है। यह धीरे २ अपना हाथ बढ़ाती ही जाती है। किसी भी प्रकारके अत्याचारके दो रूप होते हैं। आमतौर पर खुलेआम मनमानी करना वा अपनेको अच्छा बताते हुए मीठी छुरी चलाना। उक्त दोनोंमेंसे दूसरी नीतिकी व्यापकता दिनोंदिन हो रही थी। ऐसी पद्धतिका चलन तभी होता है, जब कि जनताका ध्यान किसी अन्य विषयोमें लगा हो या जब कि उसे अपने मानापमानका ध्यान न हो।

ये चालें जनताकी कमजोरीके कारण ही छिपती हैं,अथवा इनसे जैसे को तैसा सबक सिखाया जा सकता है।

दुकानों, कारखानों,सभाओं तथा सर्वसाधारणके प्रदर्शनमें सर्वदा भयप्रदर्शन किया जाता था इसका कारण जनताका उमड़ता हुआ आन्दोलन था।

दरिद्रताके कारण अनेकों कार्यकर्त्ता उस दिखावटी प्रजासत्तात्मक शासनको माननेके लिये तैयार हो गये थे। बहुधा यह देखनेमें आता है कि कार्यकर्त्ता बिना कुछ लाभ और आशाके केवल शासक-

वर्गकी थोड़ीसी वाहवाही पाकर जनताकी न्यायोचित मांगोंकी पूर्ति में बाधक सिद्ध होते हैं। फलतः वे अपनी बेवकूफीसे जनसाधारणकी निगाहोंसे गिर जाते हैं और उनका विश्वास सर्वदाके लिये उठ जाता है ठीक ऐसी ही वारदात हमारे कुछ कार्यकर्त्ताओंके साथ हुई। हम लोगोंने उन्हें अपनी ट्रेड यूनियन कांग्रेससे निकाल दिया।

बीस बरसकी अवस्थामें मैं ट्रेडयूनियनका अच्छा कार्यकर्त्ता माना जाता था। मै दावेके साथ कह सकता हूं कि उस समय वही एक ऐसी राजनीतिक संस्थाथी जिसका उद्देश्य जनताकी समाजिक मांगोंको पूरा कर देशमें संगठनका बीज बोना था।

शासकवर्ग बहुत शीघ्र ही इस संस्थाके महत्वको समझ गया और उससे डरने लगा। मजदूर-आन्दोलन निस्सन्देह उस शासनके लिये घातक था। परन्तु खुशामदी पिट्ठू उसके महत्वको न समझ सके और उन्हें अपने राजनैतिक मानको खोना पड़ा। वे आन्दोलन की सत्यतामें जानबूझ कर विश्वास नहीं करते थे। उनका कहना था कि वस्तुतः यह पथ जनताके लिये उपयोगी नहीं है। कहते क्यों नहीं,आखिर थे तो पूंजीवादके उपासक। उनका कथन असत्य था। उसमें विचार शीलता तो छू भी न गई थी। क्योंकि यह बिल्कुल असम्भव और सरासर झूठ है कि ट्रेडयूनियन द्वारा संचालित समाज वादी आन्दोलन जर्मन-मातृभूमिके लिये अहितकर था। यदि ट्रेडयूनि-यन देशके स्तम्भ मजदूर-वर्गकी मांगोंके लिये लड़ती है तो इसमें देशकी क्या हानि हो सकती है? मैं नहीं समझता कि यह देशभक्ति के अतिरिक्त क्या है। मेरे विचारसे देशमें जागृति-प्रसारका एकमात्र

यही साधन था। अपनी मां भी बिना रोये-कलपे दूध नहीं पिलाती फिर यहां तो शोपक और शोषित वर्गका प्रश्न था। यदि कमजोर-बलवानके अत्याचारोंसे पीड़ित हो सिर उठाता है तो इसमें वह क्या खराबी करता है? अब वह जमाना आ गया है जब कि प्रत्येक मनुष्य, क्या राजा क्या रंक, अपने स्वत्वके लिये लड़ मरनेको तैयार है। इस प्रकार यह आन्दोलन उस समयके लिये एक महत्व-पूर्ण विषय हो गया था। सामाजिक दोषोंको निर्मूलकर उनके वास्तविक रूपको जनताके समक्ष रख इस संस्थाने सर्वदा जर्मन-समाजका हित किया।

जहां तक मालिक और नौकरका सम्बन्ध है, कर्मचारी वर्गका कर्त्तव्य ही नहीं वरन ईश्वर-प्रदत्त नैतिक अधिकार है कि वह अपने स्वत्वोंकी रक्षा अपने स्वार्थोंकी पूर्त्तिके लिये ही नहीं वरन राष्ट्रीय-भावनाको लेकर करे। उसे व्यक्ति विशेपके स्वार्थोंकी ओर ध्यान न दे जन-साधारणका ध्यान रखना चाहिये। पूंजीवाद न किसीका सहायक हुआ है न होगा।

यदि असामाजिक वा निन्दनीय व्यवहार जनताके धैर्य्यको उत्ते-जित करते है, और शासकवर्ग इसकी परवाह न कर धांधली चलाता है तो ऐसी दशामें शक्तिशाली दलकी विजय हुआ करती है। यह प्रत्यक्ष प्रमाणित है कि यदि कोई व्यक्ति विशेष अपने पैसेके घमण्डसे मजदूरवर्गकी उपेक्षा करता है तो अन्तमें उसे सिर झुकानेके अति-रिक्त और कोई भी चारा नजर नहीं आता। संघबद्ध शक्तिके आगे न किसीकी चली है न चलेगी।

चन्द वर्षों के बाद ट्रेडयूनियनका आन्दोलन उस दिखावटी प्रजा-सत्तात्मक राज्यके कारण और भी चमका। दिनोंदिन आर्थिक परिस्थिति विकट होती जा रही थी। परन्तु कार्य्यकर्त्ता इससे विचलित न हो सुधारके लिये यथासांध्य परिश्रम कर रहे थे। बहुधा राजनीतिमें आर्थिक दशाका प्रभाव कार्यकर्त्ताओंपर भी पड़ा करता है। मैं ऊपर ही कह चुका हूं कि किस तरह बहुतेरे कार्यकर्त्ता पथ-भ्रष्ट हो जाते थे। परिणामतः अमीरी और गरीबीके बीच रिश्वत और धैर्य्यकी समस्या आ पड़ी, और उक्त संस्था कुछ लोगोंके स्वार्थवश झुक गई।

उस समयसे ट्रेडयूनियनने अपने सभी उद्देश्योंको छोड़ "भज-कलदारम्" की आवाज बुलन्द की। धीरे-धीरे यह संस्था पूर्ण रूपेण पूंजीवादियोंके फेरमें पड़ गई। इसप्रकार इसका प्रभाव बिल्कुल नष्ट हो गया।

इसका प्रतिवाद करनेके बजाय मध्यम श्रेणी एवं मजदूरोंने अनुचित रूपसे आन्दोलन किया और वे असफल रहे। इसका कारण उनकी देरी और ढिलाई थी। इसलिये जो जैसा था वैसा ही रहा, परन्तु एक बिकट परिस्थिति उत्पन्न हो गई।

ट्रेडयूनियन राजनीतिक क्षेत्रसे गिर गई और प्रत्येक मनुष्यकी श्रद्धा उसपरसे जाती रही।

शासकोंकी यह चाल जनता तथा देशकी स्वाधीनतामें बाधक थी इससे कुछ व्यक्ति विशेष लाभ उठानेकी ताकमें थे।

इसी समय जनताकी प्रबल भावनाने सबका ध्यान पलट दिया। लोग एकस्वरसे कह रहे थे कि "शासन-प्रणालीका परिवर्त्तन करो अथवा अपने किये का फल भोगनेको तैयार हो जाओ।" अधिकांश लोग अभी अपनेको भूले न थे। वे स्वाधीनता और भ्रातृत्वके उपासक थे। मैं इस बातसे बहुत ही खुश था कि लोगोंमें अभी भी शक्ति है। समयानुसार मेरे विचार उन्नतिशील और गम्भीर होने लगे परन्तु मैंने उनमें किसी प्रकारके परिवर्त्तनकी आवश्यकता न समझी।

जिस तरह मैंने तत्कालीन शासनका बाहरी अध्ययन किया था, उसी तरह मेरी इच्छा उसके आन्तरिक गूढ़ रहस्योंको जाननेकी थी। सरकारी दलीलें और साहित्य मेरे लिये व्यर्थ था। मेरी आत्मा उससे सन्तुष्ट न थी। जब मैं आर्थिक समस्यापर विचारता तब मुझे उसकी दलीलें और कथन बिल्कुल गल्त प्रतीत होते। राजनीतिक दृष्टिसे वह थोथी दलीलें थीं। उनमें तत्व न था। मुझे इस प्रकार लिखे अवास्तविक साहित्यसे प्रेम न था। म इस रहस्यसे भलीभांति परिचित था कि ऐसा क्यों किया जाता है।

मैंने जाति स्वभाव और उसकी नाशकारक नीतिका ज्ञान प्राप्त किया जिससे मैं अनभिज्ञ था।

यहूदी ही इन सब बातोंके मूल कारण थे। सब जगह ट्रेडयूनियन, सार्वजनिक संस्थायें, सरकारी आफिस इत्यादिमें उन्हींका हाथ था। हरजगह उन्हींकी प्रधानता थी और यही कारण था कि दिखावटी प्रजातन्त्रीय प्रणाली अपना हाथ बढ़ाती ही जाती थी। और कुछ नहीं

परन्तु मैं आज यह अवश्य यह सकता हूं कि "यहूदी" शब्द ज्ञानसेही मेरे विचार-युगका श्रीगणेश हुआ था। मुझे इस बातका स्मरण नहीं कि मैंने और पहले अपने पितासे इस शब्दको सुना था या नहीं। मेरे विचारसे पिताजी इन्हें सांस्कृतिक सभ्यताके उपासक मानते होंगे, यदि उन्हें इसका पता होगा। उनके ख्याल एक स्वतान्त्र्यप्रिय संसार-वासीके समान थे और उनमें स्वाधीनताके भाव कूट कूटके भरे थे जिसका असर आज मुझपर भी पड़ रहा है।

इस जातिके परिचयने मेरी आंखोंसे झूठी धारणाओंका पर्दा उठा दिया। उस पार्टीके उद्देश्य मुझे वास्तविक रूपमें दिखाई देने लगे, और मैं समझ गया कि किस प्रकार मार्क्सवादका अनुचित और अनर्थक व्यवहार किया जा रहा है।

स्कूलमें मेरी एक यहूदी लड़केसे जान-पहिचान थी। हमलोग उसकी बहुत इज्जत करते और सर्वदा ऊंची निगाहसे देखते थे, परन्तु बादमें उसकी उस रहस्यपूर्ण मौननीतिको समझ हमने उसका विश्वास करना भी छोड़ दिया।

करीबन चौदह या पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें भी मेरे कानमें यहूदी शब्दकी भनक पड़ी थी, परन्तु उस समय उसका राजनीतिक महत्व अब जैसा न था। कुछ दिनों बादसे मेरी अरुचि दिनोंदिन उसकी ओर बढ़ती जा रही थी, और जबसे मैंने धार्मिक-भेदोंके विवादको सुना न जाने तबसे मेरा दिल इस कौमसे क्यों इतना खट्टा हो गया। उस समय इस धार्मिक विवादको मैं अन्य किसी भी रूपमें देखने को तैयार न था।

लिजमें बहुत थोड़े यहूदी रहते थे। उनकी संख्या नाममात्रकी थी। सदियोंसे रहनेके कारण औरोंकी भांति वे योरोपियन कहे जाने लगे। मैं स्वयं उन्हें जर्मन समझता था। अपनी इस गल्त धारणाका मुझे तबतक पता न था जबतक कि मेरे दृष्टिकोणमें उनका धर्मभेद प्रतीत नहीं हुआ था। जब मैं यह सोचता कि "जनता उनके पीछे क्यों पड़ी है" मेरे घृणापूर्ण विचार और दृढ़ होते जाते। मुझे यहूदियोंकी इस छिपी दुश्मनीका बिल्कुल ध्यान न था।

फिर मैं वियेना आया।

शैल्पिक विचारोंकी घबड़ाहट तथा अपने दुर्भाग्यसे कुछ दिनों तक मैं इस विशाल नगरकी विभिन्न जातियोंसे अपरिचित था। यद्यपि वियेनाकी दो मीलियन आबादीके बीच यहूदियोंकी संख्या दो लाख थी, तथापि मैं उन्हें देखनेमें असफल रहा। सर्वप्रथम मेरी आंखें और दिमाग दोनों ही किसी चीजको उसके वास्तविक रूपमें न देख पाते थे, परन्तु समयानुसार इस क्रममें उन्नति हुई। कुछ दिनों बाद मेरे विचार गम्भीर हो गये। घबड़ाहट पैदा करनेवाली बातें मुझे स्पष्ट रूपसे वास्तविक रूपमें प्रतीत हुईं। मेरे विचारोंमें अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ और मैं यहूदियोंके प्रश्नके खिलाफ खड़ा हो गया।

मैं उस आनन्ददायक मार्गको न बताऊंगा जिससे मेरा और यहूदियोंका परिचय हुआ था। मैंने उस समय यहूदीवादको धर्म रूपमें देखते हुये भी जनताके हितका ध्यान रख धार्मिक बातोंको ले उनपर किसी भी प्रकार आक्रमण नहीं किया। प्रतिपक्षके प्रेसोंने

जो ढंग अख्तियार किया था वह जर्मनीके प्राचीन निवासियोंकी परम्परागत सांस्कृतिक कथाओंपर आक्षेपमात्र था। अकस्मात मध्ययुगकी कुछ घटनाओंका स्मरणकर मैं सिहर उठा जिसे कि पुनः देखनेसे मैं किञ्चितमात्र भी न डरता था। समाचारपत्रोंके इस विषयमें जो विचार थे वे जनप्रिय न थे—यह क्यों था और क्योंकर ऐसा हुआ, मै ठीकसे नहीं कह सकता—परन्तु इतना अवश्य कहूंगा कि इन पत्रोंका काम सदहृदताकी जगह द्वेष-भावकी सृष्टिकर देशको विप्लववादकी ओर अग्रसर करना था। ये विचार बिगड़े-दिमाग पत्रोंके हुआ करते हैं जो कि अपने स्वार्थवश अनाप-शनाप लिख मारते हैं।

इस विषयमें मेरे विचार और भी पक्के हो गये जब कि मैंने उन समाचारपत्रोंकी चुप्पी साधनेकी नीति वा किये हुए प्रतिवादोंके चिकने-चुपड़े जवाब देनेकी चाल देखी। मुझे उनके इन कृत्योंपर बड़ी हंसी आती थी। मैं सोचता था कि "चोरी तो चोरी ऊपरसे सीनाजोरी"।

मैंने इस तरहके पत्रोंमें से "संसार समाचार" पढ़ा। उसकी अनुचित राज-भक्ति तथा खुशामदसे मैं अत्यन्त क्रोधित हुआ और बेतरह चिढ़ गया। हैप्सवर्गमें घटनेवाली कोई भी घटना वास्तविक रूपमें न छपती थी। उसमें सच्चाईका लेशमात्र भी न रहता था। यदि उसको (समाचार पत्र) सर्वदा ही इस प्रकारकी खुशामद करना था तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं कि वह समाचार पत्र किसी व्यक्ति विशेषकी स्वार्थपूर्तिके लिये था।

मैंने इसे जनताके लिये अहितकर सोचा।

पूर्ववत् वियेनामें मुझे कुछ दिन और रहना पड़ा। मेरा ध्येय जर्मनीके समस्त सांस्कृतिक वा राजनीतिक प्रश्नोंका गम्भीर अध्ययन करना था। विस्मयपूर्ण अभिमानसे मैंने प्रजातन्त्रीय शासनका उत्थान तथा अस्ट्रियन साम्राज्यके पतनकी तुलना की। यद्यपि वैदेशिक राजनैतिक चालोंका स्मरणकर मेरा हृदय गद्गद् हो जाता था तथापि अपने देशका असन्तोषप्रद राजनीतिक जीवन मेरे लिये दुःखदायक हो रहा था। विलियम द्वितीय के खिलाफ चलने वाले आन्दोलनसे मेरी सहानभूति न थी। मैं उसे जर्मन-सम्राट ही नहीं वरन् जर्मन नौ-सेनाका विधायक मानता था। रिचस्टैगने सम्राटके ऊपर वक्तृताका प्रतिबन्ध लगा दिया। इससे मैं क्षुब्ध हो उठा। क्योंकि यह आवाज एक स्थान विशेष की थी, और उसे सबकी ओरसे ऐसा करनेका क्या अधिकार था? इतना ही नहीं उन पार्लमेंटरी अधिकार प्राप्त शासकोंने इतनी अधिक बकवक की जैसा कि उस वंशके कमजोरसे कमजोर शासकने भी नहीं किया था।

"साम्राज्यमें कोई मूर्ख भी तर्क वितर्क करनेका अधिकार रखता है—और वह रिचस्ट्रंगमें जनताके ऊपर कानूनी शासक करनेके लिये नियुक्त किया जाता है—राजमुकुटको धारण करनेवाला भी बेजा और बेहूदे तरीकेसे किसी व्यक्तिसमूह विशेष द्वारा डांटा डपटा जा सकता है" इत्यादि विचारोंने मुझे उत्तेजित करनेमें कुछ भी न उठा रखा।

मेरे हृदयमें उस समय अत्यन्त अरुचि पैदा हुई जब कि मैंने वियेना-प्रेसको भी जो कि राज्यके छोटेसे छोटे ओहदे वालेके आगे झुक जाता था, सम्राट्के खिलाफ आन्दोलन करते देखा। बहानेके तौरपर उसने ऐसा करनेमें दुःख प्रकाश किया और कहा कि जनता के रुखपर ही चलना समाचारपत्रका ध्येय है। परन्तु वह सम्राटके साथ छिपी दुश्मनी कर रहा था।

साथ ही साथ मैं एक समाचारपत्रका उसके इस विषयमें विचारोंके लिये कृतज्ञ भी हूं। उसका सम्राट्के प्रति व्यवहार आदरणीय था।

उस समाचारपत्रने जिस तरह फ्रान्सकी घृणायोग्य तरीकेसे खुशामदकी वह भी मेरी निगाहोंमें थी।

इस तरहकी चापलूसी भरी प्रशंसायें देख प्रत्येकको लज्जासे सिर झुकाना पड़ता था, यदि उसमें अपनेको जर्मन कहने और समझनेकी शक्ति थी। इसतरह बार बार फ्रांसकी वृथा चापलूसी करने वाले समाचारपत्रोंसे मैं घृणा करने लगा और वे सभी मेरी निगाहोंमें गिर गये। "वौकब्लैट" पत्रकी नीति मुझे बहुत कुछ पसन्द थी। यद्यपि उसमें इस विषयका प्रतिपादन संक्षिप्तमें होता था तथापि स्पष्ट और सत्यतापूर्ण समाचार रहते थे। मैं उसकी प्रतिपक्षीय तीखी विचारशैलीसे सहमत न था तथापि उसकी दलीलें मेरे मनको आकर्षित करनेके लिये यथेष्ट थीं जिन्हें मैं बड़े चावसे पढ़ा करता था।

कुछ हो, मैंने इस प्रकारके कथनोंसे एक मनुष्य और एक आन्दोलनको जाना अर्थात डाक्टर कार्ललूजर तथा क्रिश्चियन सोशलिस्ट पार्टीके विषयमें मेरे अनुभव बिल्कुल ठीक तथा सच्चे थे।

जब मै वियेना आया था मेरे विचार उन दोनोंके ही प्रतिकूल थे। मेरे ध्यानमें डा० लूजर तथा सोशलिस्ट पार्टीका आन्दोलन दोनों ही दलबन्दी वा फ़िरकापरस्तीके उद्भावक थे।

एकबार मै शहरके एक घने भागमें घूम रहा था,मैंने लम्बा चोंगा पहने एक आदमीको देखा। चोंगेके दोनों हाथ काले कपड़ेसे किनारें में जुड़े हुए थे। "क्या यह यहूदी है ?" मेरे मनमें एकाएक यह प्रश्न उठा। मैंने छिपे तौरसे सतर्कता पूवक उसको एक निगाहसे देखा। बहुत देरतक उस विचित्र चेहरेको घूर मैंने उसकी अकृतिपर विचार किया। मेरा प्रश्न मेरे सामने दूसरे रूपमें आ उपस्थित हुआ —"क्या यह जर्मन है ?"

मैंने अपने सन्देह-निवारणके लिये पुस्तकोंको देखना शुरू किया जैसा कि मै हमेशा ऐसे अवसरोंपर किया करता था। मेरे जीवनमें यह पहला ही अवसर था जब कि मैंने कुछ हेलरों (जर्मनी सिक्के) मे प्रतिपक्षीय पैम्पलेट खरीदे। दुर्भाग्यवश उनसे यह झलकता था कि उनको पढ़नेवाले"यहूदी प्रश्न"को कुछ-न-कुछ जानते थे, अन्तमें उनके लिखनेकी प्रणाली तथा घुमा फिराकर हरएक बातको कहनेके ढंगने मुझे पुनः एक नवीन आशंकामें डाल दिया। उनकी लचरदार दलीलें और भद्दी शब्द रचना पग-पगपर सन्देहकी सृष्टि करती थी।

यह विषय मेरे लिये गहनीय होगया और उसका अध्ययन अनन्त सा प्रतीत होने लगा। परिणामतः मैं अन्याय करनेकी धारणासे डरगया और पुनः चिंतित होउठा। मुझे इससमय अपने ऊपर बिल्कुल भरोसा न था। मैं डरता था कि कहीं इस विषयमें कुछ अनर्थ न कर बैठूं।

यहां मैं यह न सोच सका कि यह विषय अन्य धर्मानुयायी जर्मनोंका नहीं वरन एक दूसरी ही जातिसे सम्बन्धित है। क्योंकि जबसे मेरा ध्यान यहूदियोंकी ओर गया था तभीसे वियेना मुझे एक दूसरे ढङ्गका मालूम होने लगा था। अब मैं जहां गया वहीं मुझे यहूदी दिखाई दिये और उनके रहन सहनमें प्रत्यक्ष रूपसे जर्मन-जनतासे महान विभिन्नता पायी। शहरका भीतरी भाग तथा डैन्यूब नहरका उत्तरी हिस्सा विशेषतः ऐसे लोगोंसे आबाद था जो कि जर्मनोंसे किंचितमात्र भी समानता नहीं रखते थे।

मैं शङ्का रहित न हो सकता था, तथापि मेरा ध्यान यहूदियोंकी एक श्रेणीके कार्य्योंकी ओर खिंचा। उन लोगोंके बीच एक महान आन्दोलन उठा। वियेना उसका प्रमुख केन्द्र था। इस आन्दोलनका अभिप्राय जुडावाद वा यहूदी धर्मकी राष्ट्रीयताका प्रचार करना था। इसे जिओनवाद कहते थे।

निस्सन्देह, मुझे यह प्रतीत होता था कि यहूदियोंकी एक श्रेणी इस मतका अनुसरण करेगी परन्तु बहुमत इसका समर्थन न कर इसे अस्वीकार कर देगा। मैंने विषयको गहराईमें देखा—जो हो, उसका स्वरूप कुछ उक्तियोंके अन्धकारमें छिपा हुआ था। इसका कारण अनूठा था। यहूदियोंने जिओनवादके समर्थकोंको यहूदी कहकर ही न छोड़ा था। वे उन्हें उस श्रेणीका मानते थे जो कि यहूदी धर्मके लिये घातक सिद्ध हो सकते थे। वे उन्हें हर हालतमें यहूदी ही स्वीकार करते थे। इतना होते हुये भी उन दोनों श्रेणियोंके भीतरी स्वार्थ तथा रस्म-रिवाज एक से थ।

जिओनिस्टों तथा यहूदियोंके इस मतभेदसे मैं एकाएक सहमा। मुझे इसमें असत्यता और दिखावेके अतिरिक्त कुछ भी न दिखाई दिया। यह अपनेको पवित्र कहनेवाला दम्भयुक्त यहूदी जातिके नैतिक उत्थानमें धब्बा लगाने वाला था।

मेरे ध्यानमें यहूदी धर्मको उस समय बहुत बड़ी हानि पहुंची। इसका कारण उनकी कला, साहित्य, नाट्य-कला तथा प्रकाशन-विभागका पतन था। परिणामतः उनकी प्रतिवाद शैलीमें बहुत बड़ी बाधा आ उपस्थित हुई। प्रत्येक मनुष्य उस समय उनके सिनेमा सम्बन्धी पोष्टर देख ऐक्टरोंके नाम जान सकता था जो कि घृणित तथा छिपे उद्देश्य की पूर्त्तिके लिए प्राणपणसे चेष्टा कर रहे थे। यह एक छूआछूतकी बीमारी थी--धर्मके नामपर कुकर्मोंका ताण्डवनृत्य था--मौत इससे कहीं अच्छी थी, परन्तु इस जातिको पापका टीका लगना ही था।

मैं सतर्कता पूर्वक इन घृणित-कला पूर्ण नाटकोंको तथा फिल्मों के निर्माताओंके विषयका अध्ययन करने लगा। मेरे यहूदी सम्बन्धी ज्ञानकी वृद्धि और इस जातिके प्रति घृणाके भाव उत्तरोत्तर बढ़ने लगे। यद्यपि मेरे विचार यह सब कृत्य देख अनेकों बार उत्तेजित हो उठते थे तथापि मेरे प्रत्येक विषयके कारण स्वयमेव वास्तविक रूपको जान लेते थे।

इसी दृष्टिकोणसे मैंने अपने प्रिय समाचार-पत्र "संसार-समाचार" को देखा। परन्तु उसके विषयमें "वही रफ्तार बेढङ्गी जो पहले थी वह अबभी है"की लोकोक्ति चरितार्थ हो रही थी, उसके आक्रमणोंका जवाब देनेके चिकनेचुपड़े तरीके और कभी-कभी चुप्पी साध लेनेकी

नीतिने प्रत्यक्ष रूपसे उसकी नीच प्रवृत्तिका परिचय दे दिया था। उसमें छपी आलोचनायें सर्वदा यहूदी लेखकोंकी प्रशंसा तथा जर्मनोंके विरुद्ध रहा करती थीं। जर्मन-सम्राट् विलियम द्वितीयके खिलाफ इस पत्रमें पन्ने रंगे रहते थे। अब मैं इस पत्रकी स्थिति भलीभांति समझ गया। मैं अब तक यह नहीं भूला था कि किस प्रकार इस पत्र ने फ्रेंच संस्कृति तथा सभ्यताकी झूठी प्रशंसा की थी। इस पत्रकी नीति ही येनकेन प्रकारेण जर्मन-जातिको नीचा दिखाना था।

सामाजिक-प्रजातन्त्रवादी यहूदी-नेता मेरी नजरोंसे एकदम गिर गये। अब मेरा दीर्घकालीन मानसिक-संघर्ष समाप्त हुआ।

क्रमशः मुझे यह मालूम होगया कि सामाजिक प्रजातन्त्रीय प्रेसके कर्त्ता-धर्त्ता यहूदी ही हैं। मैंने इस विषयको किसी भी प्रकारका महत्व देना उचित न समझा। इतना अवश्य कहूंगा कि इसका रुख अन्य दूसरे समाचार पत्रोंकी तरह ही था। एक बात बहुत विचारणीय थी - उस समय कोई भी ऐसा पत्र न था जिसे कि राष्ट्रीय कहा जाय और उसका सम्बन्ध यहूदियोंसे न हो। इसके साम्यवादी लेख स्पष्ट न थे। उनमें सभी बातें छिपाई गई थीं। रहस्यवादका बोलबाला था। मैं उन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखता था। उन्हें पढ़नेकी इच्छा न होती थी।

फिर भी मैंने अपनी उस अनिच्छाको दबाया और इसप्रकारके मार्क्सवादको पढ़नेकी चेष्टा की। परन्तु जब मैं इसे पढ़ने बैठता तभी स्वतः मेरी अनिच्छा और भी बढ़ जाती। अब मैंने यह जानने

की चेष्टा की कि इस प्रकारके भ्रान्तिपूर्ण नीच वातावरणके फैलानेमें किनका हाथ है। मुझे इसमें सम्पादकसे लेकर बड़ेसे छोटेतक यहूदी ही दिखाई दिये जो कि जर्मन-संस्कृतिको समूल नष्ट करनेके लिये तुले हुए थे। मैंने उन सभी यहूदी-नेताओंके नाम लिख लिये। उनमें ख्याति-प्राप्त लोगोंका बहुमत था। मैंने उस प्रकारके सभी सामाजिक प्रजातन्त्रवादी पैम्पलेटोंको हस्तगत कर लिया। उनके लेखक वही ख्याति-प्राप्त नेता थे। बड़े २ नेता, रीशरैटके सदस्य, ट्रेडयूनियनके मन्त्री, विभिन्न संगठनोंके सभापति तथा आन्दोलक सभी यहूदी थे, और ये उन्हींके हथकण्डे थे। उनमेंसे अस्टरलिट्ज, डेविड, ऐडलर, एलेनबोगेन इत्यादि विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस समय एक बात मुझे वास्तविक रूपमें दिखाई दी—ट्रेड-यूनियनका नेतृत्व जिसके साथ मैं महीनोंसे संघर्षमें लिप्त था, विदेशियोंके हाथमें था। अपने सन्तोषके लिये मैं भलीभांति निश्चित कर चुका था कि कोई भी यहूदी जर्मन नहीं है और न उसे जर्मन जाति के स्वत्वोंकी परवाह ही है।

यहां मुझे अपनी जातिकी गलती महसूस हुई।

जैसे जैसे मैं उनके साथ हिलता-मिलता जाता था, वैसे मैं उनके नाटकीय तौर-तरीकोंसे वाकिफ होता जा रहा था। वे अपने विरोधियोंकी मूर्खतासे लाभ उठाते थे। यदि वह नीति सफल न हो पाती तो वे स्वयं ही मूर्ख होनेका बहाना करने लगते थे। यदि इसका प्रतिवाद किया जाता तो वे, जो कुछ भी कहा जाता, उसे माननेके लिये तैय्यार हो जाते; परन्तु करते अपनी मनमानी। हर तरहसे अपने

स्वार्थों की रक्षा करते हुए वे सत्यताकी दुहाई दिया करते। उनकी वाय-दाखिलाफीपर जब भी आलोचना उठती तभी वे अपनी कमअक्ली और सीधापन दिखाने लगते। यदि कभी किसी यहूदीकी निन्दा उसके मुंह पर की जाती तो वह अपना भोलापन बताने लगता था। परन्तु सत्यपूर्ण दलीलोंको माननेके अतिरिक्त उसके पास कोई चारा नहीं रह जाता था। कहनेको तो वह उस समय मान लेता, परन्तु दूसरे दिन उसे कुछ भी याद नहीं रहता था, मानों कुछ हुआ ही नहीं। बकबक करनेमें हर समय वे तैय्यार रहते थे। झूठी बातको सत्य कहनेमें उन्हें किंचितमात्र भी शर्मोहया न थी।

मैं बहुधा आश्चर्यचकित हो जाता था। नहीं कह सकता कि उनकी असत्यपूर्ण भावुकता तथा धूर्ततामें किसे अपनाया जाय। क्रमशः मैं उनसे घृणा करने लगा।

इसका परिणाम मेरे लिये उपयोगी सिद्ध हुआ। जिस रूपमें सामाजिक प्रजातन्त्रवादके प्रचारक मेरे समक्ष आये थे, वह फरेबी-जालके सिवाय और कुछ नहीं था। मेरी देशभक्ति प्रज्वलित हो उठी।

प्रतिदिन बढ़नेवाले अनुभवोंने मुझे मार्क्सवादका सचा मार्ग दिखाया। उसका उपदेश मेरे व्यक्तित्वके लिये सहायक हुआ। मेरा हृदय उसकी सफलताके लिये उत्सुक था। अपनी तुच्छ कल्पनासे मैंने उसका परिणाम विचारा। यहां एक प्रश्न यह उठ खड़ा हुआ कि आया इसके प्रचारक स्वयं अपने स्वार्थोंकी पूर्ति करते हैं, जैसा कि प्रतीत होता था, अथवा वे दूसरोंके हितोंका ध्यान भी रखते हैं। मैंने कुछ समयतक उसपर विचार किया और पुनः उसके उद्देश्योंको पढ़ा।

मेरे ज्ञानने बताया कि "यह सबके लिये उपयोगी है।" उससे स्वार्थ-साधन करना उसके प्रचारमें बाधा देना है।

मेरी इच्छा इस मतको अच्छी तरह जाननेकी हुई। मैंने इस सिद्धान्तके प्रवर्तकोंके विषयमें जानकारी हासिल की। मेरा एकमात्र उद्देश्य इसके अन्दरुनी रहस्यों और सिद्धान्तोंका उच्च ज्ञान प्राप्त करना था। इस साम्यवादी आन्दोलनसे मेरी बहुत सहानुभूति थी। मैंने शीघ्र ही अपने उद्देश्यकी प्राप्ति कर ली। इसके लिये मैं विशेषतः यहूदी प्रश्नके ज्ञानका आभारी हूं जिसने मेरा ध्यान इस मार्क्सवादको ओर आकृष्ट किया था। परिमाणतः मैं समझने लग गया कि यहूदी अपने विचारोंको छिपाते हैं। उनका वास्तविक उद्देश्य क्या है, यह जानना कमसे कम एक अपरिचित व्यक्तिके लिये असम्भव सा था। इसका कारण उनके साहित्यकी दुरंगी नीति थी। मुझे इस बातका गर्व है कि मैंने उनके विषयमें काफी जानकारी हासिल कर ली थी।

यह मेरे विचारोंका परिवर्तन युग था जिसे मैं बहुधा महत्वपूर्ण मानता था। मैं इस समय एक दुर्बल संसारवादीके स्थानपर उग्र-विचारवादी बन गया।

संसारके इतिहासमें यहूदी जातिके प्रभावका अध्ययन करते समय समय मेरे सामने एक अद्भुत प्रश्न आ उपस्थित हुआ। "क्या यहूदी जातिका पूर्णरूपेण हमारे ऊपर अधिपत्य जम गया है?" परन्तु इस प्रश्नका समाधान "नहीं" के रूपमें स्वयं यहूदी-सिद्धान्तने कर दिया।

यहूदियोंका मार्क्सवाद व्यक्तिवादके प्रतिकूल था। इस प्रकार उसे अनन्त प्राकृतिक नियमोंका नाशक कहा जाय तो कोई भी अत्युक्ति

नहीं हो सकती। यह जनताके बीच व्यक्ति-विशेषके महत्वको नष्टकर राष्ट्रीयता तथा जातिके महत्वको विलुप्त करना चाहता था। इस प्रकारके नियमोंसे क्रान्तिका उद्भव और विश्व-शान्तिको खतरेमें डाल देनेवाली परिस्थिति उत्पन्न होती है। जहां यह प्रचलित होता है वहांकी जनता समूल नष्ट हो जाती है।

यदि यहूदी अपने मार्क्सवादसे संसारकी समस्त जातियोंपर विजय प्राप्त करते हैं,तो निस्सन्देह उनका शासन मानवजातिके मरणासन्नकालका सूचक होगा जैसा कि आजसे हज़ारों वर्ष पूर्व हुआ था।

अनन्त प्रकृति अपने विरुद्ध किये हुये कृत्योंका प्रतिफल सर्वदा देनेके लिये प्रस्तुत रहती है।

इस प्रकार मैं अपनेको सर्वशक्तिशाली परमेश्वरका अंश मान कार्यक्षेत्रमें अवतीर्ण होनेका प्रयत्न करूंगा। यहूदियोंके खिलाफ मेरे आन्दोलन ईश्वरके प्रति मेरे कर्त्तव्यका पालन है।

तीसरा अध्याय

तत्कालीन वियेनामें राजनीतिक विचारधारा ।

प्राचीन डैन्यूब राजसत्ताकालीन अस्ट्रियामें जर्मनीकी अपेक्षा आम राजनीतिक चर्चा ज्यादा होती थी । प्रसिया, हैमबर्ग तथा उत्तर समुद्रतटीय देश इस विषयमें और भी चढ़े बढ़े थे, इस विषयमें अस्ट्रिया अर्थात हैब्सबर्ग-साम्राज्य जर्मनोंसे आबाद रहनेके कारण ऐतिहासिक दृष्टि तथा आबादीके कारण ही नहीं वरन अपनी राजनैतिक विचार शृङ्खलाके कारण शिरमौर गिना जाता था । उसका सांस्कृतिक जीवन अपने ढंगका निराला ही था । समयकी प्रगतिके साथ ही साथ उस साम्राज्यकी उन्नति होती जाती थी ।

तत्कालीन अस्ट्रिया कई जातियोंके सम्मिश्रणसे बना था । उसकी राजनीतिक परिस्थिति बहुत कुछ अच्छी थी । उस कार्यमें जर्मनोंका प्रमुख हाथ था । परन्तु पचास मीलियन विस्तृत साम्राज्य जो कि दस मीलियन विभिन्न जातियोंके लोगोंसे बसा हुआ था, स्थायी तथा उपयोगी सिद्धान्तोंके बिना संचालित नहीं हो सकता था ।

प्रत्येक जर्मन-अस्ट्रियन उस विशाल साम्राज्यकी छत्रछायामें रहता था । उसका कर्त्तव्य साम्राज्यकी हर प्रकारसे सेवा करना था । जब उसका ध्यान साम्राज्यके सीमान्त प्रदेशकी ओर जाता, वह

उसे उसी रूपमें देखता जिस रूपमें किसी साम्राज्यवासीको देखना चाहिये। तथापि यह उसका भाग्य था कि अपनी वास्तविक मातृ-भूमिसे पृथक् रहते हुये भी वह अपने पूर्वजोंकी तरह जर्मन और जर्मनोंके स्वत्वोंकी रक्षाके लिये अपनी जान तक कुरबान कर सकता था। उसके हृदयमें अपनी उस मातृभूमिके लिये कभी भी असहानुभूतिको स्थान प्राप्त नहीं हुआ और उसकी भावनायें पूर्ववत् बनी रहीं।

एक जर्मन-अस्ट्रियनका दृष्टिकोण साम्राज्यके अन्य निवासीकी अपेक्षा व्यापक तथा उदार था। उसका आर्थिक सम्बन्ध केवल उसी साम्राज्यसे मतलब नहीं रखता था। वह जर्मन-अस्ट्रियाके संयुक्त साम्राज्यका परिचायक था। तत्कालीन अस्ट्रियन-साम्राज्यके बड़ेसे बड़े काम उपरोक्त श्रेणीके लोगोंके हाथमें थे। राज्यके कर्त्ता-धर्त्ता वे ही लोग थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने साम्राज्यके व्यापारको विदेशोंमें इतना विस्तृत कर दिया था जितना कि यहूदियोंके किये नहीं हो सकता। एक जर्मन-अस्ट्रियन जर्मन सेनामें भरती हो सकता था। परन्तु वह सेना वियेना वा गैलिसियाकी भांति हेरजोमिनामें रक्खी जाती थी। वहीं उसकी छावनी थी। सेनाओंके अध्यक्ष जर्मन थे। उच्च अफसर भी जर्मन थे। जर्मनोंके हाथमें विज्ञान तथा कला-कौशलका काम था। आधुनिक साधारण कलाकी उन्नतिको छोड़ जर्मनोंके जिम्मे कला तथा विज्ञानकी शिक्षा देनेका कार्य था। संगीत शिल्पविद्या, चित्रकारी इत्यादिके लिये वियेना केन्द्र था जो कि साम्राज्यको उन्नतिके शिखरपर आवेष्टित कर रहा था।

इतना ही नहीं, समस्त वैदेशिक नीति जर्मनोंके हाथमें थी। उसमें नाममात्रके हंगेरियन भी शामिल थे।

ऐसी दशामें मेरे समयके उस विशाल अस्ट्रियन साम्राज्यका जर्मनोंके सहयोग बिना चलना असम्भव था।

विभिन्न जातियोंसे बसे हुए उस अस्ट्रियन साम्राज्यका संचालन तभी हो सकता था जब कि व्यक्तिगत तथा जाति विशेषके स्वार्थोंका ध्यान न कर उसका संचालन करनेके लिये किसी केन्द्रीय सरकार का निर्माण होता और सर्वसाधारणके स्वार्थोंकी रक्षा की जाती।

कितने ही अवसरोंपर सम्राटका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ परन्तु या तो वे भूल जाते होंगे अथवा इस नीतिको कार्य्यान्वित करनेमें किसी प्रकारकी अड़चन पड़ती होगी।

तत्कालीन जर्मनी यद्यपि छोटा था तथापि उसके वासिन्दे एक ही वंशके थे। परन्तु अस्ट्रियाके विषयमें यह बात नहीं थी।

हंगरीके अतिरिक्त बहुतसे देशोंमें प्राचीन अतीतकालीन स्मृतियां विलुप्त हो चुकी थीं अथवा समयके फेरसे उनपर परदा पड़ गया था अर्थात हरप्रकारसे लोग इस विषयमें अज्ञान थे। परन्तु स्वातन्त्र्यवाद के प्रारम्भकालसे इन देशोंमें सार्वजनिक शक्तियोंका अविर्भाव हुआ। यह वह काल था जब कि राजतन्त्रकी बनी बनाई नींवपर प्रजातंत्रीय स्वाधीन राष्ट्रोंका निर्माण प्रारम्भ हुआ। इसका प्रभाव अस्ट्रियन जनता पर भी पड़ा। वहां भी स्वाधीनताकी आग भभक उठी। उसमें वर्त-मान जर्मन-अस्ट्रियासे अधिक आकर्षण था।

यहां तक कि वियेना भी उस संघर्षमें असफल रहा।

वियेना उस समय बुडापेस्टका प्रतिद्वन्दी माना जाता था। यद्यपि बुडापेस्ट एक अच्छा शहर था तथापि कुछ कारणोंसे अपने प्राधान्य के लिये परस्पर रहस्यमय बितण्डा उठा हुआ था। शीघ्र ही प्रेग,लैम बर्ग लैबेच इत्यादि नगरोंने भी बुडापेस्टके मार्गका अनुसरण किया।

जोसेफ द्वितीयके मृत्युकालसे इस रहस्यमय विषयका उद्घाटन हो सकता था। इसकी गति कुछ राज्यसम्बन्धी राजनैतिक घट-नाओंपर निर्भर थी जिनका विदेशोंसे सम्पर्क था।

यदि इस साम्राज्यके निर्माणके लिये अन्ततक संघर्ष किया जाता तो यह अवश्यम्भावी था कि एक सिद्धान्तवादी जनप्रिय केन्द्रीय सरकारकी स्थापना हो। इसीसे सम्भवतः कुछ निष्कर्ष निकल जाता सजातीयताका स्वरूप राज्यके भाषा सम्बन्धी सिद्धान्तों द्वारा ही प्रदर्शित होना चाहिये। इसका लाक्षणिक प्रयोग राज्य-व्यवस्थाका एक अङ्ग होना चाहिये था क्योंकि इसके बिना कोई भी संगठित राष्ट्रकी उन्नति नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त राष्ट्रके एकीकरण अथवा उसकी स्थायी स्थितिका ज्ञान विद्यालयों और शिक्षा द्वारा ही कराया जा सकता था। यह दस या बीस वर्षमें उपलब्ध नहीं हो सकता। इसका मनन शताब्दियोंमें ही हुआ करता है, क्योंकि उपनिवेश नीतिके प्रश्नपर स्वार्थ-तत्परता आक्षेपक कार्य्योंसे अधिक लाभप्रद सिद्ध हो सकती है।

अस्ट्रियन-साम्राज्यका गठन किसी एक जातिसे नहीं हुआ था। उसमें विभिन्न जातिके लोग बसे हुये थे, जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूं। उनका खून एक न था। अतएव स्वार्थोंमें विभिन्नताका

आजाना जरूरी ही है। इसके परिणामस्वरूप, राष्ट्रके नेतृत्वकी दुर्बलता अकर्मण्यताका प्रसार ही नहीं वरन विभिन्न जातियोंसे बसे होनेके कारण व्यक्तिवादकी स्वाभाविक पशुवृद्धिको उत्पन्न कर रही थी। परन्तु हमारे सौभाग्यवश एक प्रभावोत्पादक परिस्थितिने इसके बढ़ते हुए रूपमें बाधा डाली।

इसके समझनेमें काहिली दिखाना हैव्सवर्ग राज्यघरानेका निन्दनीय अपराध था।

एक समय वह था जबकि इसका बोलबाला हो रहा था, परन्तु सहसा यह सदाके लिये लुप्त होगई।

जर्मनीके रोमन-सम्राट् जोसेफ द्वितीयने इस विषयको भली-भांति समझा कि किस प्रकार उसके पूर्वज अपनी कुनीतिको कार्यान्वित करनेके पूर्वही वेबिलोनियन जातिके बवण्डरमें अपना अस्तित्व तक मिटा गये। उस जनबन्धुने अलौकिक परिश्रमसे अपने पूर्वजोंकी भूलोंका सुधार करना प्रारम्भ कर दिया। शताब्दियोंसे पिछड़े कार्यको उसने दस वर्षके अन्दर ही कर डाला। परन्तु उसके अधिकारी इस कार्यकी पूर्त्तिमें अयोग्य प्रमाणित हुए। वे निकम्मे और कमअक्ल थे।

१८४८ई०का विप्लव संसारकी विभिन्न जातियोंका उन्नति-संग्राम था, परन्तु अस्ट्रियाका स्वातन्त्र्य संग्राम यहींसे प्रारम्भ होता है। अपने भविष्यका ध्यान न कर, उसके मूलको बिना समझे-बूझे जर्मन भी इस विप्लववादी आन्दोलनमें कूद पड़े। उन्होंने संसारव्यापी प्रजा-सत्तवादके भावोंको जागृत करनेमें कुछ भी नहीं उठा रक्खा, परन्तु हतभाग्य उन्हें अपनी स्थिति तथा सिद्धान्तसे विमुख होना पड़ा।

सर्वसाधारण-प्रिय-भाषाके सिद्धान्तोंकी स्थापना किये बिना ही प्रतिनिधि परिषद्का गठन जर्मन-जातिके प्रभुत्व-विनाशकालका सूचक हुआ। परिणामतः साम्राज्यका अधःपतन अवश्यम्भावी हो गया। इसके बाद क्या हुआ—वह एक साम्राज्यके विकाशका इतिहास है।

मेरी इच्छा नहीं है कि मैं इन पचड़ोंमें विशेष रूपसे पड़ूं, क्योंकि मेरी पुस्तकका यह उद्देश्य नहीं है। इन घटनाओंको उल्लेख करनेका एकमात्र उद्देश्य "राष्ट्रोंके पतनका कारण—अपने अतीतका संस्मरण, राजनीतिक दृष्टिकोणकी युक्तियुक्त विवेचना" इत्यादिका ज्ञान प्राप्त करना है। मैं कह नहीं सकता कि इन घटनाओंका मुझपर कितना प्रभाव पड़ा और कहाँतक मैं अपने राजनीतिक सिद्धान्तोंको निर्धारित करनेमें सफल रहा।

राजनैतिक संस्थाओंमें रीशरैटका स्थान प्रमुख था। वह अस्ट्रिया की पार्लियामेंट मानी जाती थी। उसमें जनसाधारणके सभी वर्गोंका प्रतिनिधित्व था। उस समय उसीकी तूती बोल रही थी।

यह बात स्पष्ट है कि इङ्गलैण्डकी पार्लियामेंटके प्रजातन्त्रीय-सिद्धान्तोंके आधारपर ही उसकी सृष्टि हुई थी। उस प्रगतिशील संस्थाकी स्थापना वियेनामें हुई।

इङ्गलिश-पार्लियामेंटकी भांति उसमें भी दो विभाग किये गये जो ऐब्रजियोरटेनसस तथा हैरेनसके नामसे विख्यात थे। किन्तु उन में कुछ भिन्नता थी। जिस समय लार्ड बैरीके पार्लियामेंट हाउसोंका निर्माण हुआ, उसने आलों, स्तम्भों, चौखूटियों इत्यादि शानशौकत वाली वस्तुओंसे उस भव्य-भवनको न सजा ब्रिटिश इतिहासमें एक

नवीन उदाहरण उपस्थित कर दिया। इस प्रकार वास्तुविद्या तथा चित्रकारीसे हाउस आफ लार्डस और कामन्स जातीय गौरवके मन्दिरस्वरूप होगये।

इस स्थानपर वियेनाकी सर्वप्रथम कठिनाई थी। जिस समय हेनहेन्सनने जन-प्रतिनिधियोंके लिये बने संगमरमरके भव्य-प्रासाद का शिखर निर्माण किया,उसकी एकमात्र यही इच्छा थी कि प्राचीन शिलाचिन्हसे उसे विभूषित किया जाय। ग्रीक तथा रोमन-राजकर्मचारियों और तार्किकोंने इसका समर्थन किया और उस भवनको नाट्यशालाकी भांति विभूषित कर पश्चिमीय प्रजातन्त्रवादका प्रदर्शन किया। इतना ही नहीं, उन्होंने उसके शिखरपर गगनचुम्बी सर्वदिग्व्यापी राजलीन प्राचीन पताकाओंको फहरा अपनी भेदभाव पूर्ण प्रकृतिका परिचय दिया।

यह देशभक्तोंके लिये एक ताना था। इसमें नीचताकी चरम-सीमाका निदर्शन था। इसे अपमानकी पराकाष्ठा कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

यदि अस्ट्रियन इतिहास अपने इस कार्यके लिये गौरवान्वितहोता तो सम्भवतः देशभक्त इस कुकार्यको अपमानकी दृष्टिसे देखते और उत्तेजित होते। ससारव्यापी महायुद्धके पूर्व जर्मन-साम्राज्यकी बर्लिन स्थित "जर्मनोंको समर्पित" शिलालेखयुक्त पाळवैलटकी रीचस्टैग-बिल्डिगकी कोई भी प्रतिष्ठा न थी।

अस्ट्रियन साम्राज्यमें जर्मनोंका भाग्य उनकी रीशरैटकी शक्तिपर निर्भर था। जबतक सार्वलौकिक मताधिकार प्रणाली तथा सिक्रेट

बैलट द्वारा वोट देनेका नियम नहीं बना था तबतक रीशरैटमें जर्मनों का बहुमत था। वास्तवमें इसप्रकारके कार्य अवांछनीय थे। तत्कालीन प्रजातन्त्रीय सरकारके अनुत्तरदायित्वपूर्ण विचारोंके कारण ही ऐसा हुआ था। इन नियमोंका निर्माण जर्मन-जातिकी ऐक्य-शृङ्खलाको छिन्न-भिन्न कर उसके प्रभुत्वको सर्वदाके लिये रीशरैटसे मिटानेके लिये ही हुआ था। यहां तक कि समाजवादी भी जर्मनपार्टीके सदस्य माने जाते थे। सार्वलौकिक मताधिकार-प्रणालीके पश्चात् जर्मनपार्टी इतनी कमजोर होगई कि चन्द सदस्य ही उसमें रह गये। इस प्रकार उस साम्राज्यमें जर्मन-जातिके संगठनका कोई मार्ग नहीं रह गया।

जनसाधारणके प्रतिनिधित्व द्वारा राष्ट्रीय विचारोंकी रक्षाका जो ढोंग रचा गया था, उसपर मेरी किंचितमात्र भी श्रद्धा नहीं थी। इस विषयमें जर्मनोंको उचित प्रतिनिधित्व न न दे उन्हें सर्वदा ठगनेकी चेष्टा की गई थी। अन्य दोषोंकी भांति ये दोष केवल अपने विषय तक ही सीमित नहीं थे वरन इनका सम्पर्क पूर्णतया अस्ट्रियन-साम्राज्यसे था। प्रारम्भमें भी मैं यह सोचा करता था कि यदि जर्मनोंका बहुमत स्थापित कर दिया जाता तो सिद्धान्तोंमें किसी भी प्रकारका हेरफेर न होता।

परन्तु समाजवादके नामपर साम्राज्यवादकी लिप्साओंको पूर्ण करनेवाले घृणित अभिनयको प्रत्यक्ष रूपमें देख मैं विक्षुब्ध हो उठा।

वर्त्तमान पश्चिमीय प्रजातन्त्रवाद मार्क्सवादका भविष्यसूचक चिन्ह है। यह उस संसारव्यापी संचारी रोगका भक्षक है जो वहां फक

रहा है। पार्लियामेण्टरी शासनपद्धति इसका बाहरी रूप है। इसमें आडम्बरका अच्छा प्रदर्शन है। जर्मन लोकोक्तिके कथनानुसार यह आग और कूड़ेका संघर्ष है, जिसमें आग स्वयं ही भस्मीभूत हो जाती है।

वियेनामें इस विषय-ज्ञानकी परीक्षामें मैं सफलीभूत हुआ। मन ही मन मैंने अपने भाग्यकी सराहना की। मुझे भलीभांति विदित था कि जर्मनीमें किसी भी हालतमें इस विषयका प्रत्युत्तर नहीं मिल सकता था। यदि मैं सर्वप्रथम बर्लिन-पार्लियामेन्टकी निरर्थकताको समझ लेता तो सम्भव था कि मेरे विचार उपरोक्त विचारोंसे भिन्न होते और मैं उन लोगोंकी श्रेणीमें मिल जाता तो नयनयुक्त अन्धोंकी भांति जनता अथवा साम्राज्यके हितके लिये साम्राज्यवादके स्वप्न देख मानव-जाति एवं समयकी प्रगतिसे प्रतिरोध कर रहे थे।

अस्ट्रियामें यह सर्वथा असम्भव था। वहां भूलोंपर भूल करना सरल न था। यदि पार्लियामेंट अयोग्य थी तो हैब्सवर्ग घराना उससे किसी भी हालतमें कम अयोग्य न था।

यदि पार्लियामेण्ट कोई ऐसा अनर्थकारी कार्य्य कर बैठती है तो उसका उत्तरदायित्व किसी व्यक्ति विशेष पर नहीं आ सकता और न कोई व्यक्ति उसके लिये जबाबदेह हो सकता है।

क्या उस गवर्मेन्टको जो केवल पदत्याग द्वारा राज्य-व्यवस्था को हानि पहुंचाती है, उत्तरदायी नहीं नहीं कहा जा सकता? क्या पार्लियामेंट भंग करने एवं संगठनको बदलनेकी जिम्मेवारी उसपर नहीं आ सकती? भला विभिन्न मतानुयायी इसके लिये किस प्रकार

उत्तरदायी हो सकते हैं ? क्या कोई किसी व्यक्ति-विशेषको एक ऐसी गवर्मेन्टके कार्य्यों के लिये जिम्मेदार कह सकता है, जिसका संचालन विभिन्न विचारवाले मनुष्योंकी एक सभा द्वारा होता है ?

अथवा—क्या किसी प्रमुख राजनीतिज्ञका कर्त्तव्य नहीं है कि वह विचारशील एवं युक्तियुक्त उपायोंका ऐसे समयमें अवलम्बन करे ?

क्या लोगोंको अपने प्रस्तावके पक्षमें लानेके लिये नाना प्रकारकी दलीलें दे उनकी आंखोंमें धूल डालनेवाले चातुर्य्यके अतिरिक्त उससे और भी कुछ आशाकी जासकती है ? निस्सन्देह चतुर राजनीतिज्ञों की परख उनके विषय प्रतिपादन तथा प्रबोधनकी शैली द्वारा ही की जा सकती है। मेरे विचारसे उन्हीं लोगोंको राजनीतिज्ञ कहना चाहिये जो जनसाधारणके मनोभावोंको समझते हुए लोगोंको येन-केनप्रकारेण समझा-बुझा सुमार्गपर ले आते हैं।

क्या हम विश्वास कर सकते हैं कि बहुसंख्यक लोगोंकी सम्मिलित बुद्धिसे ही उन्नति हो सकती है, किसी व्यक्ति विशेषकी दिमागी उपजसे नहीं ? अथवा हम इस बातकी कल्पना कर सकते हैं कि भविष्यमें भी मानवजातिकी धारणा इस घातक प्रणालीको ही कार्यान्वित करनेकी रहेगी।

इसके विपरीत—क्या यह विषय पहलेकी अपेक्षा आज अत्यन्त आवश्यक नहीं प्रतीत हो रहा है ?

इसकी व्यक्ति-विशेषके प्रधानत्वकी अस्वीकारोक्ति तथा उसके स्थानपर बहुसंख्यकोंकी किसी भी निर्धारित कालमें नियुक्ति और पार्लियामेंटरी नियमानुसार तथाकथित बहुसंख्यकों द्वारा राज्यपरि-

चालन, आधारपूर्ण योग्य व्यक्तियों द्वारा राज्यसंचालनके प्राकृतिक सिद्धान्तोंके विरुद्ध महान पाप है। ऐसे उच्च विचार हमारे लिये इस क्रान्तियुगमें आवश्यक नहीं।

कमसे कम एक यहूदी-पत्रके पढ़नेवालेके लिये यह अत्यंत कठिन है कि वह उस प्रजातंत्रीय आडम्बरपूर्ण पालियामेंट कहानेवाली संस्थाके अवगुणोंको जान सके। यदि वह स्वयं ही विचारक तथा अनुभवी परीक्षक हो तो सम्भव है कि वास्तविकता तक पहुंच जाये। परन्तु हममें से बहुत कम ऐसे होंगे जिनमें उपरोक्त दोनों ही गुण देखे जाते हैं और वास्तवमें यही कारण है कि हमारा राजनैतिक-जीवन अव्यर्थ विषयोंकी ओर प्रवाहित हो जाता है और फलतः हम अन्धविश्वासी बन जाते हैं। सच्चे राजनीतिज्ञ उस राजनीतिसे सर्वदा पृथक् रहते हैं जिसका उद्देश्य महत्वपूर्ण कार्य न कर सौदे अथवा मोलभावसे जनप्रियता प्राप्त करना है। ऐसी दशामें देशकी „राजनीतिका तुच्छ मनोभावोंसे संश्लिष्ट रहना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

हमें यह कभी न भूलना पड़ेगा और न हम भूलेंगे ही कि "एक योग्य मनुष्यके स्थानपर बहुसंख्यकोंकी नियुक्ति नहीं हो सकती"। यह मूर्खताका पक्ष समर्थन और भीरु नीतियोंका निन्दनीय निदर्शन है। जिस तरह सौ मूर्ख एक बुद्धिमानकी भांति विचार नहीं कर सकते, उसी भांति सौ कायरों और बुजदिलोंसे वीरतापूर्ण कृत्योंकी आशा किस प्रकार की जा सकती है?

इसका परिणाम राष्ट्रकी बागडोर एवं आफिसोंका गतिपरिवर्तन है। कोई भी बात जो मानवसमाजके लिये हानिकारक सिद्ध होते हुए

भी आपदाओंके बीच कार्यान्वित की जाती है, उसका प्रभाव उसकी प्रगतिपर ही नहीं वरन सच्चे कार्यकर्त्ताओंपर भी पड़ा करता है। फलतः कार्यक्षेत्रमें एकप्रकारकी खलबली सी मच जाती है,जो बहुधा घातक सिद्ध हुआ करती है।

इसी प्रकार प्रमुख-वर्गोंमें दिनोंदिन आध्यात्मिक निर्धनताका प्रसार होता जायगा। फिर राष्ट्र तथा जातिकी क्या दशा होगी यह प्रत्येक विचारशील मनुष्य सोच सकता है।

"जनमत" जाननेके सम्बन्धमें मेरी अतिसाधारण धारणा है। हम बहुत थोड़ीसी बुद्धि एवं अनुभवसे ही यह जान सकते हैं कि जनताका क्या रुख है। इस ज्ञानको हम आत्मप्रकाश कहते हैं। राजनीतिक दृष्टिसे जनताका अवलोकन आत्मा एवं बुद्धिके संघर्षका अन्तिम निर्णय है।

राजनीतिके अंगोंमें "शिक्षा" एक अति महत्वपूर्ण विषय है। इसका दूसरा स्वरूप प्रचारकार्य है। विज्ञापनों, समाचारपत्रों, हैंडबिलों तथा भाषणों द्वारा राजनीतिक सिद्धान्तोंका प्रचार किया जाता है। ये साधन जनताके लिये विद्यालयका काम देते हैं। इसीका नाम आत्म-प्रकाश है। ये साधन राष्ट्रके सरकारी महकमोंके लिये ही नहीं, उनसे दुर्बल, संघर्षशील प्रत्येक शक्तिके लिये हैं। वियेनामें रहनेवाले एक नवयुवकके नाते मुझे इस सिद्धान्त-प्रचारक यन्त्रका पता था। प्रारम्भ में मुझे यह देख बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि साम्राज्यवादी जनताके मतको मनमानी तौरसे निश्चित कर इसका दुरुपयोग कर

रहे थे। उनका मत जनताका आवाज माना जाता था। परन्तु वास्तव में जो कुछ लिखा जाता था जनताकी इच्छा तथा दृष्टिकोणसे सर्वथा विपरीत होता था। इसे धूर्तता और मक्कारीके अतिरिक्त कुछ नहीं कहा जा सकता। चन्द दिनोंमें यह अनर्थकता साम्राज्यवादी राष्ट्रके लिये स्वार्थ सिद्धिकी साधना-स्वरूप प्रतीत हुई। ठीक इसी समय जनताका ध्यान आवश्यक समस्याओंकी ओरसे फिर गया अथवा उनको सर्वसाधारणके ध्यानसे भुलानेकी चेष्टा की गयी।

चन्द सप्ताहोंके बीच ही कुछ चापलूसोंकी प्रशंसाके पुल बांध दिये गये। जनताका ध्यान उनकी झूठी सेवाओंकी ओर आकृष्ट करनेकी पूर्णतया चेष्टा की गयी। उनलोगोंसे अविश्वसनीय आशायें प्रकट की गई थीं। उन्हें ऐसी जन प्रियता प्रदान की गई, जिसे प्रत्येक सच्चा तथा कर्मवीर मनुष्य घृणाके साथ ठुकरा देगा। एकमाह पूर्व्व तो उन लोगोंको कोई जानता भी न था। न वे तीनमें थे न तेरहमें। इसके विपरीत राष्ट्र तथा जनताके आदर्शवादी प्रातःस्मरणीय पथ-प्रदर्शक कलङ्कके भागी बनाये गये। उनका नाम घृणाके साथ लिखा जाने लगा उनके पवित्र नामोंके आगे कुशब्द भी जोड़े जाने लगे। साम्राज्य-वादियोंकी दृष्टिमें उनकी अमूल्य एवं अलौकिक सेवाओंका यही प्रति-फल था। मैं कह नहीं सकता कि उन महात्माओंके प्रति किये गये दुस्कृत्योंका वर्णनकर मेरा हृदय क्यों दो टूक हुआ जा रहा है? सम-कालीनताके इस लज्जाजनक यहूदी-तरीकेको सीखना अत्यन्त आवश्यक था! सैकड़ों उपायोंसे उन माननीय व्यक्तियोंके पवित्र नामपर अपयश तथा कलङ्कका टीका लगानेकी चेष्टा की गई। प्रेस अधिकारके दुरुप-

योग तथा दुर्जनताका खासा प्रदर्शय किया गया। अर्थात् दूसरे शब्दोंमें प्रेस-अधिकार द्वारा जनताको खुली धमकी दी गई।

जनताकी विचारहीन तथा विक्षेपपूर्ण पथ-भ्रष्टता तत्कालीन प्रजातन्त्रीय पार्लियामेंटरी प्रणाली एवं निस्वार्थ जर्मन-प्रजातन्त्रवाद की तुलनासे समझी जा सकती है।

सबसे विचारणीय बात तो यह आती है कि दो या चार सौ मनुष्योंकी एक सभा प्रत्येक विषयपर वादविवाद कर उसे उचित रूप से कार्यान्वित करती है,अतःउसीको गवर्मेण्ट कहना वा मानना होगा। क्योंकि जो मन्त्रिमण्डल बनता है वह उन्हीं सदस्यों द्वारा निर्वाचित किया जाता है। उक्त मन्त्रिमण्डलपर ही देशका समस्त भार होता है। अब हम विचार सकते हैं कि यह बहाना नहीं तो क्या है? इस प्रकारकी गवमॅन्ट सभाकी आज्ञा बिना कोई भी कार्य नहीं कर सकती। इस प्रकार इसके ऊपर किसी प्रकारका उत्तरदायित्व भी नहीं आ सकता,क्योंकि अन्तिम निर्णय देनेका इसे कोई भी अधिकार नहीं है। यह पार्लियामेंटके बहुमतवाले पक्षको पाबन्दी है। हर तरहसे बहुमत प्राप्त पक्षके कथनानुसार कार्य करना ही इसका कर्त्तव्य है।

हमारे आधुनिक प्रजातन्त्रवादका उद्देश्य मनुष्योंकी सभा संगठितकर राज्य परिचालन करना नहीं है महत्वहीन दब्बुओंसे जिनकी बुद्धि सर्वदा सीमित रहती है और जो हाथोंके इशारोंपर कामकरतेहैं, किसी भी उत्तरदायित्वपूर्ण गवमेंटका काम नहीं चल सकता। हां, इस प्रकार दलबन्दीका अभिनय अवश्य किया जा सकता है। इस व्यूह निर्माणमें वास्तविक कार्यकर्ताओंपर किसी भी प्रकारकी बदनामी

नहीं आती। वे अपनी मनमानी-घरजानी करके भी भलेके भले ही रहते हैं। उदाहरणार्थ यदि कोई विधान जनताके लिये हानिकारक बना तो उसके लिये टट्टीकी ओटमें शिकारकरनेवाला बदमाश किसी भी हालतमें दोषी नहीं ठहराया जा सकता। हालांकि जो कुछ हुआ है वा किया गया है, वह उसीके इशारोंपर किया है, तोहम जनताके प्रतिनिधि ही उसके लिये दोषी ठहराये जाते हैं।

वर्त्तमान समयमें किसी भी अनुचित अथवा उचित कार्यवाहीका उत्तरदायित्व उसी योग्य व्यक्तिपर आता है जो कि जनताकी रायसे राज्य-सञ्चालन करता है।

पार्लियामेंटरी प्रणाली मिथ्यावादी अप्रगतिशीलोंके लिये लाभ-दायक एवं आनन्ददायक हो सकती है, परन्तु एक प्रगतिशील उत्त-रदायित्वपूर्ण व्यक्ति सर्वदा ही इसे घृणित रूपमें देखेगा।

अतः यह मानना पड़ेगा कि प्रजातन्त्रवादकी यह प्रणाली वंशरक्ष-कोंकी स्वार्थपूर्तिके लिये अच्छा साधन बन गयी हैं। इसका मात्र उद्देश्य जनताके उज्वल भविष्यको अन्धकारमय करना है। एक यहूदी जो कि स्वयं धूर्त्त एवं पतित है, इस आडम्बरपूर्ण सभाको महत्वपूर्ण मान सकता है।

भूतकालीन विरुद्धगुणोंसे पार्थक्य रखना ही जर्मन प्रजातन्त्रवाद है,जिसे नेता स्वयं ही निर्धारित करता है। उसका उत्तरदायित्व उसी पर होता है। यहापर बहुसंख्यकोंके मत-निर्णयकी उपेक्षाकर उस योग्य व्यक्तिके कथनानुसार कार्य्य किया जाता है जो उसी कार्यके लिये अपने जीवनको समर्पित कर बैठा है।

यदि कोई उसपर आक्षेप करता है और उसकी आवश्यकता समझी जाती है तो उसे स्वयं एक ही उत्तर मिलता है कि—"जर्मन प्रजातन्त्रवाद अयोग्य एवं नैतिक विचारोंमें पतित,उल्टे मार्गसे चलने-वाले व्यक्ति द्वारा नहीं चल सकता। कोई भी अयोग्य एवं बुजदिल उस महान कार्यके उत्तरदायित्वको ग्रहण नहीं कर सकता। यदि वास्तवमें वह अयोग्य है तो एकदिन भी राज्य संचालन करना उसके लिये मुहाल है।"

गत वर्षोंकी पार्लियामेंटरी शासनपद्धतिने हैब्सवर्ग-साम्राज्यकी दिनोंदिन बढ़ती हुई अवनतिको और भी प्रोत्साहन दिया। उसकी नियुक्ति के साथ ही साथ अस्ट्रियासे जर्मन-जातिके प्रभुत्वका नाश होगया। परिणामतः पारस्परिक मतभेदकी भावना अस्ट्रियन-साम्राज्यमें बुरी तरहसे फैल गई। परन्तु इतना होते हुए भी सबका लक्ष्य जर्मनीकी शक्तिको क्षीण करना ही था। विशेषतः जबसे आर्कड्यूक-फ्रान्सिस फर्नीनैन्डको राज्यका उत्तराधिकारी घोषित किया गया,तभीसे जेक लोगोंके प्रभावको प्राणपणसे बढ़ानेकी चेष्टा की गई। इस उत्तराधि-कार प्राप्त शासकने अपने शासनके पूर्व्व ही हर प्रकारसे जर्मनजाति की ऐक्य-शृङ्खलाको छिन्न-भिन्न करनेके लिये कुछ भी नहीं उठा रक्खा। इसप्रकार खास जर्मनगांव भी सरकारी दस्तन्दाजीके कारण विभिन्न जातियोंसे भर गये। उनके बीच जर्मन और जर्मनीके प्रति कुभाव-नाओंका प्रचार किया गया। लोअर-अस्ट्रियामें इस आन्दोलनने खूब जोर पकड़ा, यहां तक कि जेक लोग वियेनाको अपना प्रधान शहर मानने लगे।

इस शक्तिप्राप्त हैब्सवर्ग (आ० ड्यू० फ्रा० फर्नीनेन्ड)' का विचार मध्य-योरूपमें कैथोलिक धर्मके आधारपर गुलाम-राष्ट्रकी सृष्टिकर रूससे अपनी रक्षा करना था। उसके घरानेमें जेक लोगोंका प्रभुत्व बहुत बढ़ गया था। आर्कड्यूककी स्त्री एक जेक काउण्टेस थी। उसने अपनी नीच प्रवृतियोंकी पूर्तिके लिये ही प्रिन्ससे शादीकी थी। उसका जन्म जर्मनविरोधी वातावरणमें हुआ था। उसकी आंतरिक इच्छा अष्ट्रियामें जेक-साम्राज्यकी स्थापना करने की थी। इस भांति हैब्सवर्गरोंने पवित्र राजनीतिमें पुनः धार्मिक प्रश्नोंको उठाया। जर्मन-दृष्टिकोणसे यह अत्यन्त दुःखदायक विचार थे।

इसका परिणाम किसी भी प्रकार सुखदायक नहीं हो सकता। इससे न तो हैब्सवर्ग घराना लाभ उठा सका न कैथलिक चर्चाका ही कुछ सम्मान बढ़ा। आशाओंने निराशाओंका रूपधारण किया। जनता क्षुब्ध हो उठी। अत्याचारी शासनके अन्तिम दिन दिखाई देने लगे।

हैब्सवर्ग घरानेको राज्य खोना पड़ा। रोमके हाथसे एक अच्छा राष्ट्र निकल गया।

राजनीतिमें धार्मिक प्रश्नोंको उठा राज्य-संचालकोंने लोगोंके सोये हुए दिलको जगा दिया। उनकी आंखें खुल गईं। प्राचीन अस्ट्रियन राजसत्ताने हरप्रकारसे जर्मनवादका नाश करनेकी चेष्टा की। इसका जवाब उन्हे अस्ट्रियाके पैन-जर्मन आन्दोलन द्वारा भलीभांति दे दिया गया।

१८७०ई०के युद्धके पश्चात् हैब्स-घराना बड़ो धीरता एवं गम्भीरताके साथ तन-मन-धनसे जर्मन-जातिका समूल नाश करनेपर तुला,

हुआ था। गुलाम-राष्ट्रका बीज रोपित हो चुका था। परन्तु उसके फलने-फूलनेमें जर्मन-जाति महान बाधक सिद्ध हो रही थी। जर्मनोंमें क्रान्तिकी ज्वाला धधक उठी। उन्होंने इस अन्यायके विरुद्ध सिर उठाया। उन्होंने जो विचारा वह अन्ततक कर दिखाया।

राष्ट्रीय भावनाओंसे परिपूर्ण देशभक्तोंने बगावतका झंडा खड़ाकर दिया। उनकी बगावत राष्ट्रके विरुद्ध नहीं, उस गवर्मेन्टके विरुद्ध थी जो देशमें मतभेदकी सृष्टिकर राष्ट्रीयताके महत्वको नष्ट करना चाहती थी।

कुछ पहले प्राचीन जर्मन-इतिहासमें साधारण राजभक्ति तथा अपनी मातृभूमिके लिये विशुद्ध राष्ट्रीय प्रेमके विभेदपर वादविवाद प्रारम्भ हुआ था।

साधारण नियमानुसार हमें यह न भूल जाना होगा कि मनुष्य का सर्वोच्च उद्देश्य किसी गवर्मेन्ट वा राष्ट्रका निर्माण करना नहीं वरन उसके राष्ट्रीय विचारोंमें समयानुकूल परिवर्त्तन करना है।

मानव अधिकार राष्ट्रके अधिकारोंसे कहीं बढ़े-चढ़े हैं।

यदि मानव अधिकारोंके लिये उचित संघर्ष करनेमें कोई जाति हिचकती है तो यह उसका दुर्भाग्य है। संसार संघर्षमय है। जीवन संग्राममें प्रवृत्त हो सफल होना ही मनुष्यमात्रका उद्देश्य है। अपने स्वत्वोंकी रक्षाके लिये लड़ना हमारा कर्त्तव्य है। यदि कोई जाति अपने उचित अधिकारोंके लिये लड़नेसे डरे तो भला किस प्रकार इस संघर्षमय ससारमें उसका अस्तित्व चिरस्थायी रह सकता है?

संसार डरपोक जातियोंके लिये नहीं है। "वीर भोग्यावसुन्धरा" पृथ्वी वीरोंके लिये है, कायरों और बुजदिलोंके लिये नहीं।

एक ओर पैन-जर्मन आंदोलनके उत्थानसे सम्बन्ध रखनेवाली प्रत्येक बात, और दूसरी ओर क्रिश्चियन सोशलिस्टपार्टीकी भयोत्पादक प्रगति, दोनों ही मेरे लिये उद्देश्य रूपमें अध्ययन करनेके लिये गम्भीर विषय थे। पहलेसे सच्ची देश-भक्ति और दूसरेसे कूट-नीतिज्ञताका ज्ञान हो सकता था।

मै अपनी परीक्षा दो व्यक्तियोंको लेकर प्रारम्भ करूंगा जो कि दो विभिन्न आन्दोलनोंके प्रवर्तक तथा नेता थे। डा० कार्ल लूजर क्रिश्चियन सोशलिस्ट पार्टीका तथा जार्जवान स्कोनरर पैन-जर्मन आन्दोलनका नेतृत्व करते थे।

मनुष्यत्वके विचारसे पार्लियामेंटरी व्यक्तित्वसे उन दोनोंका ही व्यक्तित्व कहीं बढ़ा-चढ़ा था। सांसारिक राजनीतिक भ्रष्टताके दल-दलसे दोनों ही का जीवन मुक्त तथा निष्कलङ्कित था। मेरी सहानुभूति सर्वप्रथम पैन-जर्मन स्कोनररको ओर ही आकृष्ट होती है, परन्तु क्रिश्चियन सोशलिष्ट-लीडरसे सहानुभूति प्रगट किये विना् मेरा मन नहीं मानता।

जब मैंने उन दोनोंके व्यक्तित्व तथा योग्यताकी तुलनाकी, स्कोनरर मेरे दृष्टिकोणमें सामयिक तथा आधारपूर्ण समस्याओंपर कुछ अधिक गम्भीर विचार करनेवाला प्रतीत हुआ। किसी दूसरेकी अपेक्षा अस्ट्रियन साम्राज्यके समूल विनाशको उसने वास्तविक तथा स्पष्ट रूपमें देखा। यदि हैप्सवर्ग-साम्राज्यके प्रति उसकी चेतावनियों पर उचित रीतिसे ध्यान दिया जाता तो समस्त योरूपके विरुद्ध जर्मनी युद्ध न छेड़ता और वर्त्तमान समयमें जर्मनी कुछ और

हो होता। यद्यपि स्कोनरर समस्याओंकी तह तक पहुंच गया था तथापि मानव-तत्वको समझनेमें उसने भूल की।

डा० लूजरमें यही एक महान गुण था। उसे मनुष्योंका असाधारण ज्ञान था। मनुष्योंको अपेक्षाकृत उच्च दृष्टिसे देखनेकी त्रुटि उसमें न थी। किसी भी वस्तुको उसके वास्तविक रूपमें देखना ही उसका आदर्श गुण था। इस प्रकार वह मामवसमाजको वास्तविक रूपमें देख उसकी सम्भवता अथवा असम्भवतापर भलीभाँति विचार कर सकता था। परन्तु स्कोनरर इस विद्यामें उतना निपुण न था। पैन-जर्मनके सभी विचार सिद्धान्तानुसार ठीक थे, परन्तु अपनी मानसिक बुद्धिको जनसाधारणमें विकसित करनेकी शक्तिका उसमें अभाव था। अपने सिद्धान्तोंको किस रूपमें और कैसे जनताके सामने रक्खा जाय, इसका उसे ज्ञान न था। किसीके हृदयमें अपनी बातोंको बैठा देना, आसान काम नहीं है। विशेषतः स्कोनररके लिये यह सर्वथा असम्भव था। उसके विचार सीमित थे। उसकी बुद्धि एक भविष्यदर्शीके समान थी। उसकी सत्यता क्रियात्मक रूपमें कभी भी नहीं आ सकती थी।

दुर्भाग्यवश मध्यश्रेणीके लोगोंकी संघर्ष-तत्परताकी असाधारण परिमितताके विषयमें उसका अनुभव अधूरा था। यह विचार उनकी व्यापारिक स्थितिके कारण ही था, जिसे खो देनेका भय मध्यवित्तके लोगोंको सर्वदा ही लगा रहता है। स्कोनररके विचारसे मध्यश्रेणी को कार्य्यक्षेत्रमें अग्रसर होने देनेमें यही सबसे प्रबल बाधक है। परन्तु यह बात ठीक नहीं थी।

मध्यवर्गकी अन्दरूनी महत्वपूर्ण तह तक न पहुचना ही सामाजिक प्रश्नोंमें उसके विचारोंकी आरोग्यताका एकमात्र कारण है।

इन सब बातोंमें डा० लूजरके विचार स्कोनररसे सर्वथा विपरीत थे। उसने इस बातको भलीभांति समझ लिया था कि उच्च-मध्यश्रेणीकी तत्कालीन शक्ति अत्यन्त क्षीण थी और उसके लिये किसी एक नये आन्दोलनपर विजय प्राप्त करना असम्भव था। यह प्राप्त शक्तियोंका उपयोग करनेको प्रस्तुत था। उसमें तत्कालीन सभाओं वा संस्थाओंको अपने सिद्धान्तकी ओर आकृष्ट करनेकी शक्ति थी। इस प्रकार वह प्राचीन उपायोंसे ही अपने नवसिद्धान्तोंका का प्रचार करनेमें समर्थ था।

उसने अपने इस नये दलको स्थापना नाशसे भयभीत मध्यश्रेणी के लोगोंके आधारपर की। इस भांति उसने ऐसे अनुयायियोंको प्राप्त किया जो कि अभय, आत्मोत्सर्गके लिये सर्वदा तत्पर एवं लड़ने मरनेके लिये प्रस्तुत रहते थे। अपनी असाधारण चतुरतासे उसने कैथोलिक चर्चसे संबंध स्थापितकर युवक पादरीपर अपना प्रभाव जमा लिया। या तो पादरियोंके दलको कार्यक्षेत्रसे हटनेके लिये वाध्य किया गया, अथवा वे स्वेच्छापूर्वक सहानुभूति प्राप्त इस दलमें आमिले।

डा० लूजरके गत कार्य्योंको केवल विशिष्टता मानना हमारे पक्षमें बहुत अन्याय होगा क्योंकि उसमें एक उस्ताद चालबाजका ही गुण न था, वह साथ ही साथ एक महान सुधारक भी था। अपनी योग्यता तथा समयानुकूल सुविधाओंके उपयोगका ठीक ज्ञान होनेके कारण वह अपने ऊपर भलीभांति नियन्त्रण रखता था।

इस विख्यात तथा सच्चे मनुष्यने जो उद्देश्य अपने सामने रक्खे थे वे किसी भी हालतमें कम उग्र और अवास्तविक नहीं थे। उसकी आन्तरिक इच्छा राज्यके अन्तस्तल वियेनापर अधिकार जमानेकी थी। वह नगर रोगग्रस्त तथा क्षीणकाय साम्राज्यका अवशिष्ट जीवन था। "यदि हृदय स्वस्थ था तो अन्य अङ्ग पुनः जीवन प्राप्त कर सकते थे" निस्सन्देह यह विचार सिद्धान्तानुकूल है, परन्तु इसको कार्यान्वित करनेका समय निश्चित एवं सीमित था।

इस स्थानपर उस मनुष्यकी कमजोरी जाहिर होती है।

निस्सन्देह नगराध्यक्षके पदपर उसके कार्य अमर और स्मरणीय रहेंगे तथापि वह राज्यकी रक्षा किसी भी हालतमें नहीं कर सकता था। बहुत काफी देर हो चुकी थी। "अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत।"

उसके प्रतिद्वन्दी स्कोनररने इसे अत्यन्त प्रत्यक्ष रूपमें देखा।

जिस कार्यको डा० लूजरने अपने हाथमें लिया उसमें, उसे अपूर्व सफलता प्राप्त हुई, परन्तु जो परिणाम उसने विचारा वह व्यर्थ और निकम्मा प्रमाणित हुआ।

अफसोस; स्कोनर अपनी आकांक्षाओंकी पूर्ति न कर सका! उसके भयने उसे अग्रसर न होने दिया!

इस प्रकार दोनों अपने उद्देश्यको प्राप्त करनेमें असफल रहे। न डा० लूजर अस्ट्रियाको बचा सके और न स्कोनर पतनोन्मुख जर्मन जातिकी रक्षा न कर सका। अन्तमें दोनों ही असफल रहे।

उक्त दोनों दलोंकी असफलताके कारणोंका गम्भीर अध्ययन वर्त्तमानकालमें हमारे लिये अत्यन्त शिक्षादायक प्रमाणित हो रहा है। मेरे मित्रोंके लिये यह बहुत लाभदायक है,क्योंकि बहुत सी परि-स्थितियां आज भी उपस्थित हैं जो कि तत्कालीन घटनाओंसे साम ञ्जस्य रखती हैं और उन भूलोंका स्मरण दिलाती हैं जिनसे एक आन्दोलनका नाश और दूसरेकी व्यर्थता प्रकाशित होती है।

अपने प्रारम्भकालमें ही पैन-जर्मन आन्दोलन अपने आदर्शोंकी ओर जनताको आकृष्ट न कर सका। फलतः उसके लिये अनुयायियों का टोटा ही रहा। यही उसके विनाशका कारण हुआ। यह आदर-णीय एवं मध्यश्रेणीका आन्दोलन था। परन्तु साथ ही साथ उसका आन्तरिक रूप उग्र था।

पैनजर्मनवादके प्रारम्भकालसे ही आस्ट्रियामें जर्मनोंकी स्थिति बहुत खतरनाक होगई थी। जर्मनजातिके विनाशके लिये प्रतिवर्ष पार्लियामेंटकी नीति क्रमशः उग्र ही होती जा रही थी। इस सभाके अस्तित्वको सर्वदाके लिये मिटा देना ही जर्मनजातिके स्वत्वों रक्षाका एकमात्र अन्तिम उपाय था। किन्तु सब कुछ होते हुये भी इस बात की बहुत कम आशा थी।

अन्तमें पैन-जर्मनोंने पार्लियामेंटमें प्रवेश किया और अपनासा मुंह लटकाये उन्हे वापिस लौट जाना पड़ा।

पैन-जर्मनोंने जिस स्वरूपके समक्ष अपनी मांगोंको रक्खा, वहां उनका महत्त्व बढ़नेकी अपेक्षा घट गया। क्योंकि उनकी आवाज़ वहां उपस्थितसदस्यों अथवा प्रेस-समाचारोंके पढ़नेवालोंतकहीपहुंचपातीथी

अपनी मांगोंको सुनानेके लिये पार्लियामेंट उपयुक्त स्थान नहीं है इसका सरल तथासीधा उपाय जनसाधारणकी सभा है। क्योंकि वहां जनता हजारोंकी तादादमें वक्ताके विचारोंको सुनने और उसपर निस्वार्थ रूपसे विचार करनेके लिये आती है। किन्तु पार्लियामेंटके विषयमें ऐसी बात नहीं। वहां कुछ सौ व्यक्ति उपस्थित रहते हैं। उनसेसे अधिकांश सदस्य महज अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये उपस्थित होते है। बाकी बचोंमें सिद्धान्तोंका अन्तर रहता है। स्वार्थी जिस ओर स्वार्थसिद्धि देखते है उसी ओर बिना सोचे समझे मिल जाते हैं और परिमाण स्वरूप बहुत सिद्धान्तवादियोंको आदर्शपूर्ण होते हुए भी हार खानी पड़ती है।

अतः ऐसे लोगोंके यामने कुछ कहना या बोलना "भैंसके आगे बीन बजाना है।" वास्तवमें यहां झकमारनेके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। यहां सफलता-प्राप्ति स्वप्नमात्र है।

यही था वहांका कार्य-कलाप। आखिर पैन-जर्मन बोलते बोलते थक गये, परन्तु उनके हाथ कुछ भी न लगा।

समाचार पत्रोंने उनकी पूर्णतया उपेक्षा की अथवा उनके व्याख्यानोंको इस तरह तोड़ मरोड़कर छापा कि क्रमुनगतता तथा भाव नष्ट होगये। परिणामतः जनताका दृष्टिकोण उस नवीन-आन्दोलनके उद्देश्योंसे फिर गया। किसी सदस्यके व्यक्तित्व रूपसे कुछ कहनेका महत्व उतना नहीं जितना प्रकाशनका होता है। समाचार पत्रोंमें उनकी वक्तृताओंकी कतरन छपा करती थी अथवा उन्हें इस प्रकार काट-छांट कर प्रकाशित किया जाता था कि उनके भाव तो लुप्त हो

जाते थे और साथ ही साथ उन्हें पूर्णरूपेण निरर्थक भी बना दिया जाता था। जिस स्वरूपके आगे ये लोग बोला करते थे वह ५० सौ पवित्र मनुष्योंका एक गुट्ट था। इससे हम बहुत कुछ जान चुके हैं।

कुछ समझना असम्भव था।

पैन-जर्मनआन्दोलन सफल हो सकता था,बशर्ते लोगोंकी समझ में यह बात आ जाती कि यह आन्दोलन एक नवीन दल-गठनके लिये नहीं, नवजीवन दानके लिये आरम्भ किया गया है। अन्ततक लड़नेके लिये यही एकमात्र उपाय हो सकता था। उस महान संघर्ष में आन्तरिक शक्तियोंको इसीके द्वारा जुटाया जा सकता था। परन्तु अफसोस। इस उद्देश्यकी पूर्त्ति एक वीर एवं बुद्धिमान नेता केवल अपनी थोड़ीसी नासमझीके कारण न कर सका।

अपनी जानको हथेली पर रखनेवाले योद्धा भी यदि किसी एक सांसारिक नियमके लिये न लड़ें तो उनके लिये कुछ ही समयमें स्वेच्छा पूर्वक अपनी जान कुर्बान कर देना असम्भव हो जायेगा। यदि कोई मनुष्य अपने स्वार्थोंके लिये लड़े तो उसे जनताकी सहानभूति नहीं प्राप्त हो सकती।

कथोलिक चर्चके विरुद्ध पैन-जर्मन आन्दोलन जनताके मनोभाविक चरित्रपर अपना प्रभाव न जमा सका। स्वयं उसके प्रवर्तकमें समझानेकी शक्ति न थी, ऐसी दशामें आन्दोलन किस तरह चल सकता था यह एक विचारवान मनुष्य स्वयं सोच सकता है।

गिर्जाघरोंमें जेक अधिकारियोंका प्रवेश अस्ट्रियाको गुलाम देश बनानेके उपायोंमें से एक उपाय था। यह इस प्रकार हुआ—

सर्वप्रथम जेक पादरियोंको जर्मन गिर्जाघरोंमें प्रविष्ट करा दिया गया—वहां घुसते ही उन्होंने जेकजातिका प्रभुत्व फैलाना शुरूकिया—इस भांति जेक स्वर्थोंकी पूर्त्ति और जर्मन जातिका अङ्गभङ्ग करनेका उपाय सोच निकाला गया।

आह! बेचारे जर्मन पादरी राज्यकी इस निन्दनीय नीतिके सम्मुख शक्तिहीन होगये। उनके लिये लड़ना तो दूर, स्वयं अपनी रक्षाका प्रश्न आ पड़ा। उनके ऊपर नानाप्रकारके अत्याचार किये गये। इस प्रकार जर्मनजाति छोटे २ असह्य अत्याचारों द्वारा एक ओर धार्मिक मामलोंमें और दूसरी ओर राजनीतिक प्रश्नोंमें अपनी दुर्ब्बलताके कारण उन्नति पथसे विमुख कर दी गई।

जार्ज स्कोनरर उनलोगोंमेंसेन था जो अपूर्णरूपसे कामकोप्रारंभ करते हैं। उसने गिर्जाघरोंसे भी लड़ाई ठानी। उसे पूर्ण विश्वास था कि वह अकेला ही जर्मन जातिकी रक्षा करनेमें समर्थ हो सकेगा।

"लौस वानरम" आन्दोलन अतीव शक्तिशाली प्रतीत हुआ। यद्यपि उसके आक्रमणका तरीका भयंकर तथा कठिन था, तथापि वह अपने आप ही नष्ट हो गया। यदि वह सफलीभूत हो गया होता, तो जर्मनीमें सर्वदाके लिए दुःखदायी धार्मिक बंटवारा हो जाता। परन्तु संघर्षके लिये उसके सिद्धान्त तथा कारण सर्वथा अनुपयुक्त थे।'

निस्सन्देह जर्मनपादरियोंके स्वजातीय अधिकार जेक पादरियों की अपेक्षा बहुत सीमित थे। जेकपादरी अपनी जातिके साथ अच्छा व्यवहार करते थे इसलिये उनकी ओर चर्चका भी झुकाव था।

जर्मनपादरी चर्चकी सेवा तन-मनसे किया करते थे, परन्तु उनकी सेवाओंका प्रतिफल जर्मनजातिके प्रति चर्चका रूखा व्यवहार था।

यहां उस ढङ्गपर विचार कीजिये जिसे हमारा आफिस अधिकारीवर्ग एक राष्ट्रीय भावनाओंको पुनर्जागृति करनेवाले आन्दोलन के विरुद्ध अख्तियार कर सकता है। यह कोई विशेषता नहीं है। इसमें आश्चर्य नहीं कि ऐसी परिस्थितिमें कोई अन्य अधिकारप्राप्त जाति भी ऐसा कर सकती थी। अथवा इस बातकी कल्पना कि संसारके किसी भागमें भी अफसरोंका गुट्ट एक राष्ट्रीय अधिकारोंके लिये लड़नेवाले आन्दोलनके महज दो शब्द राजशक्ति" के बलपर भंग कर सकता था, जैसा कि पांच वर्ष पूर्व हो चुका है। कहा नहीं जा सकता कि ऐसा क्यों कर हुआ—या तो यह सर्व प्राकृतिक था अथवा किसीकी पहुंची हुई दिमागी उपजका परिणाम!

क्या वर्तमान समयमें हम दोनों जातियों जर्मन और अस्ट्रियन कायहूदीप्रश्नकेप्रति जो कि धार्मिक अथवा जातिलाभसे किसीप्रकार का सम्पर्क नहीं रखता, कोई रुख नहीं है? यदि है, तो आप अभीभी यहूदी-रैबी (एक प्रकारका गिर्जाघर) के एक जातिके हितोंके लिये कैसे तुच्छ विचार हैं,इसकी तुलना दोनों क्रिश्चियन जातिको ओरसे नियुक्त जर्मनपादरियोंके विचारोंके साथ कर सकते है।

ऐसा हमलोगोंके साथ सर्वदासे होता आया है और इसी कारमें हमारे विचार दृढ़ एवं निश्चित होते गये हैं।

"राज-शक्ति" प्रजातन्त्रवाद" "शान्तिवाद", "अन्तरराष्ट्रीय सामाजिक समतावाद" इत्यादि हमारे समक्ष विचारस्वरूप उपस्थित

हैं। इन सिद्धान्तवादी धारणाओंमें हम पूर्णतया निश्चित एवं पवित्र हैं। परिणामतः प्रत्येक विषयपर हम इसी दृष्टिकोणसे अपना निर्णय देनेमें समर्थ हैं।

हमारा "सुधारवाद" जर्मन-हित-सम्बन्धित "आन्तरिक पवित्रता, राष्ट्रीय भावोंकी उन्नति, भाषा, जर्मन-जीवनकी रक्षा, विशेषतः जर्मन स्वतन्त्रता आदि प्रश्नोंकी" उन्नतिके लिये सर्वदा प्रयत्नशील है और भविष्यमें गतिरोधकी तनिक भी परवाह न कर देशके लिये अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित होगा।

राजनीतिक दलोंका उद्देश्य किसी भी हालतमें धार्मिक प्रश्नोंमें हस्तक्षेप करना नहीं होना चाहिये। यदि वे ऐसा करते हैं तो यह स्पष्ट है कि उनकी जातिका नैतिक पतन हो गया है। इसी प्रकार धर्मको दल-प्रतिद्वन्दितामें न मिला, निस्वार्थ रहने देना चाहिये।

यदि चर्चके अधिकारी धार्मिक संस्थाओं एवं सिद्धांतोंका उपयोग करते हैं,तो वे अपनी राष्ट्रीयताके प्रति घातक हैं। इससे उनका कोई भी लाभ नहीं हो सकता। परन्तु निकट-भविष्यमें उनका अन्त उन्हींके लिये विनाशकारी सिद्ध होता है।

एक राजनीतिक नेताको किसी भी हालतमें धार्मिक सिद्धान्तों एवं संस्थाओंमें हस्तक्षेप न करना चाहिये, अथवा उसे अपनेको राजनीतिज्ञ कहने वा कहानेका कोई अधिकार नहीं होना चाहिये। ऐसी दशामें उसे उन गुणोंके लिये सुधारक कहा जा सकता है—परन्तु किसी भी तरह राजनीतिज्ञ नहीं।

इसके विपरीत और कोई भी नीति विशेषतः जर्मनी आपदाओं की पथ-प्रदर्शिका बन सकती थी।

"पैन-जर्मन-आन्दोलन और रोमके साथ उसका संघर्ष"—इस विषयके गम्भीर अध्ययनके पश्चात् तब और अब, मै इसी परिणाम पर पहुंचता हूं कि "सामाजिक प्रश्नोंमें अपनी सीमित ज्ञान-शक्तिके कारण इसने जनताकी लड़ने भिड़नेकी शक्तिको न पहचाना; पार्लियामेंट जाकर इसने अपनी समस्त शक्ति खो दी,और अपने आपको उस सभा द्वारा प्रदत्त दुर्बलताके पुरस्कारसे नष्ट कर दिया। चर्चों के विरुद्ध इसके आन्दोलनने जनताकी रही-सही सहानुभूति भी खो दी,और अपने राष्ट्रीय-विचार-पूर्ण सहायकोंसे इसे वंचित होना पड़ा।

इस प्रकार किसी भी तरह अस्ट्रियामें इसे वास्तविक सफलता न प्राप्त हो सकी।

पैन-जर्मन आन्दोलनका जिन कारणोंसे क्रिश्चियन सोशलिष्ट-पार्टीके आन्दोलनसे मत मतान्तर रहता था वे बिलकुल ठीक और विचारपूर्ण थे।

सोशलिष्ट पार्टीका आन्दोलन कुछ सफल जरूर रहा, परन्तु अपने परिणाम तक पहुंचनेके कारण व्यर्थ ही प्रमाणित हुआ। इसमें जनताके महत्त्वको जाननेका आवश्यक ज्ञान था, और अपने प्रारम्भकालसे ही इसने अपने उद्देश्योंको ऊंचा साबित कर,जनताको अपनी ओर आकर्पित कर लिया था,चूंकि इसकी स्थापना मध्यमश्रेणी के आधारपर हुई थी, अतः इसे आत्म न्योछावर करनेके लिये प्रस्तुत निम्न-मध्य-वर्ग एवं मजदूरोंको अपनी ओर आकर्षित करनेमें देर

न लगी। इसने किसीभी धार्मिक संस्थासे लड़नेकी नीतिका परित्याग कर दिया। फलतः इसे एक ऐसे शक्तिशाली संगठनका सहारा मिला जो कि चर्चका प्रतिनिधित्व करता था। विस्तृत रूपसे व्यापक प्रचारके महत्वका इसे अच्छा अनुभव था। अपने अनुयायियों एवं जनतापर स्वाभाविक बुद्धिसे आध्यात्मिक प्रभाव डालनेकी इसमें विशेषता थी।

किन्तु,अपने तौर तरीकेसे यह पार्टी अस्ट्रियाको न बचा सकी। उद्देश्योंको अन्धकारमें रखनेके कारण इससे दो भयङ्कर भूलें होगयीं। जातीय आधारपर स्थापित होनेके बजाय इसकी प्रतिद्वन्दिता धार्मिक धारणाओंपर निर्भर कराई गई। दूसरी भूलका भी यही कारण हुआ।

इसके संस्थापकने सोचा कि यदि क्रिश्चियन पार्टीका उद्देश्य अस्ट्रियाको बचाना है तो जातीय सिद्धान्तोंपर इसे स्थित करना आवश्यक नहीं, क्योंकि उस राज्यका विनाश निकट भविष्यमें हो सकता था। साथ ही साथ पार्टीके नेताओंका यह अभिमत था कि वियेनाकी मांग सरकारका नाश करना नहीं, वरन हर प्रकारसे मत मतान्तरको दूरकर परस्पर एकता स्थापित करना है।

वियेना उन दिनों इस प्रकार जेक लोगोंसे भर गया था कि वह पार्टी जातीय प्रश्नोंकी असह्य वेदनाको सहकर ही अपनेको जर्मनोंके प्रतिकूल होनेसे बचा सकती थी। यदि अस्ट्रियाको बचाना था तो इसका अर्थ यह नहीं था कि पार्टीके बिनाही उसका काम चल सकता था। अपने कार्यको सफल बनानेके लिये पार्टीने चालबाज नरमदली

बहुसंख्यक जेक-व्यापारियोंका विरोध करना शुरू किया, और इस प्रकार उन्हें इस बातका दृढ़ विश्वास हो गया कि प्राचीन अस्ट्रियामें जाति भेदभावके उद्भावक, धार्मिक भित्तिपर स्थापित, जुडावाद पर उनकी अभूतपूर्व विजय होगी।

यह बात स्पष्ट है कि यह संघर्ष यहूदियोंको अतिसीमित हानि पहुंचा सकता था। यदि उनके विरुद्ध ज्यादासे ज्यादा कुछ अनिष्टकारी कार्य होता, तो उनके लिये पवित्र जलकी एक बून्द ही उन्हें दुःखोंसे छुड़ा उनके जुडावादकी रक्षाके लिये यथेष्ट थी।

इस प्रकार अपूर्ण रीतिसे किये गये कार्य्योंसे प्रतिद्वन्द्वी सोशलिस्ट पार्टी लोगोंकी निगाहोंसे गिर गई।

यहपाखंडपूर्ण अपूर्ण-प्रतिद्वन्दितावाद बिलकुल वाहियात था, क्योंकि इससे स्वत्व-रक्षाकी सान्त्वना प्रदान की गई थी। लोगोंको बताया गया था कि उनका शत्रु गलत रास्तेपर है, परन्तु उन्हें यह न पता था कि वे स्वयं एक गलत रास्तेपर चल भयङ्कर भूल कर रहे हैं।

यदि डा० लूजर जर्मनीके निवासी होते तो आज उनकी गणना जर्मन-जातिके महापुरुषोंमें होती। यह उनका तथा उनके कार्यक्रमका दुर्भाग्य था कि अस्ट्रिया जैसे अनहोने देशमें उन्हें कुछ करनेके लिये वाध्य होना पड़ा। सौभाग्यवश अपनी मृत्युके समय बाल्कन-साम्राज्यमें अप्रतिहत वेगसे बढ़ती हुई धधकती ज्वालाको देख उनका हृदय सन्तुष्ट होगया। उन्हें मालूम होगया कि "अबतक वह जिसपर विश्वास करते थे, उसका निवारण भी हो सकता है।"

जर्मनजातिके पुनर्गठनके उद्देश्यसे संचालित पैन-जर्मन आन्दो-

उन सिद्धान्तोंके विचारसे बिल्कुल ठीक था, परन्तु उसके तरीके तत्कालीन परिस्थितिके योग्य न थे। वह राष्ट्रीय था, किन्तु अफसोस! जनताकी दृष्टिमें वह पूर्णतया समाजिक न था। उसका अपूर्णप्रति-द्वन्दितावाद जातीय आधारपर स्थित था, धार्मिक आधारपर नहीं, किन्तु दूसरी ओर उसका केवल एक ही जातिके लिये लड़ना यथार्थतः राजनीतिक दृष्टिसे भयङ्कर भूल थी।

जर्मन जातिके पुनरुत्थानके विषयमें क्रिश्चियन सोशलिष्ट आन्दोलनके विचार अत्यन्त संदिग्ध थे, परन्तु एक पार्टीकी हैसियत से उसका पथ प्रदर्शनका तरीका अच्छा था। सामाजिक प्रश्नोंके महत्वको उस पार्टीने भलीभांति समझा, परन्तु यहूदियोंके विरुद्ध लड़ाई छेड़ पार्टीने बड़ी भारी भूल की। उसका सबसे बड़ा दोष राष्ट्रीयताकी धारणाको नासमझी थी।

उस समय मैं असन्तोष-सागरमें गोते लगा रहा था। जैसे २ मैं आस्ट्रियन साम्राज्यके खोखलेपनको देखता गया वैसे ही वैसे मुझे उसकी रक्षा असम्भव प्रतीत होती गई। मुझे इसका पूर्ण विश्वास होगया कि यह जर्मनजीवनको दुखी करनेके लिये ही बना है।

मेरा यह दृढ़ विश्वास था कि जर्मन जातिके उत्थान और विकाशमें बाधक प्रत्येक विषय और मनुष्यको इस साम्राज्यकी छायामें शरण मिलेगी। राजधानीमें जातियोंके बेतरह-सम्मिश्रणसे मुझे घृणा थी। जेक, पोल, हंगेरियन, रथेनियन, सर्ब, क्रोट, विशेषतः वर्त्तमान सभ्यताके नाशक यहूदियोंके बढ़ते हुए जमघटको देख मेरा हृदय घृणासे परिपूर्ण हो गया।

इन सब बातोंको देख एक अस्ट्रियन राजसत्ताके साथ मेरा प्रेम होना असम्भव था। मेरा हृदय अस्ट्रियामें जर्मन-अस्ट्रियन जातिके प्रेमपूर्ण सहयोगसे स्थापित प्रजातन्त्रवादका आह्वान कर रहा था। जर्मन जातिकी मुक्तिकी शुभ कामना करते हुए मैं अस्ट्रियन साम्राज्यके विनाशकी घड़ियां गिन रहा था।

उस समय मेरा मन उस जगह जानेके लिये इच्छुक होरहा था, जिसके लिये युवावस्थाके प्रारम्भकालसे ही मेरे हृदयमें गुप्त तथा पवित्र प्रेम था।

एक दिन मैं एक महान शिल्पकार होनेका स्वप्न देख रहा था, परन्तु आज मैं अपने जीवनको जाति तथा देशोद्धारके लिये समर्पित कर अपनेको परम भाग्यशाली समझता हूं। मेरे हृदयकी चिरकालीन आकांक्षा पूर्ण हुई—"मेरी मातृभूमिका सम्बन्ध अपने स्वदेशके साथ होगया।" उस दिन मैं अपनेको बड़ा भाग्यशाली समझता था।

अपने जीवनमें वियेनासे मैंने बहुत बड़ी और गम्भीर शिक्षा पाई। अब मैं उन दिनोंकी अनुशासनात्मक शिक्षाका मूल्य भलीभांति समझने लग गया हूं।

उस कालका इतना विस्तृत विवरण देनेका यही कारण है। उस समय मैंने "पार्टीके सिद्धान्तों" के प्रश्नका बहुत ही सुन्दर अध्ययन किया। मेरे वियेनाके ये पांच वर्ष बड़े ही महत्वपूर्ण थे। मैं कह नहीं सकता कि यदि भाग्यवश मैंने उस कालमें व्यक्तिगत अनुभव न किया होता तो आज तत्कालीन जुडावाद, सामाजिक प्रजातन्त्रवाद, मार्क्सवाद आदिके विषयमें मेरे क्या विचार होते।

चौथा अध्याय।

म्यूनिक।

१९१२ ई० के बसंतकालमें मैं म्यूनिक गया।

एक जर्मन शहर! वियेनासे कैसा भिन्न! बेबिलोनियाकी उन जातियोंका ध्यानकर मुझे बड़ा बुरा लगा। ठीक यही दशा उनके बोलचाल की थी जो हमसे करीब-करीब मिलती-जुलती थी, और जिसने मेरी युवावस्था और लोअर बवेरियाके सम्बन्धका स्मरण कराया। हर तरहसे यह शहर मेरे लिये प्रिय था। दुनियांके किसी भी परदेसे ज्यादा मैं अपनेको इस शहरका मानता था, और यही कारण है कि यह मेरी उन्नतिसे अभिन्न नहीं है। मेरी और इस की उन्नतिका गठबंधन एकसूत्रसे ही प्रकृतिने किया था।

अस्ट्रियामें "ऐक्य विचार" के अनुयायियोंमें केवल हैब्सबर्ग तथा जर्मन थे। एक ओर दबाव और गणना तथा दूसरी ओर भोलापन एवं राजनीतिक अज्ञानताके कारण इसका होना आवश्यक था। भोलापन इसलिये क्योंकि उनका कोरा विश्वास था कि "ट्रिपल एकता" द्वारा जर्मन-साम्राज्यकी रक्षा एवं उसे शक्तिशाली बनाते हुए वे उसकी सेवा कर सकेंगे। राजनीतिक अज्ञानताका कारण उनकी कल्पनाओंका असैद्धान्तिक वातावरण था, क्योंकि वास्तवमें वे

साम्राज्यको मृत-अस्ट्रियन राष्ट्रके चंगुलमें फंसा रहे थे जहां उनका पतन अवश्यम्भावी था। जो हो, वह एकता अस्ट्रियाके जर्मन-संगठनको तोड़नेवाले आन्दोलनके लिये बहुत ही सहायक प्रतीत होरही थी। हैब्सवर्गके वंशधरोंका यह ध्यान था कि यदि जर्मन-साम्राज्यके साथ दिखावटी एकता भी हो जायेगी तो उनके कार्य्योंके बीच किसी भी प्रकारकी बाधा न पड़ेगी, और दुर्भाग्यवश उनका यह विचार ठीक भी था, क्योंकि इस नीति द्वारा बहुत आसानी और कम जोखिमसे वे समस्त देशमें जर्मन-जातिके ऊपर प्रभाव जमानेमें समर्थ थे। इस-प्रकार उनको जर्मन-गवर्मेन्ट द्वारा किये गये किसी भी प्रतिवादसे डरनेकी आवश्यकता न थी। अस्ट्रियन-जर्मनोंके प्रति उनका व्यवहार बहुत ही बुरा था। वे उनकी किसी भी बातपर कान नहीं देते थे। ट्रिपल-एकताके अनुसार जब कभी खुशामदियोंको राज्यकी तरफसे विशेष सुविधा प्रदान की जाती तभी जर्मन बिगड़ उठते थे, परन्तु उन्हें चुप करा दिया जाता था।

यदि जर्मनीमें इतिहास एवं जातीय आध्यात्मिकताका और ज्यादा प्रकाश होता तो सम्भव था कि कोई भी रोमके कार्डिनल और अस्ट्रियाके हैब्सवर्गकी जनताके साथ खुलेआम लड़ाईपर विश्वास करनेको तैयार नहीं होता। 'यदि कोई भी गवर्मेन्ट' हैब्सवर्ग-साम्राज्यकी सहायतार्थ एक भी इटालियनको भेजती तो इटली आग बबूला हो उठता। परन्तु यदि कोई दुश्मनीके तौरपर अस्ट्रिया पर चढ़ाई करता तो इटली तन-मन-धनसे उसका साथ देनेको प्रस्तुत था। वियेनामें दमकते हुए अस्ट्रियन-साम्राज्यके प्रति इटालियनोंकी तामसी

घृणा एवं असीम क्रोधको मैंने कई बार देखा। इटालियन स्वतन्त्रताके विरुद्ध किये गये हैब्सवर्ग घरानेके पाप विस्मरणीय न थे, और न भविष्यमें ऐसी आशा ही थी। जनता तथा इटालियन-गवर्मेन्ट दोनोंकी कोई ऐसी इच्छा नहीं देखी जाती थी। उस समय इटलीके सामने दो उपाय थे—सम्मानपूर्ण सन्धि अथवा युद्ध।

इसमेंसे पहलेको अपनी नीति बनाकर ही दूसरेके लिये जनता को तैयार किया जा सकता था।

जर्मन-एकताकी नीति निरर्थक तथा खतरनाक थी, क्योंकि अस्ट्रियाकी रूसके प्रति शत्रुता दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी और युद्धका छिड़ना अनिवार्य प्रतीत हो रहा था।

सहसा एकताकी स्थापनाका प्रस्ताव क्यों किया गया? सिर्फ देशके भविष्यको उज्ज्वल रखनेके लिये, जैसा कि देश अपने बलपर भी अकेला कर सकता था। परन्तु उस एकताके दृष्टिकोणमें जर्मनों को सर्वदा ऐसी परिस्थितिमें रखना ही उनकी भविष्योन्नतिके लिये आश्वासन था।

प्रतिवर्ष जर्मनीकी आबादी ९००,००० बढ़ती है।

—भूमि-प्राप्ति और औपनिवेशिक-व्यापार-नीति—

उक्त दोनों तरीकोंपर बहुत गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया। दोनोंकी ही भलीभांति परीक्षाकी गयी और विभिन्न दृष्टिकोणोंसे उनपर गरमागरम बहसें हुईं। अन्तमें दूसरेको ही तत्कालीन परिस्थितिके लिये उपयुक्त समझ अख्तियार किया गया। निस्सन्देह पहला तरीका दोनोंके लिये उपयोगी सिद्ध हो सकता था। बढ़ती हुई आबादी

केलिये-नये देशोंको प्राप्त करना बहुत ही लाभदायक और आवश्यक है परन्तु ऐसा तभी होसकता है जबकि वर्तमान पर विचार न कर भविष्यका ही ध्यान किया जाय।

वर्तमान भूमिसम्बन्धी नीतिको यदि कैमोरन जसे स्थानों तक विस्तृत न कर योरूप तक हो सीमित रक्खा जाय तो सफलताकी कुछ आशा की जासकती है।अपने अस्तित्वके लिये लड़नेका विचार स्वाभाविक होता है। इसलिये हम रीच (जर्मन-पार्लियामेंट) के दो औस्टमार्कों तथा अपनी भूमिके आभारी हैं। ये दोनों आज भी हमें अपना अस्तित्व बनाये रखनेके लिये बाध्य करते है। यही कारण है कि आज हमारी आन्तरिक शक्ति दृढ़ होती जा रही है।

यह तरीका क्यों उचित होता इसका और भी एक कारण है।

अनेकों योरोपियन राष्ट्र आज भी पूर्ववत् अपनी नीतिपर तटस्थ हैं। उनके योरोपीय अधिकारोंकी तुलना यदि उनके भार-स्वरूप उपनिवेशों और वैदेशिक व्यापारोंसे की जाय तो यह हास्यास्पद प्रतीत होगा। कोई कह सकता है—"योरुपका उद्देश्य संसारमें अपना आधिपत्य जमाना है।" परन्तु अमेरिका इस नीतिके प्रतिकूल है। उसका उद्देश्य अपने ही महादेशमें भूमि प्राप्त करना है। अतः इससे यह प्रत्यक्ष प्रमाणित है कि वह अपनी आन्तरिक शक्तिको दृढ़ करता जा रहा है और उपनिवेश-प्रसारक योरोपियन राष्ट्र अपनी शक्तिको क्षीण करनेमें लगे हुये हैं।

इङ्गलैंड भी इससे विपरीत नहीं है। ऐंग्लो-सैक्सन संसार और ब्रिटेनके वास्तविक सम्बंधकी प्रकृतिको हम प्रायः भूल जाते हैं। यदि

इङ्गलैण्ड अपनी भाषा और सभ्यताके लिये अमेरिकाके साथ है तो उसकी तुलना किसी भी योरोपियन-राष्ट्रसे नहीं की जा सकती।

अतः जर्मनीकी भूमि-सम्बन्धी नीति योरुपमें ही नये देशोंको अधिकृत करनेसे दृढ़ और सफल हो सकती है। ऐसे उपनिवेश, जहां योरोपियनोंको रहनेमें असुविधा हो, व्यर्थ और दुःखदायक हैं।

उन्नीसवीं शताब्दीमें ऐसे स्थानोंपर भी शान्तिजनक उपायोंसे अधिकार जमाना सम्भव नहीं था। उस तरहकी उपनिवेश-नीति युद्धके बिना और किसी भी तरह सफलीभूत नहीं हो सकती थी। योरुप महादेशके बाहर देश-प्राप्ति करनेकी नीतिके लिये यही उपयुक्त उपाय था।

इस नीतिका कोई समर्थक था तो वह एकमात्र ग्रेट ब्रिटेन ही था। जर्मन-विस्तारकी कल्पनाके समय ग्रेटब्रिटेन ही ऐसी शक्ति थी जो हमारे भयका निवारण कर सकती थी। इस नीतिको कार्यान्वित करनेका हमें उतना ही अधिकार होना चाहिये, जितना हमारे पूर्वजोंको प्राप्त था।

इङ्गलैण्डसे मित्रता करनेके लिये कोई विशेष त्यागकी आवश्यकता नहीं थी। उपनिवेशों एवं सामुद्रिक महत्त्वका परित्याग कर और ब्रिटिश उद्योग-धन्धेसे प्रतियोगिता (कम्पटीशन) न करना ही इसका मतलब था।

एक समय वह भी था जब ब्रिटेन जर्मनकी इस बातको सुननेके लिये तैयार था, क्योंकि वह भलीभांति समझता था कि अपनी बढ़ती हुई आबादीके कारण जर्मनीको किसी सुझावकी आवश्यकता है और

योरोपीय देशोंपर अधिकार जमानेके लिये उसकी सहायताकी आवश्यकता है, अथवा संसारके किसी अन्य हिस्सेपर उसकी सहायताके बिना जर्मनी अपनी आवश्यकताओंकी पूर्त्तिके लिये अधिकार जमायेगा।

उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तमें जर्मनीसे सम्बन्ध स्थापित करनेकी चर्चा लन्दनमें उठी थी। इसीसे ब्रिटेनके उन विचारोंका पता चल सकता है। परन्तु इस विचारसे जर्मनोंमें गड़बड़ी मच गई। उन्हें इङ्गलैन्डके इस सम्बन्धसे कोई लाभ नहीं दिखाई दिया, मानों परस्पर कर्त्तव्यताके बिना ही किसी दूसरे आधारपर एकता होनेवाली थी। इस सिद्धान्तके अनुसार निर्विघ्न बिना किसीकी परवाहके व्यापार किया जा सकता था। परन्तु ब्रिटिश नीतिको यह भलीभांति विदित था कि परस्पर-कर्त्तव्यके बिना कुछ भी नहीं मिल सकता।

यहां जर्मनीने चातुर्यपूर्ण वैदेशिक नीतिसे काम लिया। ऐसा ही सन् १९०४ई० में जापानने किया था। इसका परिणाम जर्मनीके क्या होता वह मैं कह सकता हूं—विश्वव्यापी महायुद्ध किसी भी हालतमें नहीं होता।

परन्तु जो हो, वह तरीका अख्तियार नहीं किया गया।

उद्योगधन्धा एवं विश्व व्यापार, सामुद्रिक-शक्ति एवं उपनिवेशकी चाहना पूर्ववत बनी ही रही।

यदि ब्रिटेनके साथ रूसके विरुद्ध सन्धि करनेसे योरुपमें भूमि सम्बन्धी नीति सफल होसकती थी, तो रूसके साथ ब्रिटेनके विरुद्ध ऐक्य-स्थापनासे उपनिवेशों और विश्वव्यापारकी नीति आसानीसे

कार्यान्वित की जा सकती थी। ऐसी दशामें जर्मनोंने मोहमायाके बिना अपना कर्त्तव्य स्थिर कर लिया और अस्ट्रियाको जंजालमें फंसनेसे नहीं रोका।

उन्होंने शान्तिपूर्ण उपायोंसे संसारपर आर्थिक-विजय प्राप्त करने का विचार किया। इस प्रकार उनकी जोर जबर्दस्तीकी नीतिका,जो अबतक चली आ रही थी, अन्त कर दिया। कभी-कभी ब्रिटेनकी बन्दरघुड़की सुन उन्हें अपने कार्यके बीच बाधायें उपस्थित होती दिखाई दीं और वे अपने आपमें सन्देह करने लगे। अन्तमें उन्होंने एक जहाजी-बेड़ा बनानेका निश्चय किया। उससे उनका अभिप्राय आक्रमण अथवा विनाश करना नहीं था। उनकी एकमात्र इच्छा "शान्तिपूर्ण उपायोंसे संसारपर आर्थिक विजय" तथा "विश्वशान्ति" की रक्षा करना था। इस भांति वे उसे साधारण माध्यमपर बनानेके लिये बाध्य थे। इसका अभिप्राय संख्यापर ही नियन्त्रण रखना न था। उन्होंने असबाबका महसूल महज मामूली रक्खा। जहाजोंमें युद्धके सामान साधारण तरीकेसे ही लगाये गये। उन्होंने प्रत्यक्ष दिखा दिया कि उनका अन्तिम ध्येय शान्ति ही है।

"शान्तिपूर्ण उपायोंसे संसारपर आर्थिक विजय" की चर्चा,खासकर उसे राष्ट्रनीतिका प्रमुख सिद्धान्त मान लेना, और फिर यह कहते हुए नहीं डरना कि ब्रिटेन इस नीतिको कार्य-रूपमें परिणित कर सकता है, उनकी महान मूर्खता थी। यह हानि हमारे प्रोफेसरोंकी ऐतिहासिक शिक्षा-प्रणालीके कारण हुई। इससे विचित्रता प्रकाशित होती है। हममेंसे कितने इतिहासको बिना समझे-बूझे ही पढ़ा

करते हैं। जो हो, इस सिद्धान्तका पुनः शुद्धीकरण किया जा सकता है। उन्हें ब्रिटिश द्वीपमें भी इस सिद्धान्तके खण्डनको मानना पड़ा। यह कभी भी देखने या सुननेमें नहीं आया कि किसी भी जातिने तलवारके बिना संसारपर अर्थिक विजय प्राप्त की है, अथवा किसी दूसरी जातिने ब्रिटेनसे कम निर्दयता पूर्वक सफलता प्राप्त की है। क्या राजनैतिक शक्तिके बिना आर्थिक लाभ उठाना और शीघ्र ही प्रत्येक लाभको राजनीतिक शक्तिसे पूर्ण कर देना, ब्रिटेनकी शासन-कलाकी चातुरी नहीं है? अतः इङ्गलैन्डको आर्थिक नीतिके रक्षाके लिये डरपोक मानना भयंकर भूल होगी। इसके विपरीत यदि यह कहा जाय कि ब्रिटेनके पास राष्ट्रीय सेना नहीं है, उचित नहीं प्रतीत होता, क्योंकि यहां राष्ट्रीय सेनाका जंगी स्वरूप नहीं है, बल्कि समयानुसार व्यवहार करनेका तरीका है। इङ्गलैन्ड आवश्यकतानुसार सर्वदा ही अस्त्र-शस्त्रसे सम्पन्न रहा है। उसने जहां जैसे अस्त्रोंसे सफलताकी आशा की वहां उन्हींका प्रयोग किया। जहां तक प्रलोभन द्वारा लड़ाई हो सकती थी तहांतक उसकी यही नीति रही, परन्तु जहां खून बहानेसे ही विजय सम्भव प्रतीत होती है, वहां समस्त जाति अपना पवित्र खून बहा देशके गौरवको सुरक्षित रखती है। ब्रिटेनकी युद्ध प्रणाली अत्यन्त दृढ़ और निर्भय है।

समयकी गतिके साथ ही साथ जर्मनीमें स्कूलों, समाचार-पत्रों, प्रेसों द्वारा ब्रिटिश जीवनके प्रति भ्रांतिपूर्ण एवं निराधार गलत धारणायें बनायी गईं। यह हमारा आत्म कपट था। प्रत्येक विषय अशुद्ध और अपवित्र भावनाओंसे आच्छादित हो गया था।

क्रमशः एक दूषित वातावरण उपस्थित हुआ। ब्रिटेनके विषयमें अत्यन्त तुच्छ मनोवृत्ति हो गई। परन्तु इस अनुभवका फल जर्मनोंके लिये ही घातक हुआ। लोगोंने ब्रिटेन एवं ब्रिटिश जीवनके समझनेमें भयंकर भूल की। प्रत्येक व्यक्ति यही सोचता था कि एक अङ्गरेज धूर्त्त, डरपोक एवं अविश्वासनीय व्यापारी है। परन्तु अफसोस! हमारे शिक्षक इस बातको नहीं समझ सके कि ब्रिटिश साम्राज्यकी स्थापना किस तरह और कैसे हुई। कमसे कम और किसी राष्ट्रकी ताकत नहीं थी जो इन समयानुकूल तरीकोंसे ऐसे महान साम्राज्यकी स्थापना कर सकता। जिन्होंने इस बातको समझनेकी चेष्टा की अथवा गलतफहमी दूर करना चाहा उनकी उपेक्षा की गई। मुझे भलीभांति स्मरण है कि किस तरह मेरे सैनिक मित्र फ्लैन्डरके मैदानमें टौमियोंसे खुली तौरपर लड़ आश्चर्य चकित हुए थे। पहले दिनकी लड़ाईसे ही उन्हें पता चल गया कि ब्रिटिश सैनिक कितने वीर होते हैं। उस समय उन्हें अपने समाचारपत्रों और प्रेसोंकी गल्ती महसूस हुई।

अब मैंने प्रचार तथा उसके विचित्र स्वरूपोंकी ओर विहङ्गम दृष्टि डाली।

निस्सन्देह इस असत्यताके प्रचारकोंने लोगोंके दिलमें नाना-प्रकारके उदाहरणोंसे इस बातकी जमई कर दी थी कि "संसारपर आर्थिक विजय" की बात सत्य है। उनका कथन असत्य और तथ्यहीन था। परन्तु उनके प्रचारका तरीका सराहनीय था। वे अपनी बातको अक्षरशः सत्य प्रमाणित कर देते थे। हम वहां सफ-

लता प्राप्त करनेके लिये बाध्य थे, जहाँ अंग्रेजोंको सफलता मिली थी। पुनः ब्रिटिश छल-नीतिसे नापाक रहनेवाली बात अत्यन्त लाभदायक सिद्ध की गई। इससे इस बातकी आशा प्रकट की गई कि हम छोटी छोटी जातियोंकी सहानुभूति प्राप्त कर लेंगे और क्रमशः हमारा स्वरूप बड़ा हो जायेगा।

आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे ट्रिपल-एकताका महत्व अत्यन्त तुच्छ था। जैसे २ किसी एकताकी स्थिति सीमित रखनेकी चेष्टा की जाती है, वैसे ही वैसे उसकी भीतरी शक्तिका ह्रास होता है। दूसरी ओर यदि सन्धि करनेवाली शक्तियोंको परस्पर वास्तविक लाभकी आशा प्रतीत हो तो एकता और भी पुष्ट होती जायेगी।

विभिन्न स्थानोंमें इस बातकी आवश्यकता समझी गयी, परन्तु दुर्भाग्यवश अधिकारी-वर्गका ध्यान इस ओर आकर्षित नहीं हुआ। १९१२ ई० में कर्नल लडेनडर्फने एक विज्ञप्ति निकाल इस बातकी कमजोरी बताई। पुनः अधिकारियोंने अपनी स्वाभाविकतासे इस विषयको किसी भी तरहका महत्व नहीं दिया और पूर्ववत् उदासीनता ही दिखाई।

जर्मनीके लिये यह भाग्यकी बात हुई कि १९१४ ई० में अस्ट्रिया के कारण महायुद्ध छिड़ गया। हैब्सबर्ग घरानेको भी इसमें भाग लेनेके लिये बाध्य होना पड़ा। परन्तु यदि और किसी दूसरे कारणसे युद्ध छिड़ा होता तो जर्मनी उसमें भाग न लेता।

अस्ट्रियन सम्बन्धके कारण जर्मनको उन सभी उच्च अभिलाषाओंसे वंचित होना पड़ा जिन्हें कि एकता द्वारा प्रदान करनेकी

प्रतिज्ञा की गई थी। उसके स्थानपर इटली और रूसके साथ उसकी ननातनी बढ़ती गई। रोममें सार्वजनिक विचारधारा जर्मनोंके प्रतिकूल थी। प्रत्येक इटालिन जर्मनोंको नीची निगाहसे देखता था। वास्तवमें यह अस्ट्रियनोंके प्रतिकूल थी, परन्तु आगे चल इसका स्वरूप और बदला।

मेरा यह दृढ़ विश्वास था कि उस पतनोन्मुख राष्ट्रके साथ अव्यर्थ सन्धि कर, उससे छुटकारा पानेके पूर्व ही जर्मनीको अद्भुत भिड़न्तका सामना करना पड़ेगा। मैंने अपने विचारोंको अपने संगी-साथियोंसे नहीं छिपाया। तूफानी महायुद्धके समय भी, जब वास्तविकताको असम्भव बताया जारहा था, पत्थरकी चट्टानकी भांति मेरे विचार दृढ़ थे। मैं एक क्षणके लिये भी किसी अनहोनी आशङ्कासे विचलित नहीं हुआ। अब समय आगया था जबकि वास्तविकताके अन्वेषक मेरी बातोंको उचित और उपयोगी माननेके लिये तैयार थे। जब कभी मेरे सामने इस समस्यापर वादविवाद होता तभी मैं कहता कि जितनी जल्दी इस एकताका अन्त होगा, उतनी जल्दी ही जर्मन-जातिकी उन्नति होगी। हैब्सबर्ग जातिके लिये त्याग करना किसी भी हालत में जर्मनीके लिये हितकर और सुखकर नहीं था। अस्ट्रियन-सन्धि-विनाशसे ही जर्मनीके शत्रुओंकी संख्या घट सकती थी। जर्मनी के मित्रराष्ट्र जर्मन-जातिकी रक्षाके लिये ही प्राणोत्सर्ग कर रहे थे, अस्ट्रियन राज-सत्ताके लिये नहीं।

महायुद्धके पूर्व भी अनेकों समय यह बात खटकी थी कि जिस एकताका अनुसरण किया जारहा है, वह युक्तियुक्त और लाभप्रद नहीं

है। बहुधा नरमदली इस बातको दबानेकी चेष्टा किया करते थे,परन्तु सत्य और आधारपूर्ण दलीलोंके आगे उनकी दाल न गली; और उनकी बातोंपर किसीने भी ध्यान नहीं दिया। उन्हें इस बातका विश्वास था कि वे संसार-विजय-पथपर अग्रसर हो रहे हैं, और अत्यन्त शीघ्र ही उन्हें बिना त्यागके ही असीम सफलता प्राप्त होगी।

पुनः जिस समय नरमदली अज्ञान जनताको चूहा पकड़नेवाले हैमलिनकी तरह अपने साथ ले विनाशपथकी ओर अग्रसर हो रहे थे, उग्रवादियोंने उनका तीव्र विरोध किया।

कलापूर्ण जर्मन-चातुरी एवं उद्योगधन्धेकी विजयिनी द्रुतगति, जर्मन-व्यापारका अप्रतिहत अभियान इत्यादि विषयोंने उनके दिलसे इस बातको भुला दिया कि किसी शक्तिशाली राष्ट्रकी कल्पनासे ही सब कुछ सम्भव हो सकता है। इसके विपरीत अनेकोंने इस बातकी घोषणा कर दी कि जर्मन-राष्ट्र अपनी उन्नतिके कारण ही जीवनमय हो रहा है, अर्थात वह एक धार्मिक संस्था है और उसका सञ्चालन आर्थिक नियमोंके अनुसार होना चाहिये,ताकि अपनी स्थितिके लिये वह व्यापारपर पूर्णतया निर्भर रहे। उनके ध्यानमें यह सर्वथा प्राकृतिक और समयानुकूल उपाय था।

जो हो, राष्ट्रको किसी भी निश्चित आर्थिक धारणा अथवा उन्नतिका गुलाम नहीं बनना है।

राष्ट्र व्यापारिक सौदा करनेवालोंकी अवधिप्राप्त सभा नहीं। आर्थिक उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये इसके विचार सीमित नहीं होसकते। यह एक जातिका सङ्गठन है, जिसमें स्वभाव और प्रकृतिकी सजाती

यता पाई जाती है। प्रकृति इसकी उन्नति एवं निर्माणमें सहायक हो इसके भाग्यकी सृष्टि करती है। एक राष्ट्रका इसके अतिरिक्त और कोई भी उद्देश्य और महत्त्व नहीं है।

भूमि अथवा स्थानके ख्यालसे यहूदी-राष्ट्रकी कोई भी सीमा न थी। स्थानके विचारसे यह असीमित था, परन्तु वंशकी धारणासे इसकी सीमा थी। अतः वह एक राष्ट्रके अन्तर्गत भी हमेशा एक राष्ट्रके समान था। चालबाजीके तरीकोंमें यह भी एक तरीका था, जिसका अविष्कार उक्तकथित राष्ट्रपर धर्मकी छाप लगनेसे हुआ था। आर्य ऐसी धार्मिक जातियोंसे सर्वदा ही घृणा करते आये हैं। मूसाका धर्म यहूदी जातिकी रक्षाके लिये सिद्धान्तमात्र है। इस प्रकार यह समाज-तत्वसम्बन्धी राजनीतिक एवं आर्थिक ज्ञानका स्वागत करता है। परन्तु इस जातिके साथ इसपर शङ्का भी की जा सकती थी।

जिस समय जर्मनीमें राजनीतिक वातावरण क्रमोन्नत हो रहा था, व्यापार भी अपनी शानका एक ही था, परन्तु जिस समय हमारी जनताका व्यापार ही जीवन रह गया, राष्ट्रकी शक्ति छिन्न-भिन्न होगई और उसके साथ ही साथ व्यापारिक क्षेत्र भी नष्ट होगया। फलतः जनताकी स्फूर्णा जाती रही। वह अपना अनोखा गुण खो बैठी।

यदि हम अपने मनसे पूछें कि किन शक्तियोंसे राष्ट्रका निर्माण होता है, तो हमें प्रत्युत्तर मिलता है कि त्याग-तत्परता और योग्यता ये दो गुण ही इसके कारण हैं। यह प्रत्यक्ष है कि इन गुणोंकाआर्थिक विषयोंसे कोई भी सम्बन्ध नहीं है। थोड़ी सी बुद्धि दौड़ानेसे ही हम इस बातको समझ सकते हैं कि मनुष्य व्यापारके लिये त्याग नहीं

करता, व्यापारके पीछे अपनी जान नहीं खोता, किन्तु अपने आदर्शके लिये सर्वस्व न्योछावर कर देता है। एक अंगरेज जिस राष्ट्रीय आदर्शको अपने सामने रख लड़ता है—उसमें आध्यात्मिक प्रधानताकी पूरी-पूरी झलक है। जब कि हम अपनी रोटीके लिये लड़ते हैं, इंगलैण्ड स्वतन्त्रताके लिये लड़ता है वह भी अपनी नहीं, अन्य छोटी छोटी जातियोंको। जर्मनीमें सुधारवादी इस निर्लज्जतासे बेतरह चिढ़े और क्रोधित होगये। उन्होंने प्रमाणित कर दिया कि युद्धके पूर्व जर्मन शासन कला कैसी विचारहीन तथा मूर्खतापूर्ण होगई थी। उन प्राकृतिक शक्तियोंके विचारणीय विषयमें हमारी तनिक भी धारणा न थी जो मनुष्यको स्वेच्छा पूर्वक जान देनेके लिये प्रेरित कर त्साहित कर सकती थीं।

१९१४ के गत महायुद्धमें जिस समय तक जर्मनोंकी यह धारणा रही कि हम आदर्शोंके लिये लड़ रहे है, वे अजेय बने रहे, परन्तु जब उन्हें यह मालूम हुआ कि वे केवल रोजाना रोटीके लिये लड़ रहे हैं, वे तत्क्षण टुकड़ोंको छोड़नेके लिये तैयार हो गये।

उनके इस विचार-परिवर्तनसे हमारा बुद्धिमान अधिकारी-वर्ग आश्चर्यचकित हो गया।

गत महायुद्ध इस बातका विश्वास दिलाता है कि जर्मन-जातिके लिये शान्तिपूर्ण व्यापार नीति और उपनिवेशोंको बसा, संसार विजय करना सम्भव था। ये वास्तविक गुण जातीय चिन्हस्वरूप थे जो किसी राष्ट्रके निर्माणमें सहायक होते हैं। परन्तु अफसोस! उस समयके भीतरी कारणोंसे हमारी बड़े काम करनेकी इच्छाशक्ति

और दृढ़ता चली गई। प्रकृतिके नियमानुकूल इसका परिणाम विश्वव्यापी महायुद्ध हुआ, जिसने हमारी आंखें खोल दीं।

मैंने फिर एकबार उन प्रश्नोंको पूर्ववत सोचा। १६१२ से ले १६१४ तककी जर्मन ऐक्य नीति एवं आर्थिक नीतिपर विचार कर मैंने उस पहेलीका समाधान किया, जिससे मै पहले से ही परिचित था। परन्तु वह वियेनाके दृष्टिकोणसे सर्वथा भिन्न थी, अर्थात मार्क्स-वादका सिद्धान्त और उसकी विश्व-विवेचनासे असहमत था।

सर्वप्रथम मैं विचारने लगा कि किस तरह इस संसारव्यापी संसारी रोगपर अधिकार जमाया जाय।

मैंने विस्मार्क रचित विशेष कानूनोंके उद्देश्यों, उसके संघर्षऔर सफलताका अध्ययन किया। क्रमशः अध्ययनसे मेरे सिद्धान्त पत्थर की तरह कड़े होगये और मुझे दृढ़ विश्वासी होनेका मोका मिला। उस समयसे मैं इतना पक्का सिद्धान्तवादी हो गया हूं कि आजतक मुझे अपने व्यक्तिगत विचारोंमें परिवर्त्तन करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी। मैंने जुडावाद और मार्क्सवादके सम्बन्धका गम्भीर अध्ययन किया!

१६१३ और १६१४ में मैंने अपने इस दृढ़ विश्वासका विभिन्न क्षेत्रोंमें प्रचार किया जो कि वर्त्तमान समयके नेशनल-सोशलिस्ट-आन्दोलनका अंग माना जाता है। जर्मन जातिका भविष्य मार्क्सवादके विनाश पर निर्भर है।

जर्मन सर्वदा ही इसके प्रति प्रतिकूल रहे हैं, परन्तु तत्कालीन जीवनके कारण वे अपनी स्थितिके विनाशको पहचान न सके। कभी२

उन्होंने इस रोगको दूर करनेकी चेष्टा भी की, परन्तु उसके मूलको पहचान न सकनेके कारण वे असफल रहे। कोई भी इस बातको नहीं जानता था अथवा जाननेका इच्छुक ही था। मार्क्सवादका पक्ष करना एक ठगी करनेवालेका सहायक होना था

पांचवां अध्याय।

विश्वव्यापी महायुद्ध।

अपनी उत्साहपूर्ण युवावस्थामें मुझे यह बात बहुत खटकी कि जितने स्मारक आदरस्वरूप बनाये गये हैं, वे व्यापारियों और राजके चापलूसोंके ही हैं। राजनीतिक विचारधारा इतनी शान्त होती प्रतीत हुई, मानों भविष्यमें जातियोंकी पारस्परिक शांतिपूर्ण प्रतियोगिता होनेवाली है। कुछ अत्याचारी तरीकोंको हटाते हुए यह एक प्रकारकी पारस्परिक ठगबाजी थी। अनेकों राष्ट्रोंने इस कार्यसे सहानुभूति प्रगट की। फलस्वरूप एक दूसरेके क्षेत्रमें व्यापारिक प्रतियोगिता करने लगा—परस्पर ग्राहक और कन्ट्राक्टोंके लिये छीना-झपटी हुई—एक दूसरेकी गल्तियोंसे सभी सम्भव उपायों द्वारा लाभ उठाया गया, और इस प्रकार नाटकका महत्वपूर्ण दृश्य बनाया गया जो कोलाहलमय होते हुए भी हानिकारक न था। यह उन्नति स्थायी ही न हुई, बल्कि इसपर समस्त संसारने स्वीकृति दे दी, मानों यहूदी-गोदामकी ड्योढ़ियोंमें रहनेवाली चापलूसोंकी मूर्त्तियोंकी भांति इसे भी हर प्रकारकी नित्यता प्राप्त होगई थी।

मेरा जन्म क्यों नहीं एकसौवर्ष पहले हुआ? जबकि मुक्तियुद्ध हुआ था और मनुष्यमात्र व्यापारके अतिरिक्त भी कुछ योग्यता रखता था।

जिस समय आर्कड्यूक—फ्रांसिस फर्नीनैण्डकी मृत्युका समाचार म्यूनिक पहुंचा, मै अपने घरमें बैठा था, मैंने अस्थिरतापूर्वक

जो कुछ हुआ था उसे सुना। गुलामीकेजाल बिछानेवाले उस गुस्ताख उत्तराधिकारीसे जर्मन-जातिको मुक्त करनेके लिये बहुत दिनोंसे छात्र व्याकुल थे, ऐसे समय मुझे भय थाकिशायद जर्मन-छात्रोंकी पिस्तौल से वह घटना हुई थी। मैंने शीघ्रही,जो परिणाम होसकता था,सोचा। मुझे प्रतीत हुआ कि निकट भविष्यमें ही संसारमें दुःखकी एक लहर उठनेवाली है। परन्तु शीघ्र ही जब यह सुननेमें आया कि हत्याकारी सर्वजातिके हैं,मै अलक्ष्य भवितव्यतासे सिहर उठा।

गुलामोंका प्रिय बन्धु गुलामोंकी शैतानियत भरी हरकतोंका शिकार हुआ।

वियेना गवर्मेन्टके अल्टिमेटमके स्वरूप तथा विचारोंपर गालियों की बौछार कर लोगोंने अन्याय किया। ऐसी परिस्थितिमें कोईदूसरी शक्ति उससे भिन्न कुछ भी नहीं कर सकती थी। अस्ट्रियाकी दक्षिणी सीमापर एक बेरहम और प्राणघातक शत्रु रहता था, जो बहुधा उस राजसत्ताको छेड़ता और साम्राज्य विनाशके लिये प्राप्त सुविधाओं के उपयोगसे कभी भी नहीं चूकता था। सबसे बड़ा भय यह था कि सम्राट्की मृत्युके साथ ही साथ वह और भी तंग करेगा। जब ऐसा हुआ, साम्राज्यके लिये अपना अस्तित्व बनाये रखना असम्भव हो गया। उस राष्ट्रके जीवनका प्रश्न फ्रांसिस जोसेफ तक ही था। उस वयस्ककी मृत्युके साथ ही साथ उस साम्राज्यकी भी मृत्यु होगई। जनताकी दृष्टिमें सम्राटका ऐसे समयमे मरना बहुत खटका।

गवर्मेन्टको युद्धके लिये बाध्य करते हुये गालिया देना वास्तवमें उसके प्रति अन्याय था। उसे एकदम टाला भी नहीं जा सकता था,

परन्तु हां, दो एक वर्षके लिये स्थगित अवश्य किया जा सकता था। जोहो जर्मन एवं अस्ट्रियन नीतिके अभिशापसे उसे उस सुनिश्चित संघर्षके लिये प्रस्तुत होना पड़ा। यह एक कुसमयकी लड़ाई थी। हमें इस बातका दृढ़ विश्वास है कि तत्कालीन युद्धके कुअवसर पर भी शान्ति-रक्षाके लिये प्रयत्न हो सकता था।

अनेकों वर्षों से सामाजिक प्रजातन्त्रवाद जर्मनीमें रूसके विरुद्ध युद्ध छेड़नेके लिये,भद्दे तरीकेसे आन्दोलन कर रहा था, पुनः सेन्टर पार्टी, धार्मिक कारणोंसे, जर्मन-नीतिको अस्ट्रिया-हंगरीपर स्थित कर रही थी। अब उस भूलका सुधार होना आवश्यक होगया था। जो हुआ, उसका होना निश्चित था, और वह किसी भी हालतमें नहीं टल सकता था। जर्मन गवर्मेन्टका यह अपराध हुआ कि उसने शान्ति रक्षाके ख्यालसे शुभ अवसरसे लाभ न उठा, विश्व शान्तिको सुरक्षित रखनेके लिये अस्ट्रियासे सन्धि कर ली, और फलतः उसे उस गुटूबन्दोका शिकार होना पड़ा, जिसका उद्देश्य शान्ति-स्थापना न कर संसारको युद्धमय करना था।

इस प्रकार एक महायुद्ध छिड़ गया, जैसा कि इसके पूर्व कभी देखने या सुननेमें नहीं आया था।

बड़ी मुश्किलसे इस उपद्रवकी सूचना मुझे म्यूनिकमें मिली। तुरन्त ही मेरे मनमें दो विचार उठे, पहला कि युद्ध अटल और अवश्यम्भावी हैं, और दूसरा कि हैब्सबर्ग-राष्ट्र अपनी सन्धि पालन करेगा। मुझे इस बातका बड़ा भय था कि अपनी "ऐक्य-सन्धि"के कारण जर्मनीको स्वतः उन पचड़ोंमें पड़ना पड़ेगा जिनका अस्ट्रिया

ही एकमात्र कारण था। मेरा यह भी दृढ़ विश्वास था कि अस्ट्रियन साम्राज्य अपनी अन्दरूनी राजनीतिके कारण अपने मित्र-राष्ट्रकी सहायता किसी भी हालतमें नहीं कर सकता। जो हो, उस राष्ट्रको लड़ना ही था, चाहे उसकी इच्छाके विपरीत था वा अनुकूल।

उस लड़ाईके प्रति मेरे भाव सीधे और साफ़ थे। मेरे दृष्टिकोणमें यह अस्ट्रिया और सर्वियाकी लड़ाई नहीं थी, जर्मनी अपने जीवनके लिये लड़ रहा था। जर्मन जाति अपने अस्तित्व, अपनी स्वतन्त्रता और भविष्यके लिये चिन्तित थी। उसने विस्मार्कके पद चिन्होंका अनुसरण किया, तरुण जर्मनीको पुनः उसकी रक्षा करनी पड़ी, जिसके लिये उसके पूर्वजोंने वीरता पूर्वक वेसिन वर्गसे सीडान और पेरिस तक लड़ाई की थी। परन्तु,यदि इस लड़ाईमें वह विजयी होता तो जर्मन-जनताकी गिनती संसारकी महान जातियोंमें की जाती, और ऐसी दशामें अपने देशवासियोंकी रोटीमें कुछ कमी किये विनाही "रीच" (जर्मन-पार्लियामेन्ट) संसारके शान्ति-स्थापकोंकी शिरमौर होती।

तीसरी अगस्तको महाराजाधिराज लुडविग तृतीयकी सेवामें मैंने एक अर्जी वैमेरियन रेजिमेन्टमें भर्त्ती होनेके लिये भेजी। उस समय मन्त्रिमण्डल इतना दयालु था कि उसने मेरी अर्जी मंजूर कर ली। जिस समय मुझे इस बातकी खबर हुई, मेरी खुशीका वारा-पार न रहा।

प्रत्येक जर्मनकी तरह,उस समय इस पृथ्वीपर मेरे अविस्मरणीय एवं महत्वपूर्ण जीवन-कालका प्रभात हुआ। उस महान संघर्षकी

घटनाओंकी तुलना करनेपर अतीतको भूल जाना पड़ता है। मैं अभिमान और दुःखके साथ उन दिनोंपर विचारता हूं और उन गत सप्ताहोंकी याद किया करता हूं, जिसमें अपनी वीर जातिके साथ मुझे भी युद्ध करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

इसप्रकार वर्षपर वर्ष बीतने लगे, युद्धव्यग्रताके स्थानपर लोगोंके दिलमें भय समा गया। क्रमशः उत्साह ढीला पड़ने लगा और देदीप्यमान बाहुल्य मृत्यु-व्यथामें डूब गया। एक समय आया, जब कि प्रत्येक मनुष्यको कर्त्तव्यपरायणता और आत्म रक्षाके बीच महान संघर्ष करना पड़ा। १९१५-१६ के शीतकालतक मैं इस संघर्षसे निश्चिन्त हुआ। अन्तमें मेरी इच्छाओंको विजय हुई। सबसे पहले मैं हंसी और मजाक द्वारा आक्रमण किया करता था, परन्तु उस समय मैं शान्त और दृढ़ था। इस प्रकार मैं अन्ततक पहुंच गया। केवल भाग्य ही मेरी अन्तिम परीक्षाको, बिना मुझे हतोत्साह किये अथवा तर्क विमुख कर, बदलनेमें समर्थ हो सकता था।

नौजवान स्वयंसेवक एक सिपाही हो चुका था। सारी सेनामें इस प्रकारका परिवर्तन हो गया था। फलतः ऐसे हर शख्सको मैदान से भागना पड़ा, जो तूफानका सामना नहीं कर सकता था।

उस समय कोई भी सेनाके इस विचारको समझ सकता था। दो या तीन वर्षके पश्चात्, जब किएकके बाद दूसरी लड़ाई हो रही थी, बड़े बड़े महान शत्रुओं और भयङ्कर शस्त्रोंसे टक्कर ली जा रही थी, भूख और तकलीफोंका सामना किया जा रहा था—सेनाके गुणों को पहचानने और विचारनेका वास्तविक अवसर था।

यद्यपि हजारों वर्ष वीत रहे हैं, तथापि महायुद्धकालीन जर्मन-सेनाका ध्यान किये बिना,कोई भी वीरताकी चर्चा चलानेका दुस्साहस नहीं कर सकता। अतीतके अन्धकारसे भी भूरे लौह-निर्मित शिरस्त्राण, बिना हटे और भूले, अमरत्वके स्मारककी भांति, प्रगट होंगे। जबतक जर्मन-जाति जीवित है, वह कदापि भी अपने देशके इन वीर लालोंको न भूलेगी।

उन दिनों मैं राजनीतिकी तनिक भी परवाह न करता था,परन्तु समस्त जाति विशेषतः हम सिपाहियोंसे सम्बन्धित कुछ निश्चित प्रचारोंपर अपना मत प्रकाशित किये बिना मुझसे नहीं रहा गया।

मार्क्सवाद-प्रचारके लिये सोचे हुए तरीकोंसे मैं अत्यन्त क्रोधित हुआ। इसका उद्देश्य सभी यहूदी-राष्ट्रोंका अन्त करना था। १९१४ई० की जुलाईमें यह तत्परतापूर्वक जर्मन-श्रमजीवियोंको उभाड़नेमें लगा हुआ था, परन्तु वे उस समय जागृत हो, दिनोंदिन अपनी पितृभूमि की सेवामें तल्लीन हो रहे थे। इस मतको लोग घृणाकी दृष्टिसे देखने लगे। चन्द दिनोंमें यह निन्दनीय राष्ट्रीय-प्रवंचना कुहासेकी भांति हवामें गायब हो गयी। अब यहूदी नेताओंका दल असहाय और अकेला पड़ गया, मानों मूर्खता और पागलपनका कोई भी तरीका नहीं बचा, जिससे गत साठ वर्षोंसे जनताको उभाड़ा और भड़काया जाता था। जर्मन-श्रमजीवियोंके साथ धोखा करनेवालोंके लिये यह एक कुअवसर था। जब उन नेताओंको विपत्तिका आसार प्रतीत हुआ, उन्होंने झूठकी शरण ली, और मूर्खतापूर्वक जर्मन-उत्थानकी निन्दा करने लगे।

अब उन राजद्रोही नेताओंके गृहपर आक्रमण करनेका सुअवसर था। पुनः जर्मन-कार्य्यकर्त्ताओंने स्वाधीनताका पथ खोज लिया, और फलतः जर्मन-गवर्मेन्टका यह कर्त्तव्य होगया कि वह विना दया भाव दिखाये जर्मन-स्वाधीनताके विरोधियोंका अन्त कर दे।

किसी भी सुअवसरको देख प्रत्येक उत्तरदायित्वपूर्ण अधिकारी का यह कर्त्तव्य होता है कि वह राष्ट्र-प्रगतिमें वाधक उत्पातियोंका समूल नाश कर दे, परन्तु हमारे महाराजाधिराज जर्मन-सम्राटने इसके प्रतिकूल काम किया। उन्होंने अपराधियोंकी उपेक्षा कर उन्हें और भी प्रोत्साहित किया। इतना ही नहीं, उन्होंने उन्हें शरण दी और उन्हें अपनी मनमानी करनेका मौका दिया।

प्रत्येक सांसारिक उक्ति—स्वभावतः चाहे धार्मिक हो अथवा राजनीतिक, उसके विषयमें यह नहीं कहा जा सकता कि "कहांसे वह प्रारम्भ होती है, और कहां उसका अन्त होता है।" उसका उद्देश्य अन्य सांसारिक विचारोंके विनाशके लिये लड़ना नहीं, अपनी स्थापनाकी चेष्टा करना होता है। इसप्रकार उसका संघर्ष अपनी रक्षासे नहीं, आक्रमण द्वारा प्रारम्भ हुआ करता है। ऐसे असीम उद्देश्यसे वहुत लाभ होता है, क्योंकि वही उद्देश्य उसके विचारों की विजय है। इसके विरुद्ध यह कहना कठिन है कि "अन्य विचारों को नष्ट करनेवाला" उद्देश्य सफल हो सकता है अथवा नहीं। कोई भी सांसारिक उक्ति स्पष्टरूपमें ही ठीक होती है, और रक्षाकी अपेक्षा आक्रमण नीतिसे ही वह शक्तिशाली वन सकती है, क्योंकि अन्तिम

निर्देश रक्षामें नहीं, आक्रमणमें ही हुआ करता है। किसी भी सांसारिक सिद्धान्तसे संघर्षका प्रयास तबतक सफल नहीं हो सकता, जबतक अन्य किसी मानसिक धारणाका पक्ष करते हुए आक्रमणनीतिका समर्थन नहीं किया जाय। ऐसा तभी होता है, जब दो सिद्धान्त परस्पर एक ही बातके लिये लड़ते हैं। ऐसे समय बिना शक्तिप्रदर्शन किये स्वपक्षीय सिद्धान्तके अनुकूल निर्णय प्राप्त नहीं होसकता।

यही कारण था कि उस समय तक मार्क्सवादके विरुद्ध जोलड़ाई छिड़ी हुई थी, उसे सफलता नहीं प्राप्त हो सकी। यही बात थी कि बिस्मार्ककी साम्यवादके प्रति कानून व्यवस्था अन्तमें असफल हुई। और उसे स्वतः नष्ट होनेके लिये बाध्य होना पड़ा। इसने एकनवीन सांसारिक सिद्धान्तोंके लिये रास्ता बन्द कर दिया, जिसकी स्थापना के लिये लड़ाई हुई होती। केवल चापलूसोंकी कहावती बुद्धि द्वारा ही इस बकबककी कल्पनाकी जा सकती है कि तथाकथित "राष्ट्रसत्ता" अथवा "फरमान और शान्ति" ही आखिरी दम तक लड़नेके लिये यथेष्ट कारण है।

सामाजिक प्रजातन्त्रवादके विरुद्ध १९१४ ई०की एक लड़ाई वास्तव में विचारणीय है, किन्तु अन्य किसी क्रियात्मक प्रणालीके अभावने इस बातका भ्रम फैला दिया कि कबतक ऐसी लड़ाई सफलता पूर्वक चल सकती है। इस स्थानपर भयंकर खोखलापन था।

महायुद्धसे बहुत पहले मेरी यही सम्मति थी, और यही कारण था कि तत्कालीन किसी भी दलमें मैं सम्मिलित नहीं हुआ।

महायुद्धके प्रारम्भकालसे ही, प्रत्यक्ष असम्भवताको देख, मेरे विचार और भी दृढ़ होगये। इसका कारण एक ऐसे आन्दोलनका अभाव था जो कि पार्लियामेन्टरी पार्टीकी अपेक्षा सामाजिक प्रजा-तन्त्रवादसे अच्छी तरह मोर्चा ले।

मैंने इस विषयमें अपने मित्रोंसे निर्भीकता पूर्वक बातचीत की। उस समय मेरे मनमें राजनीतिज्ञ बननेका विचार उठा, और यही कारण था कि मै अपने मित्रोंको इस बातका विश्वास दिला सकाकि आजसे मेरा काम अपने कामकाजकी जगह वक्तृता देना होगा।

मै सोचता हूं कि मेरे दिमागमें यह एक बहुत भयंकर बात थी।

छठवां अध्याय।

युद्ध-प्रचार

जिस समय मैं समस्त राजनीतिक घटनाओंका ध्यान पूर्वक निरीक्षण कर रहा था, प्रचारकार्य भी मेरे लिये अत्यन्त आनन्ददायक था। इसमें मैंने सोशलिष्ट-मार्क्सवादी संगठनका एक तरीका देखा जिसपर इस मतके अनुयायियोंने अपनी श्रेष्ठ चातुरीसे अधिपत्य जमा उसका अच्छी तरहसे उपयोग किया। मुझे यह समझने में देरी न लगी कि प्रचारका सदुपयोग एक यथाक्रमिक कला है, और मध्यश्रेणी इससे पूर्णतया अवागत यहीं है। क्रिश्चियन सोशलिष्ट आन्दोलन ही एक ऐसा था, जिसने अपने गुणोंके कारण, विशेषतः डा० लूजरके समयमें, कुछ सफलता प्राप्त की थी।

क्या हमारे पास भी प्रचारका कोई तरीका था?

अफसोस! मै इसका उत्तर "नहीं" के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दे सकता। जो कुछ भी उस समय किया गया, प्रारम्भसे ही इतनी अयोग्यता और बिगड़े दिमागसे किया गया कि उससे तनिक भी लाभ नहीं हो सका, बल्कि कुछ हानि अवश्य हुई।

स्वरूपमें अयथेष्ट. और आध्यात्मिकसे गल्त, जर्मनोंके इस युद्ध-प्रचारका और कोई भी परिणाम नहीं हो सकता। क्या प्रचार

एक उपाय है अथवा एक अन्त" ? इसी एक प्रश्नपर उनका सब किया कराया अनिश्चित हो जाता है।

यह एक उपाय है, और इसको उसी उद्देश्यके दृष्टिकोणसे देखना चाहिये, जिसकी यह पूर्त्ति करता है। इसका आकार-प्रकार इस ढंग का बनाना होगा जिससे यह अपने उद्देश्यका सहायक हो सके। यह भी स्पष्ट है कि उद्देश्यका महत्व साधारण आवश्यकताके दृष्टिकोणसे भिन्न हो सकता है, और इसके अनुसार प्रचारके आवश्यक गुण भी अवश्य भिन्न हो सकते हैं। युद्धके प्रारम्भमें जिस महान एवं उच्चउद्देश्य को लेकर हम प्रवृत हुये थे, उसकी कल्पना प्रत्येक मनुष्य कर सकता है यह आज़ादी और हमारी जातीय स्वतन्त्रताका उद्योग था, भविष्य-रक्षाका साधन और जाति-गौरव ऊंचा रखनेका एकमात्र उपाय था।

मानवताके प्रश्नका विश्लेषण करते हुए मोल्टकेने कहा है कि युद्ध के किसी भी विषयको शीघ्र ही खतम कर देना चाहिये, क्योंकि अन्त मे इस गम्भीर तरीकेका अत्यन्त प्रभाव पड़ा करता है।

युद्धके समय प्रचार भी स्वार्थ-साधनका एक तरीका है। जर्मन जातिके जीवनके लिये यह एक संघर्ष था, अतः इन्हीं सिद्धान्तोंके आधारपर प्रचार किया जा सकता था। यदि जर्मन प्रगतिशील विजय चाहते थे, तो उनके लिये अत्यन्त कठोर अस्त्र दयाभाव था, जिसने, वास्तवमें, हमारी जातिको अपनी स्वाधीनता सुरक्षित रखनेमें सहायता प्रदान की।

ऐसे जीवन और मरणके संघर्ष-कालमें युद्ध-प्रचारके प्रति यही एक सम्भव और ग्राह्य उपाय था।

यदि उच्च अधिकारीवर्ग इस बातसे अवगत होता कि क्या होरहा है, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि वह इस अस्त्रका उचित रूपसे व्यवहार करता। यह किसी भी दूसरे अस्त्रसे कम प्रभावशाली न था और विशेषतः उसके लिये अत्यन्त भयंकर है, जो इसके महत्वको भलीभांति समझनेकी शक्ति रखता है।

प्रचार-कार्य जनप्रिय और स्पष्ट रूपसे होना चाहिये। उसका मानसिक क्षेत्र इतना विस्तृत होना चाहिये, जिससे उसकी आवाज अपढ़ और कमअक्लों तक भी पहुंच जाय। इस प्रकार उसे अपने मानसिक अभ्युत्थानको गम्भीर बनाना पड़ेगा, ताकि जनता उसकी ओर आकर्षित हो। युद्धके समय जैसा प्रचार किया जाता है, यदि वैसा प्रचार जनताको अपने प्रभावके नीचे संगठित करनेके लिये किया जाय, तो मानसिक विचारोंके उच्च माध्यमको हटानेकी कोई आवश्यकता न पड़ेगी।

जनताकी साधारण योग्यता बहुत सीमित होती है,उसकी समझ का भी यही हाल है,और दूसरी ओर उसमें बहुत जल्दी भूलजानेकी महानशक्ति है। इसलिये, प्रभावशाली प्रचारका चन्द बातों द्वारा ही सीमित होना बेहतर है,अथवा दूसरे शब्दोंमें,उसको तबतक सारांशके रूपमें ही उपस्थित करना चाहिये,जबतक कोई व्यक्ति यह समझनेके योग्य न हो जाय कि वास्तवमें यह क्या है। यदि लोगोंकी इच्छानुसार इस सिद्धान्तके अनुकूल प्रचार किया जाय,तो जनताके लिये यह असम्भव होगा कि वह मूलमन्त्रको भी भूल जाय। फिर चन्द दिनोंमें प्रचारका महत्व घट जायगा और लोग स्वयंही जानकार हो जायेंगे।

शत्रुको हास्यास्पद रूपमें देखना मौलिक दृष्टिसे महान भूल थी, जैसा कि जर्मन एवं अस्ट्रियन समाचारपत्र अपने प्रचारमें किया करते थे; भूल इसलिये थी कि जब शत्रु प्रत्यक्ष रूपमें हाथोहाथ लड़ता है, हमें उसकी शक्ति मालूम हो जाती है, और तब हम अपने आदमियोंपर उसके विरुद्ध प्रभाव डालनेके लिये बाध्य हैं, क्योंकि तदन्तर भयंकर रूपसे बदला लेनेकी यही रीति है। शत्रुकी बाधक-शक्तिके प्रभावसे जर्मन-सिपाहियोंको स्वतः ही मालूम हो गया कि उनकी युद्ध-शक्तिको पुष्ट करने वा दृढ़ करनेकी अपेक्षा निराधार सूचनाओंसे उन्हें किस तरह धूर्तोंने ठगा है, यह सब देख उनका दिल टूट गया।

दूसरी ओर ब्रिटिश एवं अमेरिकन युद्ध-प्रचार आध्यात्मिक दृष्टिसे सही था। अपनी जनताके सामने जर्मनीको जंगली और निष्ठुर बताते हुए, प्रत्येक सिपाहीको युद्धक्षेत्रमें प्रवृत होनेके लिये तैयार कराया जा रहा था, और इस प्रकार निराशाजनक वातावरणको पूर्णरूपसे हटानेकी चेष्टा होरही थी। इस भांति उस समय भीषणसे भीषण जो भी अस्त्र उसके विरुद्ध आया वह सूचनाकी पुष्टि-स्वरूप होगया। उसे अपनी गवर्मेन्टकी सत्यतामें पूर्ण विश्वास था और फलस्वरूप जो कुछ भी उससे कहा गया वह उसे अपने शक्तिशाली शत्रुके विरुद्ध उभाड़ने और घृणा करनेके लिये यथेष्ट था।

इस प्रकार ब्रिटिश सिपाहियोंको यह कभी भी अनुभव नहीं हुआ कि जो कुछ सूचना उन्हें मिलती है, वह असत्य है, परन्तु आश्चर्य ! कि जर्मन अपनी गवर्मेन्टकी सूचना पर विश्वास न कर लड़ाईका

अन्त करनेपर तुल गये। इसमें उनका कुछ भी दोष न था। यह सारा दोष उन धोखेबाजोंका था, जिन्होंने हमेशा जर्मन-जातिको ठगनेकी चेष्टा की थी।

उदाहरणार्थ, विचारिये कि उस साबुनके विज्ञापनके सम्बन्धमें जो कि अन्य दूसरे साबुनोंकी प्रशंसा करता है, हमारी क्या धारणा होगी? हमें वहां केवल सिर हिलाकर चुप होजाना पड़ेगा।

युद्ध अपराध पर विचार करते हुए, यह कहना कि "जर्मनीको उस युद्धके लिये दोषी नहीं ठहराया जा सकता", मौलिक दृष्टिसे एक भूल थी। वास्तविक बातका भार शत्रु के ऊपर डाले बिना ही अपने ऊपर लेना पड़ता है, चाहे सत्य घटनाक्रमसे उसका सम्बन्ध हो या नहीं।

"वैदेशिक अवैधानिकता कहांसे प्रारम्भ होती है और कहां उसका अन्त होता है" इसे समझने और तुलना करनेकी शक्ति जनता में नहीं थी।

जनताका एक बहुत बड़ा बहुमत प्रकृति तथा दृष्टिकोणमें इतना कोमल था कि उसकी बुद्धि तथा कार्य्य कारणयुक्त विचारोंकी अपेक्षा भावों एवं सहजज्ञानसे परिचालित होते थे।

वे भाव पेचीदा न थे, उनमें सरलता और अविरोध था। उनमें कोई विशेष विभेद नहीं था, परन्तु, वे या तो स्थिर अथवा अनिस्थिर, प्रेम अथवा घृणा, सत्य अथवा झूठ, दोनोंके अर्द्ध भाग मिश्रित सम्मिश्रणसे नहीं बने थे।

यह बात ब्रिटिश-प्रचारकी प्रतिभापूर्ण दृष्टि द्वारा समझ ली गई। इंगलैंडमें सन्देह-सृष्टिकारक कोई भी वक्तव्य प्रकाशित नहीं होता था।

जनसाधारणकी भाव-प्राचीनता समझनेकी शक्ति उनके भय-सम्बन्धी अवस्थानुकूल प्रकाशनसे ही विदित होती है, जिसने चतुरता एवं निर्दयतापूर्वक नैतिक दृढ़ताकी पुष्टि, हारपर हार खानेपर भी की। मिथ्या होते हुये भी, इस बातको सत्य प्रमाणित करनेकी चेष्टा की गई कि जर्मन ही युद्धके एकमात्र कारण हैं और इनका विनाश करना आवश्यक है। इसी निर्लज्जताभरे प्रचारसे जनताकी सहानुभूति प्राप्त की गई।

प्रचारका ढङ्ग बदलनेका अर्थ उद्देश्यमें परिवर्तन करना नहीं, किन्तु, उसके भीतरी तत्वको आदिसे अन्त एक ही समान रखना है। मूलतत्वको ध्यानमे रखते हुये विभिन्न उपायोंसे किसी भी विषय पर प्रकाश डाला जा सकता है, परन्तु किसी भी प्रकारके संशोधन अथवा सुधारको जो उद्देश्यके लिये हानिकारक है, शीघ्र ही विषय प्रतिपादन शैली द्वारा नष्ट कर देना चाहिये। इसके अतिरिक्त और किसी भी उपायसे ठोस एवं स्थायी प्रचार नहीं हो सकता।

किसी भी विज्ञापनकी सफलता, चाहे वह राजनीतिक हो अथवा व्यापारिक, क्रमानुगतता एवं अविच्छिन्नता पर पूर्णतया निर्भर रहती है।

शत्रुके प्रचारका उदाहरण भी इसी तरह का था। यह चन्द बातों तक सीमित था, इसका सम्पर्क सीधे जनतासे था, और इसका अनुसरण भी अविराम गतिसे किया गया। युद्धके आरम्भ कालसे ही आधारपूर्ण विचारोंका व्यवहार किया गया और कार्य्य

का ऐसा सुन्दर स्वरूप बनाया गया, जिससे कभी भी परिवर्तन करने की आवश्यकता न पड़ी। सर्वप्रथम अपने कथनकी निर्लज्जताके कारण इसमें पागलपनकी झलक दिखाई दी—इसके बाद यह अरुचिकर प्रतीत हुआ, और अन्तमें इसपर विश्वास कर लिया गया। साढ़े चार वर्षके बाद जर्मनीमें विद्रोहाग्नि धधक उठी, और शत्रुओंकी युद्ध-प्रचार-नीतिने वहां गृह-युद्ध करानेके लिये हर प्रकारसे चेष्टा की।

ब्रिटेनने इससे और ही मतलब निकाला—उसका ध्यान था कि इस बुद्धिपूर्ण अस्त्रका जनता पर अच्छा असर पड़ेगा, परन्तु वह यदि सफल हो जाता, तो बदलेमें उसे एक अपूर्व चीज प्राप्त होती।

वे प्रचारको सबसे बड़ा साधन समझते थे, और इसके विपरीत हमारे देशके अनुत्तरदायित्वपूर्ण राजनीतिज्ञोंके लिये यह अन्तिम उपाय था।

जो कुछ हो, इसकी सफलता नहीं के बराबर थी।

सातवां अध्याय।

विप्लवकाल।

उन्नईस सौ पन्द्रह ई०में शत्रुओंने आकाश मार्गसे हमारे बीच परचे फेंकना शुरू किया।

स्वरूपोंमें भिन्न होते हुये भी उनका उद्देश्य एक ही था; जर्मनी में दिनोंदिन दुःख बढ़ रहा था; युद्ध कभी भी नहीं रुकेगा, और दूसरी ओर विजय-प्राप्तिकी आशा दिनोंदिन क्षीण हो रही थी; गृहस्थ शान्तिके लिये व्याकुल हो उठे थे, किन्तु युद्धवाद और कैसर उसमें बाधक हो रहे थे; समस्त संसार—जिसे यह भलीभांति विदित था—इसीलिये जर्मन जातिके विरुद्ध युद्ध नहीं कर रहा था, किन्तु उस कैसरके खिलाफ मोर्चा ले रहा था, जोकि उसका एकमात्र कारण था; इसलिये युद्धका तब तक समाप्त होना असम्भव था, जब तक मानवताका महान शत्रु कैसर जर्मनीमें था। नरमदली और प्रजातन्त्रवादी जातियां जर्मनीको युद्धके पश्चात विश्व-शान्ति-संघमें सम्मिलित करनेके लिये प्रस्तुत थीं, जैसा कि प्रसियन-युद्धवादका विनाश कर किया गया था।

अनेकों व्यक्तियोंने तो ऐसी बातोंको हंसीमें उड़ा दिया।

इस तरहके प्रचारमें एक बात विचारणीय है। जहां कहीं भी वमेरियन थे, वहां पर ही उन्होंने इस बातकी घोषणा कर दी कि प्रसिया ही वास्तविक दोषी है, और दूसरे मित्र देशोंमें खास कर वमेरियनके प्रति किसी भी प्रकारका वैर-भाव नहीं है। जो हो, यह सम्भव न था कि वमेरियन जनता प्रसियन युद्धवादको प्रोत्साहित करे।

१९१५ ई० में ही इस तरहका प्रबोधन अपना सीमित प्रभाव दिखाने लगा। प्रसियाके प्रति सेनाके भाव खराब होते प्रतीत हुए—और अधिकारी वर्गने इसे रोकनेका कोई भी उपाय नहीं किया।

१९१६ ई० में यह विषय मतभेदके कारण इतना प्रभावशाली हो गया कि शत्रुओंको अब आकाश-मार्गसे परचे फेंकनेकी आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई। स्त्रियोंकी मूर्खताभरी चिट्ठियोंने उस समय सैकड़ों हजारों जानोंको बलिदान करा दिया।

दुर्भाग्यवश, एक अनुचित वातावरण उपस्थित होगया। कभी कभी तो ऐसा देखनेमें आया कि जनता गालियों और आपकी बौछार कर रही है—चारों ओर असन्तोष और क्रोध ही दिखाई दे रहा था। इधर सिपाही युद्धमें भूख और तकलीफ सहते थे, उधर घरमें उनके बालबच्चे दरिद्रताके शिकार बन रहे थे। ठीक इसके विपरीत उनके शत्रुओंको सभी सुख-साधन प्राप्त थे। उनके बालबच्चोंको किसी भी प्रकारकी तकलीफ न थी। यहां तक कि युद्धक्षेत्रमें भी हमारे सिपाहियोंको हर तरहकी असुविधा थी।

आसानीसे ही झगड़े उठ पड़े, परन्तु ये सब घरेलू घटनायें थीं। जो उस समय निन्दक बने बड़बड़ा रहे थे, वे ही कुछ समय पूर्व प्राकृतिक ढंगसे अपना कर्त्तव्य समझते हुये उद्योगपूर्वक लड़ते थे। जो लोग सन्तुष्ट हुये, वे उस धूर्त्त प्रचारके साथ इस तरह लिपट गये, मानों जर्मनीकी भाग्यरक्षाके लिये ही उन्होंने ऐसा किया हो। चाहे कुछ भी क्यों न हो, वह अन्तमें वीरोंकी गौरवशाली सेना ही कही जायेगी।

१९१६ ई० के अक्टूबरमें मैं घायल हो गया, परन्तु एम्बुलेन्सट्रेन द्वारा मुझे सुखपूर्वक जर्मनी भेज दिया गया। मुझे अपने घरको देखे हुए दो वर्ष व्यतीत हो चुके थे, उन परिस्थितियोंको देखते हुए वह एक अनन्त समय था। बर्लिनके नजदीक एक अस्पतालमें मै भर्ती हुआ। कसा अभूतपूर्व परिवर्तन था।

आश्चर्य! कि यहांकी दुनियां अनोखी ही थी। युद्धक्षेत्रके वीर-भावोंका यहां नामोनिशान भी न था। मैंने पहले ही पहल यहां एक बात सुनी जोकि युद्धमें कभी भी सुननेमें नहीं आयी, वह थी—अपनी कायरताका घमण्ड!

चलने फिरने लायक होते ही मुझे बर्लिन जानेकी अनुमति प्राप्त होगई। सर्वत्र ही दरिद्रताका साम्राज्य छाया हुआ था। मीलियनों नागरिक, फाकेमस्ती कर रहे थे। अशान्ति और असन्तोष दोनोंही छायावत् प्रतीत हो रहे थे। हर जगह सिपाहियोंके मुंहसे वही सुननेमें आया, जो मैंने अस्पतालमें सुना था। प्रत्येक व्यक्तिके मनमें यही धारणा थी कि ये लोग अपने मतको किसी उच्च ध्येयकी पूर्तिके लिये ही प्रकाशित कर रहे हैं।

म्युनिककी दशा इससे भी ज्यादा खराब थी। स्वस्थ होनेके पश्चात् मुझे अस्पतालसे हटा रिजर्व बटालिनमें भेज दिया गया। मैंने बड़ी कठिनतासे उस शहरको पहचाना। जहां मैं गया वहीं क्रोध, श्राप और असन्तोषकी छाया दिखाई दी। युद्धसे लौटे हुये सिपाहियोंमें एक विशेषता थी, जिसे एक पुरानेसे पुराने अनुभव प्राप्त कमाण्डरके लिये समझना असम्भव था, परन्तु लड़ाईसे लौटा कोई भी अफसर उसे प्रत्यक्ष रूपसे देख सकता था। इन्हीं अपवादोंके कारण साधारण उत्साह ढीला पड़ गया। भयाकुल हो पीछे हटना भी कार्य-कुशलताका एक अङ्ग माना गया, और कर्त्तव्यपरायणताको कमजोरी तथा मूर्खता बतानेकी चेष्टा की गई। आफिसोंमें यहूदी भरे पड़े थे। सभी क्लर्क यहूदी थे; और प्रत्येक यहूदी क्लर्क था। इस प्रकार आफिसोंका वातावरण यहूदीमय हो रहा था। इस जातिके लड़ाकोंको देख मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ; युद्धमें उनकी विरलता देखते हुये मैं उन्हें कायर कहनेसे बाज न आया।

संसारके कार्यक्षेत्रमें यह एक घृणित आचरण था। इस स्थानपर यहूदी-जातिको लाञ्छित किये विना छोड़ना सर्वथा असम्भव था।

१९१७ ई०के अन्तमें कारखानोंमें हड़ताल करा दी गई। इसका ध्येय सेनाके लिये युद्ध-सामग्रीका अभाव करना था, परन्तु इसे आशाजनक सफलता नहीं प्राप्त हुई। यह हड़ताल युद्ध-सामग्रीके अभावसे स्वतः ही खतम होगई, क्योंकि इसकी इच्छा अपनी सेनाको युद्धमें हराना था। किन्तु अफसोस! कि नैतिक हानि पहुंचानेके लिये प्रारम्भ किया हुआ यह तरीका अत्यन्त भद्दा था।

सबसे विचारणीय बात यह है कि सेना किस चीजके लिये प्राणपणसे चेष्टा कर रही थी, यद्यपि लोग उस विजयको नहीं चाहते थे। किसके लिये इतने कष्ट सहे जा रहे थे—प्राणाहुती दी जा रही थी—महान आत्माओंका बलिदान हो रहा था, क्या कोई विचारणीय व्यक्ति गम्भीरतापूर्वक उत्तर देगा ? सिपाहियोंको विजय के लिये जी-जानसे लड़ना चाहिये था, परन्तु वे घरोंमें बैठे इसका प्रतिवाद कर रहे थे।

विचारिये कि इसका शत्रुपर क्या प्रभाव पड़ा ?

१९१७-१८ ई०के ग्रीष्मकालमें मित्र-संसारके आकाशमें दुःखके बादल छा गये।

रूससे की हुई सभी आशाओंपर पानी फिर गया। मित्रराष्ट्रोंने जिन्होंने अपने संयुक्त-स्वार्थोंके लिये युद्ध-भूमिको अपने देशवासियोंके लिये पवित्र रक्तसे रञ्जित कर दिया था, अपने हत्याकारी शत्रुओंके आगे घुटने टेक दिये। उनकी शक्तिका अन्त होगया था। आनपर मर मिटनेवाले परिस्थितिसे लाचार हो झुक गये! आह! कैसा अभूतपूर्व परिवर्तन! कैसा करुणाजनक दृश्य! मैं इसे न देख सका। जिन सिपाहियोंने अबतक अन्ध-भक्तिसे ही युद्ध किया था, उनके हृदयमें भय और भविष्य अन्धकारका साम्राज्य छा गया। आगामी वसन्तकी चिन्तासे उनका हृदय भयभीत हो उठा। प्रत्येक जर्मन अपनी सैन्य-शक्तिको दृढ़ करने योग्य होता हुआ भी कुछ नहीं करता है, इसे देख उनका हृदय टो टूक हो गया। जब उन्हें यह भी आशा न रही कि राष्ट्रके योद्धाओंकी

वितरित शक्तियां पुनः एक साथ सङ्गठित हो आक्रमण करेंगी, भला तब वे किस प्रकार विजयी होनेकी आशा करते ?

जिस समय जर्मन-सेनाओंको एक साथ मिलकर आक्रमण करनेका फरमान मिला, जर्मनीमें आम हड़ताल हो गई। समस्त संसार इन घटनाओंको देख अवाक हो गया। पुनः शत्रु पक्षसे प्रचार शुरू हुआ और उसने इस जागृतिको बढ़नेसे रोका। मित्रराष्ट्रोंके सिपाहियोंके डूबे हुये विश्वासको पुनः शुद्ध करनेका यह अन्तिम प्रयत्न था, इससे पुनः एकवार विजय प्राप्त करनेकी आशा होसकती थी, और संसारवासियोंके दृढ़ विश्वासमें परिवर्त्तन किया जा सकता था।

एक ओर ब्रिटिश, अमेरिकन, फ्रेंच समाचारपत्रोंने इस बातकी और भी पुष्टि की, और दूसरी ओर मित्र राष्ट्रोंकी सेनाको भड़काने के लिये चातुरीपूर्ण प्रचार प्रारम्भ हुआ।

जर्मनी विप्लवकी धधकती ज्वालाका शिकार बन रहा था ! मित्र राष्ट्रोंकी विजय असम्भव थी ! शत्रुओंके लिये अपने प्रतिद्वन्द्वीको पैरों तले कुचलनेका अच्छा सुअवसर था।

इन सब घटनाओंका कारण हमारे कारखानोंकी हड़ताल थी। इसने शत्रुओंके हृदयमें विजय-धारणाको सुनिश्चित कर दिया और दूसरी ओर इसी कारण मित्र-राष्ट्र किसी अनिष्टकारी अशंकासे भयातुर हो उठे। इसीके परिणामस्वरूप हजारों जर्मन-सैनिकोंने व्यर्थमें ही अपनी प्राणाहुति दे दी। उस भद्दी और शैतानी भरी हड़तालके सञ्चालक थे—विद्रोही जर्मन-राष्ट्रमें ऊंचे पद पानेके लिये लोलुप कर्मान्ध टुकरखोर।

मेरा यह सौभाग्य था कि पहले दो और आखिरी आक्रमक चढ़ाइयोंमें मैं सम्मिलित था। उन्होंने मुझपर भयङ्कर प्रभाव डाला, जिसका असर समस्त जीवन भर मुझपर रहा। भयङ्कर इसलिये था कि - अन्तिम समयमें युद्धनीति अपनी रक्षण-शक्तिको नष्टकर आक्रमक-शक्तिपर ही भरोसा करने जा रही थी, जैसा कि सन् १९१४ ई० में प्रतीत हुआ था। १९१८ ई० के ग्रीष्मकालके प्रारम्भमें सर्वत्र युद्धक्षेत्रमें गलाघोंटू गर्मी पड़ने लगी। घरोंमें पारस्परिक फूट बेतरह फैल रही थी। और क्या? सेनाके विभिन्न केन्द्रोंमें नानाप्रकारकी निराधार अफवाहें फैल रही थीं। अब यह स्पष्ट प्रतीत होता था कि युद्धकी परिस्थिति निराशाजनक है, और विजयकी कल्पना करना निरी मूर्खता है।

"धनिकवर्ग और राजसत्ता ही युद्ध जारी रखनेके पक्षमें थी, जर्मन-जाति नहीं", यह समाचार घरोंसे युद्धक्षेत्रमें पहुंचा, वहां इसपर काफी वादविवाद हुआ।

सबसे पहले सैनिकोंने इसपर बहुत कम ध्यान दिया। सार्वदेशिक सम्मतिने हमारे साथ क्या किया? वही किया जिसके लिये हम गत चार वर्षोंसे तुमुल संग्राम कर रहे थे।

एबर्ट, स्कैडेमन, बर्थ, लेबनेट इत्यादि अफसरोंके उद्देश्योंसे जर्मन-युद्ध-प्रणाली कोई भी लाभ न उठा सकी। हम नहीं सोच सके कि ये चालबाज किस तरह राष्ट्रकी सेनापर अपने अधिकारका दावा करते थे।

प्रारम्भसे ही मेरे राजनीतिक विचार निश्चित और अटल थ। जातिको धोखा देनेवाले, जुआचोर, किरायेके टट्टुओंके गिरोहसे मुझे

अत्यन्त घृणा थी। मैं बहुत पहलेसे ही देख रहा था कि वह गिरोह जाति-हितके लिये कोई भी महत्वपूर्ण कार्य नहीं कर रहा था, उसे अपनी जेब गरम करनेकी धुन लगी हुई थी। उनकी स्वार्थपूर्त्तिके लिये जर्मन-जाति अपना बलिदान कर दे,और यदि आवश्यकता हो तो अपना अस्तित्व तक खो बैठे, यही उनकी इच्छा थी। इन बातोंको देखते हुये किस देशभक्तका हृदय घृणासे न भर जायेगा? इन्हीं कारणोंने उन्हें मेरी नजरोंमें गड़नेके योग्य बना दिया। उनकी इच्छाओंपर ध्यान देना ही जर्मन-श्रमजीवियोंके स्वार्थोंका परित्याग कर,पाकेट-मारोंका भला सोचना है। जबतक जर्मन-जर्मनीका भाव प्रत्येक सच्चे जर्मनके हृदयमें स्थान रखता था, ऐसा होना असम्भव था। अधिकांश सैनिकोंका वही मत था, जो मेरा था।

अगस्त और सितम्बरमें नाशके चिन्ह और विकटरूपमें दिखाई देने लगे, यहांतक कि हमारे रक्षण-युद्धके भयकी तुलना शत्रुओंके आक्रमणसे भी नहीं की जा सकती। उनकी तुलनामें सौमी और फ्लेंण्डर्सकी लड़ाइयां भी अतीतकी भांति मृतवत् प्रतीत हुईं।

सितम्बरके अन्तमें, तीसरी बार, पुनः हमारा विभाग उसी स्थितिमे पहुंच गया, जिसमें हमारी नौजवान स्वेच्छासेवक वाहिनीने युद्धक्षेत्रमें तूफान मचा दिया था।

कैसी यादगार।

१६१८ ई० के शरदकालमें मनुष्यमात्रमें विचित्रता आ गई थी। सेनामें राजनीतिक विवाद छिड़ा हुआ था। घरेलू जहर यहांपर भी अपना असर जमा रहा था। इतना ही नहीं,सर्वत्र उसका प्रभाव पड़

रहा था। नौजवान भी उसके वशीभूत होगये थे। उन्हें भी घरेलू मर्ज लग गया था।

अक्टूबर १३-१४ की रात्रिको दक्षिणीक्षेत्रमें ब्रिटिश-सेनाकी ओरसे गैस बरसाया गया। १३अक्टूबरकी शामको हमलोग वेरविक से दक्षिण एक पहाड़ीपर थे, जबकि हमें कई घण्टे व्यापी एक अग्नि-दुर्घटनाका सामना करना पड़ा,जिसकी भयावह गगनचुम्बी लपटोंसे रात्रि अशांत हो रही थी। मध्यरात्रिके करीब हममेंसे कुछ आहत होगये कुछ सर्वदाके लिये चल बसे। प्रातःकाल होते-होते मुझे बड़ी पीड़ा मालूम हुई, जो क्रमशः बढ़ती ही जा रही थी, और करीबन सात बजे मेरी आंखें झुलसने लगीं, मैं एक नयनान्धकी तरह इधर-उधर भटकने लगा। उस युद्धमें यह मेरी आखिरी लड़ाई थी।

चन्द घण्टोंके बाद मेरी आँखें जलते हुए कोयलोंकी भांति होगई और मेरे लिये चारों ओर अन्धकार छागया। शीघ्र ही मुझे पोमेरा-नियाके पासेवाक स्थित अस्पतालमें भेज दिया गया, और वहां भी मुझे विद्रोहकी चिनगारियां दिखाई दीं।

जलसेनाकी ओरसे बुरी अफवाहें आने लगीं। सुननेमें आया कि वहां भी खलबली मची हुई है;परन्तु मुझे यह कुछ नवयुवकोंकी शरा-रतभरी करतूत मालूम हुई। इसमें बहुत कम आदमियोंका हाथ था। अस्पतालमें प्रत्येक व्यक्ति युद्ध-समाप्तिकी बातचीत करता था; सब लोग उस घड़ीकी प्रतीक्षा कर रहे थे;परन्तु वहां कोई भी ऐसा आदमी मुझे न दिखाई दिया जो भविष्यमें एक महान युद्धकी आशा रखता हो। मैं समाचारपत्र पढ़नेमें असमर्थ था।

नवम्बरमें अशान्ति और बढ़ने लगी। एक दिन बिना किसी सूचनाके ही अचानक जहाजियोंकी एक लौरी अस्पतालके सामने आ धमकी। उन्होंने हमें विद्रोहके लिये भड़काया। चन्द यहूदी नौजवान हमारे राष्ट्रीय जीवनकी स्वतन्त्रता, सुन्दरता तथा मर्यादाके उस रक्षा-संग्रामका नेतृत्व कर रहे थे। सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उनमेंसे कोई भी युद्धक्षेत्रमें नहीं गया था।

मेरे जीवनके वे दिन उनमे प्रति कटु अनुभव करते हुए बीते। अफवाहें और भी पुष्ट होती गईं। मेरी कल्पना थी कि स्थानीयघटनाएं ही जनसाधारणके आम विद्रोहकी कारण थीं। युद्धक्षेत्रके दुःखपूर्ण सम्वादोंने इस जलती हुई आगमें घी का काम किया। उनका इरादा अधिपत्य जमाना था। हां—क्या ऐसी बात सम्भव थी?

१० नवम्बरको वृद्ध पादरी हमारे बीच कुछ कहनेके लिये अस्पतालमें आये, हमने उस समय सब कुछ सुना।

मै वहां उपस्थित था और उसका मुझपर समुचित प्रभाव पड़ा। उस वृद्ध भले आदमीकी टांगें कांप रही थीं, जब वह दृढ़ता-पूर्वक हमें बता रहा था कि होएनजौलर्न-घराना किसी भी हालतमें राजमुकुट नहीं पहन सकता—हमारी पितृभूमिमें एक प्रजातन्त्रवादी राज्यकी स्थापना हो गई थी।

इसलिये सब कुछ व्यर्थ हुआ। सभी कष्ट और त्याग, अनन्त समान महीनोंकी भूख और प्यासकी तकलीफें; हमारी कर्त्तव्य-परायणताका परिचय; दो मीलियन मनुष्योंकी मृत्यु—सभी अन्तमें व्यर्थ हुआ।

और हमारा देश ?

किन्तु—क्या यह ऐसा बलिदान था जिसके लिये हमें कुछ भोगना पड़ा ? क्या हमारी विचार-बुद्धिसे अतीतकालीन जर्मनी तुच्छ था ? क्या अपने इतिहासके कारण हमारा कर्त्तव्य स्थिर न था ? क्या हम अपनेको अतीतकालीन गौरवसे विभूपित करने योग्य न थे ? यदि हां, तो किस रूपमें हमें अपनी भविष्य-सन्तानोंके सामने उपस्थित होना चाहिये था ?

कैसे अधम, दुराचारी अपराधी !

मैंने उस समय उन भयंकर घटनाओंके प्रति अपने विचारोंको जितना स्पष्ट करनेकी चेष्टा की, उतना ही मैं आग बबूला हो गया। युद्धमें मेरी आंखोंकी पीड़ा इस दुःखके आगे कुछ भी न थी।

उस समय दिनोंकी भीपणता और रातोंका डरावनापन देखते ही बनता था। मैं जानता था कि सर्वस्व लुट गया। उन रातोंको देखते हुए मेरी घृणा, परिस्थितिके उत्पादकोंके प्रति बढ़ती ही गई।

सम्राट् विलियम ही प्रथम जर्मन-सम्राट् थे,जिन्होंने मार्क्सवादके हिमाकती, बदमाश यहूदीनेताओंको अपना मित्र बनाया। यहां उनकी महान भूल थी। उन्होंने उन स्वार्थियोंको नहीं पहचाना। वे बदमाश एक हाथसे राजसत्ताको अपने वशमें कर रहे थे, और दूसरे हाथसे खंजर उठानेका विचार हो रहा था !

यहूदियोंसे सौदा नहीं किया जाता। उनके लिये "यह या वह" का फरमान ही उचित है।

मैंने एक राजनीतिज्ञ बननेका निश्चय किया।

आठवां अध्याय।

मेरे राजनीतिक जीवनका प्रारम्भ।

नवम्बर १९१८ ई०के अन्तमें मैं म्युनिक वापिस गया। पुनः मैं अपने रेजिमेन्टके रिसर्व बटालियनमें भर्ती हुआ, जो उस समय सैन्य सभाके अधिकारमें था। सभी बातें ऐसी अरुचिकर होगई थीं कि मैंने तत्परतापूर्वक इस बातका निश्चय कर लिया कि अपने भरसक मुझे जल्दीसे जल्दी इस कार्य्यसे अलग हो जाना चाहिये। अपने विश्वासी मित्र सेमिट अर्नस्टके साथ मैं ट्रौन्सटीन चला गया, और जबतक सब कैम्प टूट नहीं गये, मैं वहीं रहा।

मार्च १९१९ ई० में हमलोग म्युनिक वापिस आये।

वहांकी परिस्थिति अत्यन्त निराशाजनक थी, मालूम होता था कि निकट भविष्यमें पुनः एक विद्रोहका होना अनिवार्य है। एसनर्स की मृत्युके साथ ही उन्नति होने लगी और अन्तमें कौन्सिल (सैन्य सभा) की प्रधानता जम गई, जिसे लोग यहूदी-शासनाधिकारसे बेहतर समझते थे। यह धारणा खासकर उनकी थी, जिन्होंने विद्रोहाग्नि फैलानेकी चेष्टा की थी। उस समय मेरे दिमागसे सब कार्यक्रम छू मन्तर होगया।

इस नये विद्रोहके सिलसिलेमें मेरा ध्यान सेन्ट्रल कौन्सिलके दुर्भावकी ओर आकृष्ट हुआ। २७ मार्च १६१६ ई०को मैं प्रातःकाल ही गिरफ्तार कर लिया गया, परन्तु जब मैंने अपनेको पकड़नेवाले तीन नवयुवकोंपर राइफल तानी, वे हतोत्साह हो उल्टे पांव वापिस भाग गये

कुछ दिनोंके बाद मुझे द्वितीय इनफेन्ट्री रेजिमेन्टकी विद्रोही घटनाओंकी जांच करनेके लिये नियुक्त कमीशनमें सम्मिलित होनेके लिये कहा गया। राजनीतिमें मेरा यह पहला प्रयास था।

कुछ सप्ताह पश्चात् मुझे डिफेन्स फोर्स (रक्षण-शक्ति-विभाग) का सदस्य बननेकी आज्ञा मिली। इसका एकमात्र विचार सैनिकोंको निश्चित सिद्धान्तोंसे अवगत कराना था, ताकि वे राष्ट्रके एक नागरिककी भांति अपने विचारोंको शुद्ध और पवित्र बना सकें। जहां तक मेरा इससे सम्बन्ध था. मेरी दृष्टिमें इसका मूल्य यही था कि इसीकी कृपासे मुझे सादृश्य विचारवाले कुछ मित्र मिले थे, जिनके साथ मैं तत्कालीन परिस्थितिपर अच्छी तरहसे वादविवाद कर सकता था। हमलोगोंको पूर्ण विश्वास था कि जर्मनी विनाशसे किसी भी हालतमें नहीं बच सकता, जो कि धीरे-धीरे निकट आ रहा था। इसके दोषी वही नवम्बर मासके विद्रोह फैलानेवाले, सेन्टर पार्टी तथा सामाजिक प्रजातन्त्रवादी दलके सदस्य थे। हम दावेके साथ कह सकते हैं कि साम्राज्यवादके पृष्ठपोषक कितने ही भले बनकर क्यों न आ जायें, इनसे जर्मनीकी क्षति पूर्ति किसी भी हालतमें नहीं हो सकती। इन उत्पातियोंने "धोरजिओड्स नेशनल" नामक एक पार्टीकी स्थापना की।

इस नये दलकी स्थापनाके सम्बन्धमें हमारी छोटीसी जमातमें खूब बहस हुई। हमारे ध्यानमें उसके सिद्धान्त वही थे जोकि पहलेसे जर्मन वर्कर्स पार्टीके थे। इस नये आन्दोलनका नामकरण इस तरह किया गया, जिससे लोगोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट हो, क्योंकि, यदि इस गुणका इसमें अभाव होता, तो सारा किया कराया निरर्थक और आधारहीन हो जाता। इसलिये हमलोगोंने इसे "सामाजिक विप्लवी दल" के नामसे पुकारना तय किया—क्योंकि इसके सामाजिक विचार विद्रोहके उद्भावक, वर्द्धक और पोषक थे।

इसके अतिरिक्त भी एक अत्यन्त गम्भीर कारण था। अपने प्रारम्भिक जीवनकालमें मैंने आर्थिक समस्याओंकी चिन्तनामें जितना समय लगाया था, उसका परिणाम यह हुआ कि आर्थिक प्रश्नपर भी अपने सामाजिक विचारोंपर ही मैं स्थिर रहा। ऐसा तबतक न था, जबतक जर्मनीके मित्रता-नीतिसम्बन्धी विचारोंके परिणाम-स्वरूप मैंने अपने दृष्टिकोणको व्यापक नहीं कर लिया। इनमें से पिछला आर्थिक विचारोंकी भूलका परिणाम था। उन सिद्धान्तोंके विषयमें जिनका भविष्यमें जर्मनीकी रोटीसे सम्बन्ध था, इसमें स्पष्टीकरण नहीं किया गया था। वे सिद्धान्त इसी कल्पनाके आधारपर थे कि धन मेहनत-मजूरीका फल है, अथवा इतना ही नहीं, मेहनत-मजूरी ही धन है;इसप्रकार उन सभी बातोंका सुधार किया गया जो मानव-कार्य्यकुशलतामें बाधक सिद्ध होरही थीं। उस समय धनका यही राष्ट्रीय महत्व था—कि उसे पूर्णतया राष्ट्रकी महानता, शक्ति तथा स्वतन्त्रता पर निर्भर होना पड़ा। किसी भी राष्ट्रमें जातिरूप द्वारा

ही श्रम तथा धनकी एकता होती है, और वही जाति अपने निर्माण और अभ्युत्थानके साधारण तरीकोंसे धन अर्जन कर राष्ट्रका संचालन किया करती है। धनका राष्ट्रके ऊपर निर्भर रहना, राष्ट्रको शक्तिशाली तथा स्वतन्त्र बनाना है।

इसप्रकार धनके प्रति राष्ट्रका कर्त्तव्य तुलनात्मक दृष्टिसे बिल्कुल स्पष्ट और सीधा है। इसका एकमात्र कर्त्तव्य धनको अपना गुलाम बना रखना है, जातिके ऊपर अपना अधिकार जमाना नहीं। इन बातोंको मद्देनजर रखते हुए राष्ट्रके दो सीमित उद्देश्य रह जाते हैं एक ओर विशुद्ध राष्ट्रीय तथा स्वतन्त्र शासन-प्रबन्ध करना, और दूसरी ओर कार्यकर्त्ताओंके सामाजिक अधिकारोंको सुरक्षित रखना। इसके पूर्व, महत्वपूर्ण श्रम द्वारा अर्जित धन और व्यापारिक धनके बीच स्पष्ट रूपसे तुलना करनेमें मैं असमर्थ था। मुझे यह न पता था कि किस तरह इसपर विचार करना चाहिये।

मेरी इस समस्याका समाधान गॉटफ्रेड फेडरके भाषणोंसे हो गया, जिन्हें सुननेका मुझे सुअवसर प्राप्त हुआ था।

फेडरके पहले भाषणको सुनते ही, मेरे मनमें यह विचार उठा कि मैंने एक उपयोगी सिद्धान्तके लिये रास्ता खोज लिया है, जिसके आधारपर एक नये दलकी स्थापना हो सकती है।

मैंने शीघ्र ही समझ लिया कि यहां वह मानसिक सत्यताका एक प्रश्न है, जो भविष्यमें जर्मन-जातिके लिये महान लाभदायक हो सकता था। जातिके राजकीय धनसे स्टाक एक्सचेंज (सट्टेके रूपमें क्रय विक्रयका स्थान) के धन-पृथकत्वके कारण जर्मनीके अन्तरराष्ट्रीय

आर्थिक शासनसे राष्ट्र उपस्थित होनेकी संभावना प्रतीत हुई; किन्तु उसमें उसके विरुद्ध किसी प्रकारका संघर्ष कर, स्वतन्त्र राष्ट्रीय अस्तित्वके सिद्धान्तको दुहराया नहीं गया था। जर्मनोंकी उन्नतिके कारण अब मुझे स्पष्ट रूपमें दिखाई दिये, क्योंकि उसका उद्देश्य शत्रु-जातियोंको छोड़कर अन्तर्राष्ट्रीय धनसे संघर्ष करना था। फेडरके भाषणने इस लड़ाईकी संभावना मुझे पहले ही सूचित कर दिया था।

इस दशामें हमारी पिछली उन्नतियोंने इस बातको प्रमाणित कर दिया है कि उस समय हमारे अनुभव कितने दुरुस्त और ठीक थे। हमारे मूर्ख, सिद्धान्तवादी राजनीतिज्ञोंको हमारी हँसी उड़ानेका कभी भी मौका न मिला; यद्यपि वे इस बातको समझते हैं, तथापि मूर्ख लोगोंकी आदतके कारण उनका कहना है कि युद्ध आन्दोलनोंके कारण जर्मनी अन्तर्राष्ट्रीय धनके विरुद्ध संग्राम नहीं कर सकता; इसलिये युद्ध समाप्त हो चुका है और सभी सन्धियां तरकमें बढ़ रही हैं!

मेरे और अन्य राष्ट्रीय समाजवादियोंके लिये एक ही सिद्धान्त है—जाति और पितृभूमिके सम्मानकी रक्षा।

हमें, अपने वंश और जातिकी वृद्धि तथा अस्तित्व, अपने बच्चोंकी रक्षा और रक्तकी पवित्रता, पितृभूमिकी आजादी और आत्म-निर्णय, और हमारी जातिके ईश्वरप्रदत्त उद्देश्योंकी मर्यादा-रक्षाके लिये ही लड़ना है, अन्य अर्थके पचड़ोंके लिये नहीं।

मैंने फिर नये सिरेसे अध्ययन करना शुरू किया, और अब पहली बार मेरा उद्देश्य और विचार मुझे वास्तविक रूपमें

दिखाई दिये। इसी समय मैंने उसकी "कॅपिटल" नामक पुस्तकको भलीभांति समझा, और साथ ही मैंने सामाजिक प्रजातन्त्रवादके आर्थिक संघर्षका कारण जाना, जिसका उद्देश्य स्टाक एक्सचेंज तथा धनिकोंके अन्तरराष्ट्रीय धनकी प्रधानता रख, श्रमजीवियोंकी गाढ़ी कमाईका नाश करना था।

एक दूसरे उपायसे भी मुझे इस कार्य्यमें और सहायता मिली। एक दिन मैंने इस बातकी घोषणा कर दी कि मैं कुछ बोलूंगा। जो उस दिन मेरा भाषण सुनने आये, उनमें से एकने सोचा कि मैं यहूदियोंके खिलाफ बोलूंगा, और वह अपनी लम्बी-चौड़ी दलीलोंसे मेरा विरोध करने लगा। इसने मुझे विरोधमें बोलनेके लिये उभाड़ा। उपस्थित जनतामेंसे अधिकांशने मेरा पक्ष लिया। जो हो, इसका परिणाम यह हुआ कि मैं म्युनिकके एक रेजिमेन्टका शिक्षक नियुक्त हुआ।

उस समय सेनामें अनुशासनका बहुत अभाव था। वे सैन्य सभाकी शासन-अवधिके कारण अत्यन्त कष्ट उठा रहे थे। क्रमशः सतर्कता पूर्वक, उनकी सम्मतिसे ही आज्ञापालनकी गति परिवर्तित हो सकती थी—कर्ट एसनरकी अधीनतामें उन्होंने जो कुछ सीखा था, उसके फलस्वरूप उन्हें सैनिक-अनुशासन और अधीनताकी शिक्षा दी जा सकती थी। इसी तरह सेनाको कमसे कम इस योग्य बना देना परमावश्यक था, जिससे प्रत्येक सैनिक इस बातको सोचने और अनुभव करने लगे कि वह भी अपनी जाति तथा पितृभूमिका एक सेवक है। मैंने अपनी क्रियाशीलताको इसी ओर लगाया। उत्साह और प्रेमके साथ मैंने उन्हें पढ़ाना शुरू किया।

में कुछ सफलताका दावा अवश्य कर सकता हूं; अपनी वक्तृता-शक्तिके प्रभावसे सैकड़ों ही नहीं, हजारों साथियोंको मैंने जाति तथा पितृभूमिके गौरवकी याद दिला दी, उनके हृदयमें दोनोंके लिये ही प्रेम-भाव आगया। मैंने सेनाका राष्ट्रीकरण कर दिया, और इस प्रकार साधारणतः मैं अनुशासनको शक्तिशाली बनानेमें समर्थ हो सका।

इसके अतिरिक्त, मने अपनी एक नयी जमात बनायी। जिसके विचार मेरे ही समान थे, और जिसने मुझे बादमें एक नये आन्दोलनकी स्थापनामें काफी सहायता प्रदान की।

नौवां अध्याय।

जर्मन वर्कर्स पार्टी।

एक दिन मुझे अपने उच्च आफिससे इस बातकी आज्ञा मिली कि मैं एक राजनीतिक पार्टीकी गतिविधिका निरीक्षण करूं। उस पार्टीका नाम जर्मन वर्कर्स पार्टी था। कुछ दिनोंके बाद ही उस पार्टीके तत्वावधानमें एक सभा होने वाली थी, सभाके प्रमुख वक्ताओंमें गोटफ्रीड फ्रीडरका नाम उल्लेखनीय था। मुझे मीटिंगमें जाना था और जनताके रुखको देखते हुये एक रिपोर्ट तैयार करनी थी।

राजनीतिक दलोंके सम्बन्धमें सेनाका कौतूहल हमारी समझके बाहरकी बात थी। विद्रोहके फलस्वरूप प्रत्येक सैनिकको यह अधिकार प्राप्त था कि वह एक प्रगतिशील राजनीतिज्ञ बने, और निकृष्ट से निकृष्ट सैनिकने भी इस अधिकारका सदुपयोग किया। सेन्टर तथा सामाजिक प्रजातन्त्रवादी पार्टियोंने दुःखके साथ प्रत्यक्ष रूपसे देखा कि किस तरह सैनिकोंकी सहानुभूति उन विद्रोही दलोंसे फिर चुकी थी, और राष्ट्रीय आन्दोलन तथा देशके पुनर्जीवनके प्रश्न पर उनका विशेष रूपसे झुकाव हो रहा था। यही कारण था कि उन्हें

सेनाके मताधिकार छीनने और उसे राजनीतिमें भाग न लेने देनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई।

हमारी पूर्व परिचित मध्य श्रेणीने, जोकि वास्तवमें अपनी दुर्बलताके कारण अन्तिम घड़ियां गिन रही थी, इसे हर तरहसे खतरनाक सोचा कि सेना फिर पूर्ववत् देशके रक्षण-विभागकी शक्तिस्वरूप हो जायेगी, और फिर, सेन्टर और मार्क्सवादियोंका विचार राष्ट्रीयताके खतरनाक जहरीले दांतको उखाड़ फेंकना था, जिसके विना सेनाको पुलिस विभाग कहा जा सकता है, शत्रुका मुकावला करने योग्य जंगी-विभाग नहीं, यही सब उन वर्षों में हो रहा था।

अन्तमें मैंने उक्त कथित सभामें उपस्थित रहनेका निश्चय कर लिया, हालांकि उसके अन्दरूनी विषयोंका मुझे लेशमात्र भी ज्ञान न था।

फेडरके भाषणके उपरान्त मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ। मैंने यथेष्ट देख लिया था और वहांसे जानेकी तैयारी ही कर रहा था कि सहसा इस वातकी घोषणा हुई कि अन्य वक्ता भी वोलेंगे, मैं इसलिये वहीं और रुक गया। थोड़ी देरतक कोई भी ऐसी महत्वपूर्ण वात नहीं हुई। कुछ देर वाद एक प्रोफेसर वोलनेके लिये उठा, उसने फेडरकी विचारसत्यतामें शंका उपस्थित कर दी, और तव—फेडरने उसे अच्छी तरहसे जवाव दिया कि—इस नौजवान पार्टीकी स्थापना आधारपूर्ण वातोंपर हुई है, और इसका संघर्ष प्रशियासे वमेरियाको स्वतन्त्र करना है। परन्तु यहां फेडरने अपने कथनको समझानेमें थोड़ी भूल की। वास्तवमें वात तो यह थी कि यदि वैसा हो जाता, तो जर्मन-

अस्ट्रिया तुरन्त ही बमेरियासे मिल जाता. अर्थात जर्मनीकी शान्ति और उन्नत अवस्थामें पहुंच जाती, अन्यथा बहुत ही बुरा परिणाम होता। इस पर अपना मत प्रकाशित करनेके लिये मैंने सभापतिसे आज्ञा मांगी, मुझे आज्ञा मिल गई, और मैं बोलने और समझानेमें इतना सफल रहा कि सभापतिने प्रसन्न हो मेरी पीठ ठोंक दी।

उस दिन मैंने इस विषयको कई बार सोचा, और अन्तमें उसे नर्वदाके लिये छोड़ देनेका संकल्प कर लिया. किन्तु उस घटनाके एक सप्ताह बाद ही मुझे इस आशयका एक कार्ड प्राप्त हुआ कि मैं जर्मन वर्कर्स पार्टीका सदस्य मनोनीत किया गया हूं, और मुझे उस पार्टी की आगामी बुधवारकी कार्यकारणी समितिमें शरीक होनेके लिये आमन्त्रित भी किया गया।

इस तरहसे सदस्य बनानेके तरीकेपर मुझे बड़ा ही आश्चर्य हुआ और मैं निश्चित नहीं कर सका कि ऐसे तरीकेपर हंसा जाय अथवा प्रसन्नता प्रगट की जाय। मैंने कभी भी किसी स्थानीय संस्थामें सम्मिलित होनेकी कल्पना नहीं की थी, हां, मैं अवश्य एक पार्टीकी खोजमें था। सत्य तो यह है कि मुझे कभी ऐसा मौका ही नहीं मिला।

आमन्त्रणकारियोंको मैंने इस आशयका उत्तर भेज दिया कि मैं उक्त कथित अवसरपर उपस्थित हो अपने विचारोंको सबके सामने रक्खूंगा। अपने इस उत्साहपर मुझे बड़ा ही कौतुहल हुआ।

बुधवार आया। मैं इस बातसे अत्यन्त आश्चर्यचकित हुआ कि इस सभाका सभापति स्वयं ही आफिसमें आयेगा। मेरा विचार अपनी घोषणाको कुछ देरके लिये स्थगित कर देनेका हुआ। अन्तमें वह

आया। यह वही प्रमुख व्यक्ति था; जिसने फेडरकी वक्तृताके पश्चात सन्देहकी सृष्टि कर दी थी।

इसने मुझे और भी कौतुहलमें डाल दिया, और मैं क्या होता है, यह देखनेके लिये रुक गया। किसी भी तरह मैंने इन भद्र व्यक्तियोंका नाम सीख लिया। सभापतिका नाम हर हैरर और म्युनिक स्थित शाखाके सभापतिका नाम ऐन्टन ड्रेक्सलर था।

गत मिटिंगकी कार्यवाही पढ़ी गई और वक्ताको उसके लिये धन्यवाद दिया गया।

नव नये सदस्योंके चुनावका समय आया, अर्थात मुझे सम्मिलित करनेके लिये नियमित कारवाई शुरू हुई।

मैंने प्रश्न पर प्रश्न करना शुरू किया। मुख्य सिद्धान्तके अतिरिक्त वहां कुछ भी न था, कोई कार्यक्रम, किसी भी तरहका परचा, कोई भी छपी चीज यहां तक की रबर स्टाम्प भी वहां नहीं था, परन्तु वहां एक बहुमूल्य चीज थी-"विश्वास और सदिच्छाका स्पष्टीकरण"।

इसपर मुझे हंसी न आई।

मुझे इन व्यक्तियोंके विचारोंका भलीभांति अनुभव था, वे एक नये आन्दोलनकी खोजमें थे, जो कि शब्दके स्वीकृत भावोंमें पार्टीकी अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण था।

मेरे जीवनके विकट प्रश्नने मेरा विरोध किया। क्या मैं इसमें सम्मिलित होने जा रहा था अथवा इसे त्यागने ?

मेरा भाग्य कुछ संकेत करने लगा।

मैं किसी स्थानीय संस्थामें कभी भी सम्मिलित नहीं हुआ था, और मैं इसका कारण भी अच्छी तरहसे समझाऊंगा। मेरी दृष्टिमें यह एक लाभदायक बात प्रतीत हुई कि वह विचित्र गुट्ट, अपने थोड़ेसे सदस्योंके साथ एक संगठित संस्थाकी तरह कठोर न हो. प्रत्येक मनुष्यको व्यक्तिगत कार्यकुशलताका परिचय देनेके लिये अवसर देता था। वह समय कुछ काम करनेका था, और वह छोटा आन्दोलन क्रमशः बड़ा रूप धारण कर सकता था। अभी भी संस्था के स्वभाव, उद्देश्य तथा तरीकोंको विचारनेका अवसर था, परन्तु एक बड़ी पार्टीका रूप दे देनेसे ऐसा होना सर्वथा असम्भव था।

जितना ज्यादा मैंने इसपर विचार किया, उतना अधिक मेरा यह दृढ़ विश्वास होता गया कि निकट भविष्यमें इसीके समान कुछ छोटे आन्दोलन राष्ट्रीय-उत्थानके पथ प्रदर्शक बनेंगे, किन्तु अपने पुराने विचारोंपर तटस्थ, पार्लियामेंटकी राजनीतिक पार्टियां ऐसा नहीं कर सकतीं,क्योंकि उनका ध्यान व्यर्थमें नये-नये कानून बनाना था। जिस बातकी उन्हें घोषणा करनी चाहिये थी, वह उनके लिये एक नया सांसारिक सिद्धांत था, नये चुनावका होहल्ला नहीं।

दो दिनके गम्भीर विचारके अनन्तर मैंने इस बातका निश्चय कर लिया कि मैं उस नये आन्दोलनमें भाग लूं। मेरे जीवनका यह एक स्पष्ट विचार था। इसमें सुधारकी न आवश्यकता ही थी और न वह वाञ्छनीय ही था।

इस प्रकार मैं जर्मन वर्कर्स पार्टीका एक सदस्य बन गया, और मुझे उस पार्टीके सातवें नम्बरका एक टिकट दिया गया।

दसवां अध्याय।

प्राचीन साम्राज्यमें पूर्वसूचक विनाश-चिन्ह।

जिस विपत्तिसे जर्मन-जाति और रीच दोनों ही दुःख उठा रहे है, वह इतनी महान है कि उन्हे अपने विचारों और उद्देश्योंको खोनेका भय लगा हुआ है, मानों उनका दिमाग चक्करमें पड़ गया है। प्राचीन सभ्यताका पुनः आह्वान करना किसी भी हालतमें सम्भव नहीं, इस तरह प्राचीन गौरव और महानताके साथ इस वर्त्तमान दुःखकी तुलना करना,सर्वथा अप्राकृतिक और स्वप्नवत् है, जो इस बातका खुलासा करता है कि क्यों लोगोंकी आंखें महानताके प्रश्न पर चकाचौंध हो रही है और वे पूर्वसूचक विनाश-चिन्होंकी खोज करना भूल गये हैं, जिनका किसी न किसी रूपमें उपस्थित होना अनिवार्य है।

ये चिन्ह प्रत्यक्षतः उपस्थित थे, तथापि ऐसे बहुत कम व्यक्ति थे, जिन्होंने इनसे कुछ सीखनेकी चेष्टा की हो। पहलेकी अपेक्षा वर्त्तमानकालमें इसकी जानकारी रखना अत्यन्त आवश्यक है।

अब जर्मनीकी अधिकाश नयी जनता यही समझती है कि यह जर्मन दुर्बलता सर्वसाधारणकी आर्थिक दरिद्रताके फलस्वरूप थी।

प्राय: सभी लोग व्यक्तिगत रूपसे इससे प्रभावित हुए थे - यही एक कारण इस विपत्तिके अवसर पर प्रत्येक व्यक्तिको प्रतीत हुआ। लोग इस विनाशका सम्बन्ध राजनीतिक, सांस्कृतिक अथवा नैतिक प्रश्नोंसे बताते हैं। बहुतसे ऐसे भी हैं, जो इसे समझने और इसके आन्तरिक तत्वतक पहुंचनेमें असमर्थ हैं।

दूसरा कारण जनसाके सामने इसका कोई भी प्रश्न नहीं उठता, परन्तु, जातिका विद्वान समाज इस विनाशका कारण "आर्थिक-विपत्ति" को ही समझता है और उसके विचारमें इसका सुधार आर्थिक कार्योंसे ही हो सकता है, यही कारण है कि अबतक कुछ भी सम्भव नहीं है। जबतक हम इस बातको नहीं समझते कि आर्थिक समस्या, जाति और नीतिशास्त्रके बाद विचारणीय है, तबतक वर्त्त-मान दुःखके कारण हमारी समझमें नहीं आ सकते, अथवा उसके सुधारके लिये कोई भी तरीका नहीं मालूम हो सकता।

हमारे दुर्भाग्यका सबसे सरल, और इसलिये साधारणतः विश्व-स्त कारण युद्धमें हमारी पराजय है।

निस्सन्देह, बहुतेरे लोग इस बेवकूफीको समझनेके लिये तैयार हैं, परन्तु कुछ लोग ऐसे भी हैं जो इसे थोथी दलील मानते हैं और स्पष्ट झूठ कहनेसे भी बाज नहीं आते। ऐसा कहनेवाले और कोई नहीं गवर्मेन्टकी नादमें खाने वाले कुत्ते हैं।

क्या विश्व-बन्धुत्वके उपासक देवदूतोंने इस बातकी घोषणा नहीं की कि, जर्मन-पराजयने एक युद्धवादका विनाश किया? क्या समस्त विद्रोह इस कुभावनासे कि इसके कारण ही जर्मन-साम्यसे विजय

नहीं प्राप्त हो सकी, नहीं भरा था ? किन्तु, वास्तविक बात तो यही थी कि इसके द्वारा ही जर्मन-जाति समस्त संसारमें चाहे घरमें या बाहर अपनी स्वातन्त्र्य दुन्दुभि बजा सकती थी। ओ झूठे बदमाशों, क्या ऐसा नहीं था ?

सेनाकी हारको विनाशका कारण बताना, यहूदी निर्लज्जताका दूसरा रूप था, जबकि धोखेबाजोंके प्रमुख समाचार पत्र, बर्लिनके भोरवर्टने उस समय यह लिख मारा था कि जर्मन-जातिके भाग्यमें विजयी हो घर वापिस आना नहीं लिखा है! क्या इसे विनाशका एक कारण नहीं कहा जा सकता ?

"युद्धकी पराजय एक कारण है" इसका उत्तर इस प्रकार दिया जा सकता है:—

निस्सन्देह, युद्ध-पराजयका हमारे देशके भाग्य पर भयानक असर पड़ा, किन्तु यह एक कारण न था हां, कारणोंका परिणाम अवश्य था। सभी बुद्धिमान और शुभेच्छु जनता अच्छी तरहसे समझती है कि जीवन-मरण-संघर्षके उस अभागे अन्तका कैसा भयंकर परिणाम हो सकता है। परन्तु कुछ ऐसे भी लोग थे, दुर्भाग्यवश, जिनकी विवेचना-शक्ति ठीक समय पर नष्ट हो जाती थी, अथवा वे सब कुछ अच्छी तरह समझते-बूझते भी, सत्यके विरुद्ध लड़ते थे और उसकी सत्यतामें जानबूझ कर अविश्वास प्रगट करनेमें भी नहीं हिचकिचाते थे। वास्तवमें, वे ही इस विनाशके प्रमुख कारण हैं; युद्ध-पराजय नहीं; जैसा कि वे आजकल कहा करते हैं। युद्ध-पराजय केवल उनकी करनीका फल है, परन्तु उनके कथना-

नुसार इसका कारण नेतृत्वकी खराबी है। ऐसा कहना उनकी सरासर भूल है। शत्रुओंका संगठन कायरोंका जमघट न था, वे भी जानते थे कि किस तरह मरना होता है। युद्धके प्रारम्भसे ही उनकी संख्या जर्मन-सेनासे ज्यादा रही, और फिर अपनी लाक्षणिक युद्ध-सामग्री द्वारा उन्होंने समस्त संसारका सहयोग प्राप्त कर लिया। लगातार चार वर्षों तक समस्त संसारसे वीरतापूर्वक संगठित रूपमें युद्ध कर जर्मन-जातिने नैतिकतापर जो महान विजय प्राप्त की है, उसे हम, महज सेनापतियोंको बदनाम करनेके लिये, भूल नहीं सकते। जर्मन-सेनाका संगठन तथा नेतृत्व संसारकी दृष्टिमें अद्वितीय था। युद्धमें हमारी असफलताका कारण मानव-शक्तियोंकी बाधा थी।

हमारे वर्त्तमान दुर्भाग्योंका कारण जर्मन-सेनाका विनाश न था, किन्तु, यह दूसरे अपराधोंका फल है, जिसमें से एक तो उस विनाश के समय प्रतीत हुआ था, और दूसरा अब प्रत्यक्ष रूपमें हमारे सामने उपस्थित है।

क्या जातियोंका विनाश कभी युद्ध-पराजयके कारण ही हुआ है? इसका बहुत संक्षेपमें उत्तर दिया जा सकता है।

सेनाकी पराजय आलस, कायरता, चरित्रके अभाव, और वास्तव में जातिके कार्य्योंकी अयोग्यताके कारण ही हो सकती है। यदि ऐसा न हो, तो सेनाकी ऐसी पराजय भविष्यमें जाति-उत्थानमें सहायक होती है, जातिके नामपर धब्बा लगानेवाली नहीं।

इस कथनकी वास्तविकताको सिद्ध करनेके लिये इतिहासमें असंख्य प्रमाण हैं।

आह ! जर्मनीकी सैन्य-पराजय कोई अवांछनीय बात न थी, किन्तु ताड़नाके रूपमें एक अविस्मरणीय शिक्षा थी। हमारी योग्यता के अनुसार ही ऐसा फल प्राप्त हुआ था।

यदि जर्मन-सेनाको किसी भी प्रकारसे उभाड़ा नहीं जाता, और उसे अपनी मनमानी करनेका मौका दिया जाता, और यदि फिर उस असफलतासे यह राष्ट्रीय दुर्घटना होती, तो जर्मन इस पराजयको किसी दूसरे रूपमें ही देखते। ऐसे समय वे स्वतः ही उस दु:खके कारण होते जो भविष्यमें विकराल रूप धारण करता, अथवा उनके दुःखका पार नहीं लगता। भाग्यकी चालबाजियोंके विरुद्ध उनका हृदय उन्माद और रोषसे भर जाता, अथवा अपने भाग्यशाली विजय-प्राप्त शत्रुको वे किसी भी हालतमें नहीं देख सकते। उस समय न आनन्द मनाया जाता न नाच गाने ही होते, कायरता घमण्डमें फूल पराजयको गौरवशाली न बनाती, युद्ध करनेवाली सेनायें अपनी इस पराजयपर हास-परिहास न करतीं, और सबसे बढ़कर, इस तरहकी अवांछनीय और भद्दी परिस्थिति उपस्थित न होती, जिसने एक ब्रिटिश अफसर, कर्नल रेपिंगटनको यह घोषित करनेका मौका दिया कि, "प्रत्येक जर्मन धोखेबाज है।"

नहीं—अपने दुर्बल प्रदर्शनके कारणोंसे ही सेनाका विनाश हुआ था, जिसके लिये कायरों और बुजदिलोंको दोष दिया जा सकता है; जो शान्तिके अवसरोंपर हमेशा ही जातिको दूषित करते आये हैं। नैतिक विष-प्रचारके विपत्तिजनक परिणामस्वरूप ही परा-जय हुई थी, जिसे आत्मरक्षाके विचारोंकी कमजोरी तथा जर्मन-

जाति एवं नीचको अज्ञातरूपसे हानि पहुंचानेवाले तत्कालीन सिद्धांतों का फल कहा जाय तो कोई आतिशयोक्ति न होगी।

यह सर्वदा प्राकृतिक था कि यहूदियों और मार्क्सवाद-संगठनके नारकीय विचारोंमें वही व्यक्ति उस दुर्घटनाका उत्तरदायी था, जिसने अपनी अलौकिक इच्छाशक्ति और तीव्र बुद्धि द्वारा अपने देशका उस विपत्तिसे, विशेषत: ऐसे समयमें, उद्धार किया, जबकि समस्त जाति दर्पमर्दन और अपमानकी असह्य वेदनासे व्याकुल होरही थी। लुडेन-डर्फको युद्ध-पराजयका दोषी ठहरा; उन्होंने नैतिक न्यायास्त्रको अपने हाथोंसे खो दिया; और पितृभूमिके साथ महान अन्याय किया।

हम इसे भी जर्मन-जातिके भाग्यका प्रभावमान सकते हैं कि उस समय ऐसी रुला-रुलाकर मारनेवाली बीमारी आई और उस आपद्कालमें भी उसका प्रतिकार किया गया, क्योंकि यदि इससे कुछ भी भिन्न होता तो जर्मन-जातिका विनाश होना अवश्यम्भावी था। वह रोग पुराना होजाता, परन्तु दुर्घटनाके वास्तविक रूपमें उसकी झलक साफ-साफ प्रतीत हुई और विचारशील अवेक्षकोंने उस मर्ज-को अच्छी तरहसे समझ लिया। उन मनुष्योंने उस संचारी रोगको क्षयीरोगकी अपेक्षा आसानीसे समझ लिया। उनमेंसे पहला मृत्युकी भयावह लहरोंपर आता है तथा मनुष्योंको दहला देता है, और दूसरा धीरे-धीरे रेंगता है, पहला भयोत्पादक है, और दूसरा क्रमशः कष्टदायक है। इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्य पहलेपर विजय पानेके लिये अपनी पूर्णशक्ति लगा देता है, जबकि दुर्बल उपायोंसे वह अपने खर्चको रोकनेकी चेष्टा करता है। इसप्रकार हम संचारीरोगपर विजय

प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु क्षयीरोग हमपर विजय प्राप्त करता है। यही बात हमारी शारीरिक राजनीतिके रोगोंपर लागू होती है।

पूर्व्व महायुद्धकी चिरशान्तिकी दृष्टिमें कुछ दोष उत्पन्न हुए और उन्हें दोषरूपमें समझा गया, यद्यपि कुछ आपदाओंको छोड़; उनके कारणोंपर व्यवहारतः कोई भी ध्यान नहीं दिया गया था। सर्वप्रथम ये विचारणीय अपवाद जातिके आर्थिक जीवनके वातावरणसे सम्बन्धित थे, और इन्होंने प्रत्येक व्यक्तिके हृदयमें, अन्य दिशाओंसे उत्पन्न दूसरे दोषोंकी अपेक्षा, विशेष स्थान प्राप्त किया था।

उस समय नाशके अनेकों ऐसे चिन्ह प्रतीत हुए; जिनपर समुचित ध्यान देना चाहिये था।

महायुद्धके पूर्व जर्मनोंकी आश्चर्यजनक बढ़ती हुई आबादीने उसके प्रबन्धके लिये ऐसा स्थानका, जो आर्थिक तथा राजनीतिक दृष्टिसे उपयुक्त हो, प्रश्न उपस्थित कर दिया। किन्तु, दुर्भाग्यवश अधिकारी अपने विचारोंको एकमत न रखनेके कारण, मतभेदकी सृष्टिकर, सही रास्तेपर नहीं पहुंच सके, क्योंकि उनकी धारणा थी कि वे अपने उद्देश्यकी प्राप्ति सहज उपायोंसे ही कर लेंगे।

नये देशों अथवा उपनिवेशों पर विजय प्राप्त करनेके पुनर्जीवन विचारका; आर्थिक विजयके सनकी-ध्यानके कारण, असीमित और हानिकारक उद्योग-धन्धेकी ओर अग्रसर होना अनिवार्य था।

इसका मृत्युकारी परिणाम मजदूरों और किसानोंको क्षीणकाय बनाना था। जैसे२ इस श्रेणीका पतन होता गया, नगरोंमें सामान्य लोग भरगये, उनकी संख्या भी बढ़ने लगी; अन्तमें समतुल्यताका नाश होगया।

इस प्रकार धनिकों और गरीबोंके भीषण संघर्षका रूप और भी स्पष्ट रूपमें प्रतीत हुआ। व्यर्थता और दरिद्रताका इतना निकट संबन्ध होगया कि उसका परिणाम अत्यन्त सोचनीय प्रतीत हुआ। दरिद्रता और महान बेकारीने जनताके लिये प्रलयका रूप धारण कर लिया और उसने सर्वत्र असन्तोष और परस्पर बुरे विचारोंकी सृष्टि कर दी।

असीम उद्योगीकरणका दूषित वातावरण अभी भी उपस्थित था। राष्ट्रके लिये दुःखदायक परिमित व्यापारके अलावा, धन ही ईश्वर हो गया, जिसकी जी-हजूरी सबको बजानी पड़ी और उसके आगे झुकनेके लिये लोगोंको बाध्य किया गया। नैतिक पतनका एक काल प्रारम्भ हुआ जो विशेषतः इसलिये बुरा था कि उसकी सृष्टि ऐसे समय की गई जब कि जातिको पहलेकी अपेक्षा कुछ अधिक वीरताकी आवश्यकता थी। उस समय हमारा देश भयग्रसित था। जर्मनीको अपनी तलवारके बलपर अपने उद्योगोंको मजबूत बनाना चाहिये था; जिससे वह अपनी रोजाना रोटी "शान्तिपूर्ण आर्थिक श्रम"से कमा सकता।

दुर्भाग्यवश, धनकी प्रधानताने उस स्थानपर अधिकार करनेकी स्वीकृति प्राप्त की, जिसका निकट भविष्यमें श्रमिकोंके विरोधमें आना आवश्यक था। हमारे महाराजकी यह असुखकर इच्छा थी कि उन्होंने राजकर्मचारियोंको धनके नये केन्द्रमें प्रवेश करनेकी आज्ञा दे दी। निस्सन्देह उनका यह अपराध क्षम्य है, यहां विस्मार्क जैसे विकट राजनीतिज्ञ भी भयको समझनेमें असफल रहे; परन्तु व्यवहारतः इसने आदर्श गुणोंको धनके हाथों बेच दिया; क्योंकि यह

बिलकुल स्पष्ट था कि एकबार उस पथपर लाये हुये खड्गधारी दरबारी भी धनके मायाजालमें फंसनेके लिये विवश हो जाते हैं।

महायुद्धके पूर्व जर्मन-राष्ट्रका व्यापारिक अन्तरराष्ट्रीकरण शेयरोंके प्रतापसे अपने उपयुक्त पथपर चल रहा था। जर्मनीको एक उद्योगशील श्रेणीने उस आपद्गको दूर भगानेका प्रयत्न किया; किन्तु अन्तमें लोभियोंके संयुक्त आक्रमणोंका उसे शिकार होना पड़ा - यह थे हमारे मार्क्सवादी आन्दोलनके संचालक मित्रोंके हथकण्डे।

जर्मनीके "तत्वयुक्त-उद्योग धन्धे" के विरुद्ध दृढ़ संग्रामका प्रत्यक्ष रूप अन्तरराष्ट्रीकरणका प्रारम्भ था,जो कि मार्क्सवादकी सहायताके लिये आरम्भ किया गया था; और इस कार्यको पूर्ण करनेका एकमात्र सम्भव उपाय विद्रोहमें मार्क्सवादका विजय होना था। मेरे शब्दोंमें, जर्मन-राष्ट्रकी रेलवेपर मार्क्सवादियोंका आक्रमण अपनी सफलता दिखा रहा था;और इसका परिणाम अन्तरराष्ट्रीय पूंजीवादियोंके लिये अत्यन्त लाभदायक था। इस प्रकार "अन्तरराष्ट्रीय" सामाजिक प्रजातन्त्रवादने पुनः अपने एक ध्येयको प्राप्त कर लिया।

व्यापारिक उद्योगीकरणके तरीकेका सबसे अच्छा प्रमाण यह है युद्धके समाप्त होते ही जर्मन-उद्योग और व्यापारके एक नेताने अपना यह मत प्रकाशित किया कि व्यापार ही जर्मनको पुनः अपने पांवपर खड़े होने योग्य बना सकता है। स्टाइन्सकेद्वारा कथित इन शब्दोंनेअविश्वसनीय घबड़ाहट पैदा कर दी,और वे तबसे उन बकबकियों औरपाखंडियोंके लिये उद्देश्यस्वरूप होगये हैं,जो राज्यकर्मचारीके वेशमें विगत विद्रोहके समयसे ही जर्मनीकी भाग्य श्रीको नष्ट करनेमें लगे हुये हैं।

जर्मनीके विनाशके कारणोंमें सबसे बुरा कारण सार्वजनिक कमजोरदिली थी,जो महायुद्धके पूर्व सभी प्रकारके वातावरणपर अपना प्रभाव जमा रही थी। मनुष्यकी अनिश्चितताके परिणामस्वरूप ही ऐसा हुआ करता है। इसका दूसरा कारण कायरता है,जो संदिग्धता तथा अन्य दूसरी बातोंसे उत्पन्न होती है। शिक्षा-प्रणालीको यदि इसके लिये दोषी कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं।

महायुद्धके पूर्व जर्मन-शिक्षा-प्रणाली कितनी ही बातोंके कारण कमजोर थी। उसका रंग रूप इस तरह बनाया गया था, जिससे व्यवहारिक योग्यता प्राप्त करना असम्भव था, उसमें विद्या-ज्ञानकी सीमा थी,और एक तरफ स्वार्थपरताका अच्छा समावेश था। चरित्र निर्माणका उसमें कोई विचार न था,उत्तरदायित्वके आनन्दको समझानेकी इसमें तनिकमात्र भी चेष्टा नहीं की गई थी,और न्याय एवं इच्छा-शक्तिका तो नाम ही नहीं रह गया था। इसका परिणाम एक दृढ़ व्यक्ति बनाना नहीं, किन्तु एक ज्ञानवान कोमल विचारयुक्त शिक्षक बनाना था-और यह वही था जोकि संसारमें जर्मनोंके लिये सोचा जाता था और जिसके लिये हमें विचार करनेका आनन्द प्राप्त हुआ। एक जर्मनकी उपयोगिता देखते हुये उसके प्रति चाहना अवश्य थी,परन्तु उसकी इच्छाशक्तिकी दुर्बलताको देख उसका बहुत कम सम्मान होता था। किसी दूसरी जातिकी अपेक्षा, स्वातन्त्र्य विचारों और पितृभूमिके परित्यागके विषयमें, उसके पास अच्छे कारण थे। यहां "रमता जोगी घर घर डोले" की लोकोक्ति भलीभांति चरितार्थ होरही थी।

यह कोमलता उस समय अलंकारी सिद्ध हुई, जब इसने उस स्वरूपको धारण किया,जिसे सम्राट कर सकते थे। वह स्वरूप निरुत्तर सिद्धान्तोंपर निर्भर था,परन्तु उसका ऐसे सभी विषयोंसे संबन्ध था, जिन्हे सम्राट चाहते थे। तथापि उसकी यह इच्छा थी कि प्रत्येक व्यक्तिकी नागरिक स्वाधीनताका होना आवश्यक है, अन्यथा इसके अभावसे राजसत्ताका विनाश अनिवार्य था।

निस्सन्देह चापलूसी पेशा करनेवालोंके लिये यह एक अच्छी बात थी, परन्तु सभी योग्य मनुष्य—और राष्ट्रके श्रेष्ठ व्यक्ति पूर्ववत इस अनर्थकताकी रक्षा होते देख बहुत बुरा मानेंगे। उनके लिये इतिहास इतिहास ही है और सत्य सत्य ही है, चाहे उसका सम्बन्ध राजासे हो अथवा रंक से। नहीं,ऐसा बहुत कम देखनेमें आता है कि किसी भी जातिके भाग्यमें एक महान सम्राट और एक उत्कृष्ट विद्वान दोनों ही हों, और यदि ऐसा होता है, तो भाग्यचक्रकी कोई भी दुर्घटना जातिको नहीं सता सकती और वह सन्तोषी जीवन व्यतीतकर सारके लिये आदर्शस्वरूप बन जाती है।

इस प्रकार राजविचारोंके गुण और महत्व राजाकी व्यक्तिगत विचार श्रृंखला तक ही सीमित नहीं हो सकते, हां, ऐसा उसी दशामें सम्भव है,जब ईश्वर राजमुकुटको फ्रेडरिक महान अथवा विलियम प्रथम जैसे प्रकाण्ड विद्वान, महान योद्धा और विकट राजनीतिज्ञके मस्तकपर रखता है। कई शताब्दियोंमें एकबार ऐसा हुआ करता है वह भी कभी कभी बड़ी मुश्किलसे। अन्यथा यह धारणा किसी व्यक्ति विशेषके श्रेष्ठत्वको स्वीकार करती है,और इसका महत्व पूर्ण-

त्तया एवं स्वभावतः एक सुन्दर व्यवस्था पर निर्भर करता है, तथा राजा उनलोगोंके क्षेत्रमें प्रवेश करता है, जो उसका कार्य्य करते हैं।

इस भूलभरी शिक्षाका एक परिणाम उत्तरदायित्व ग्रहण करनेका भय और लाभदायक समस्याओंपर विचार करनेकी परिणामरूपी निर्बलता है। उदाहरणार्थ यहां मैं जनताकी कुछ बातोंका जिक्र करूंगा जो मुझसे सम्बन्ध रखती हैं।

सम्पादकीय क्षेत्रमें प्रेसको राष्ट्रकी महान-शक्ति बतानेकी एक प्रथा सी चल गई है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसका वास्तवमें बहुत महत्व है। इसकी अधिक व्याख्या करना बहुत मुश्किल है—किन्तु जो कुछ इसके द्वारा होता है, वह वास्तवमें शिक्षा विषयको प्रगतिशील युग तक पहुंचानेके लिये ही किया जाता है।

यह जाति और राष्ट्रके स्वार्थोंके लिये लाभदायक है—इसका काम यह देखना है कि जनता बुरे, अज्ञान और यथार्थतः अयोग्य शिक्षकोंके हाथ न पड़ जाय। अतः राष्ट्रका यह कर्त्तव्य है कि वह जनताकी शिक्षाका निरीक्षण किया करे और गलत रास्तेपर चलने वाली परिपाटीपर नियन्त्रण रक्खे, और विशेषतः उसे प्रेसोंकी गति-विधि पर ध्यान रखना चाहिये, क्योंकि इनका प्रभाव मनुष्यमात्रपर अन्य बातोंकी अपेक्षा ज्यादा और अन्तरपटगामी होता है; इसका भी एक विशेष कारण है—इनके कार्य्योंमें क्षणिकताका लोप और उसके स्थानपर स्थायीपन। यह महान प्रभाव संगठन और शिक्षाके दृढ़ सिद्धान्तोंके कारण ही है। यहां, राष्ट्रका कर्त्तव्य है कि वह इनपर ध्यान रखना न भूले, और इस बातका स्मरण रक्खे कि उसका

अधूड़े उपायोंसे तत्परताको सन्तुष्ट करना आन्तरिक विनाशका बाहरी चिन्ह है, और निकट भविष्यमें ही एक राष्ट्रीय विनाशका होना अनिवार्य है।

मैं आशा करता हूं कि हमारी वर्त्तमान जनता इस भयपर सरलतासे ही अपना प्रभुत्व जमा देगी। ये निश्चित अनुभव उसके हृदयमें शीघ्रही स्थान पा सकते हैं,जिसने इनका अर्थ भलीभांति समझ लिया हो। यह निश्चित है कि यहूदी कभी न कभी अपने समाचार पत्रोंमें इसके लिये अवश्य चिड़चिड़ायेंगे कि उनके प्रेसके दुरुपयोग करनेके हथियारको उनके हाथसे छीन, पुनः उसे राष्ट्र और जातिकी सेवामें लगा, शत्रुओं और विद्रोहियोंका मानमर्दन कर दिया गया। मैं विश्वास करता हूं कि अपने पूर्वजोंकी अपेक्षा हम इस दशामें अब बहुत कुछ अच्छे हैं। तीस सेन्टिमीटरवाला बारूदका एक गोला एक हजार द्रोही यहूदी सम्बाददाताओंसे सर्वदा ही ज्यादा आवाज करता है—अतएव उन्हें बकने दो!

समस्त शिक्षाका रूप इस तरहका होना चाहिये, जिससे किसी एक लड़केका खाली समय उसके उपयोगी शरीर-सुधारमें लगे। उसे कोई अधिकार नहीं है कि वह उन वर्षोंको आलस्यपूर्वक सड़कोंमें गोलमाल मचाने और तस्वीर-घर देखनेमें व्यर्थ ही खो दे, किन्तु अपने दैनिक कार्यसे छुट्टी पानेके बाद उसे अपने शरीरको दृढ़ करना चाहिये था, ताकि मानव जीवनके संघर्षकालमें उसे अपनी निर्बलता प्रतीत हो। इसके लिये तैयार करना और इसे कार्यान्वित करना ही युवक शिक्षाका काम है, किन्तु, केवल विद्याज्ञानसे ही काम नहीं चल-

सकता। इसे स्वतः इस मतका अनुसरण करना पड़ेगा कि शरीर-व्यस्था करना प्रत्येक व्यक्तिका अपना काम है। किसीको भी वंश-परम्पराके कारण पाप करनेकी स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त होनी चाहिये।

आत्माको दूषित करनेवाले वातावरणके विरुद्ध, शारीरिक सुधार को साथ रख, लड़ाई लड़ना आवश्यक है। आजकल हमारा सार्वजनिक जीवन स्त्री वा पुरुषके विचारों और आकर्षणोंके लिये चुम्बक-शक्तिपूर्ण नियन्त्रक यन्त्रके समान है। यदि आप सिनेमा, खेलतमाशोंके स्थानों, थियेटरोंके खर्चोंकी ओर देखें, तो आपको यह मानना पड़ेगा कि नौजवानोंके लिये यह उपयुक्त भोजन नहीं है। विज्ञापनबाजी और गाने-बजानेसे जनताका ध्यान बुरी तरफ भी खींचा जा सकता है। कोई भी व्यक्ति जिसने नवयुवकोंके विषयमें अपनी विचार-क्षमता को नष्ट नहीं किया है, भलीभांति समझ सकता है कि ये सब चीजें एक नवयुवकके लिये कितनी हानिकारक हैं। हमें जनताके जीवनको आधुनिक कामुकताके नाशकारी वातावरणसे स्वतन्त्र करना ही पड़ेगा, और ऐसा तभी होगा जब हम अमानुषिक और बनावटी सावधान तरीकोंसे उसका जबर्दस्त मुकाबला करेंगे। इन सब बातोंमें उद्देश्य एवं तरीकेका संचालन, जातिको शरीर एवं आत्मासे स्वस्थ रखनेवाले विचारोंसे होना चाहिये। इसके बाद वंश-निर्माणके कर्त्तव्य के सिलसिलेमें व्यक्तिगत स्वाधीनताका महत्त्वपूर्ण प्रश्न आता है।

ऐसी दुर्बलता प्रायः सभ्यता और कलाके प्रत्येक विषयमें दर्शनीय थी। हमारे आन्तरिक विनाशका यही चिन्ह था कि हमारे नवयुवक समाजके लिये यह असम्भव था कि वह ऐसे कला-गृहोंका

पर्य्यवेक्षण करता, और उसपर जनसाधारणकी सार्वदेशिक चेतावनी —"तरुणों सावधान" पर विचार करता।

यह सोचना कि ये पूर्वउद्योगी उपाय उस स्थानपर आवश्यक थे, जहां युवकोंके निर्माणार्थ सभी साधन जुटाना चाहिये था, उनसे आनन्द-लाभकी आशाका परिचायक न था! नाट्यकार इसप्रकारकी चेतावनी और इसे आवश्यक बनानेवाले कारणके विषयमें पहलेसे क्या लिखते आये हैं? स्किलरके घृणायुक्त क्रोधकी कल्पना कीजिये— किस तरह गोथे इसके द्वारा क्रोधमें आ सकता था।

परन्तु वास्तवमें, स्किलर, गोथे, शेक्सपीयर इत्यादि जर्मन-वीरताके काव्य-रचयिताओंकी तुलनामें कुछ भी नहीं हैं। उन्होंने जो कुछ भी जनताके सामने रक्खा, वह अतीत गौरवके ऊपर कीचड़ उछालना था।

महायुद्धके पूर्व हमारी राष्ट्रीय सभ्यताकी सबसे उदासीन दशा केवल हमारी कला और साधारण संस्कृतिकी उत्पादक शक्तिकी दुर्बलताके कारण ही नहीं थी, किन्तु, उस स्थान पर हमारे उन घृणा-भावोंका दोष था, जिन्होंने अतीतकालीन स्मृतियोंको कलंकित करने और सर्वदाके लिये लुप्त करनेकी चेष्टा की थी। उस शताब्दीके अन्त में, प्रत्येक कला-विषय, विशेषतः नाटक और साहित्यमें कोई भी प्रभावशाली बात नहीं उपस्थित हुई, किन्तु उसके स्थानपर प्राचीन-कालके कार्य्योंको अप्रचलित और तुच्छ बताया गया; मानों वर्त्तमान युग वैसी लज्जाजनक तुच्छतासे वंचित रह सकता था। कैसी आश्चर्यजनक बात!

महायुद्धके पूर्वकी धार्मिक दशाओंके गम्भीर अध्ययनका पता चलता है कि किस तरह प्रत्येक विषय अपूर्ण रह गया। इस विषयके कारण जातिकी बड़ी २ श्रेणियोंको अपना व्यापक और दृढ़ विश्वास खोना पड़ा। इस कार्यमें चर्चके साथ प्रत्यक्ष एवं खुल्लमखुल्ला लड़ने वालोंकी अपेक्षा उन्होंने जो उससे बिल्कुल अलग थे, ज्यादा भाग लिया। दोनों ही जातियां एशिया और अफ्रीकामें अपने सिद्धान्तोंकी ओर लोगोंको आकृष्ट कर, अनुयायी बनानेके लिये अपने मतका प्रचार करती हैं। यह महत्त्वाकांक्षा मुस्लिम धर्मप्रेमकी तुलनाके समक्ष कुछ भी नहीं थी-जबकि दूसरी ओर योरुपमें उनका प्रभाव नष्ट होरहा था,और वे अपने मीलियनों अनुयायियोंके सहयोगसे वंचित हो रहे थे,जो उस धार्मिक जीवनसे उकता गये थे अथवा उनका मन उससे फिर गया था। नैतिक दृष्टिसे इसका परिणाम अत्यन्त ही बुरा था।

आज भी कई चिन्ह संघर्षके परिचायक हैं, जो हिंसाके रूपमें दिनोंदिन बढ़ते जा रहे हैं,अनेकों चर्चोंके उन दृढ़ सिद्धान्तोंके विरुद्ध जिनके बिना, व्यवहारतः, मानवताके इस संसारमें धार्मिक विश्वास समझके बाहरकी बात है। किसी भी जातिकी साधारण जनता वकीलों से ही नहीं भरी होती;उसके जीवनके नैतिक दृष्टिकोणके लिये विश्वासही एकमात्र आधार है। उन सिद्धान्तोंके मुकाबलेमें उसी तरहके सिद्धान्तोंकी सृष्टिकरना उतना सफल नहीं,जितना जैसेको तैसा जवाब देनेकी बात उस तरहके धार्मिक अपराधोंके लिये माकूल है। यदिधार्मिक सिद्धान्त एवं विश्वास जनताके ऊपर अपना प्रभाव जमा लेते हैं, तो उसके लिये मतके संचालकको ही उस प्रभावका एकमात्र आधार कहा

जायेगा। साधारण जीवनके लिये मामूली प्रथा क्या है,और निस्सन्देह इसके बिना भी श्रेष्ठ सभ्यताके उपासक हजारों मनुष्य,सफलतापूर्वक सरलतासे जीवन यापन कर सकते थे, किन्तु दूसरे लाखों व्यक्तियोंके लिये यह बात न थी—राष्ट्रके लिये कानून,और साधारण धर्मके लिये सिद्धान्त है। यही और यही अकेला,अस्थिर और सर्वदाके लिये उस विवादकारी मानसिक धारणाको पराजित कर उसके स्वरूपको बदल सकता था, जिसके बिना विश्वास स्थिर नहीं रह सकता था। किसी दूसरी बातमें भी जीवनकी आध्यात्मिक दृष्टिकोणयुक्त धारणा—अथवा दूसरे शब्दोंमें, तर्कयुक्त विचार—इसके अन्तर्गत ही थे। अतएव किसी मतपर आक्रमण करना; राष्ट्रके साधारण नियमानुकूल सिद्धान्तोंके विरुद्ध संघर्ष छेड़ना है, और फिर जिस तरह राष्ट्र-विद्रोहके कारण पिछलेका अन्त होता है, उसी तरह अगला निराशाजनक धार्मिक शून्यतामें विनष्ट होजाता है।

जो हो, एक राजनीतिज्ञको किसी भी धर्मका मूल्य, उसकी बुराइयोंके सिलसिलेमें नहीं, किन्तु उसकी अच्छी बातोंसे समझना होगा। परन्तु ऐसा होनेके पूर्व ही, मूर्ख और अपराधी जो कुछ भी भी रहेगा उसे नष्ट कर देंगे।

युद्धकालीन जर्मनीके पूर्व जनताकी धर्मके प्रति अरुचि, क्रिश्चियन धर्मका दुरुपयोग करनेवाली क्रिश्चियन पार्टीके कारण हुई थी, उस पार्टीने कैथोलिकोंके प्रति अपना विश्वास दिखानेके लिये, धर्मको राजनीतिक दलसे सम्बन्धित कर दिया। यहां उस पार्टीनेमहान भूल की।

उस विनाशकारी भ्रमने पार्लियामेंटके कुछ अयोग्य सदस्योंको प्रोत्साहित किया, किन्तु उसका परिणाम चर्चके लिये हानिकारक ही हुआ।

इसके परिणामस्वरूप समस्त धार्मिक जीवन, विशेषकर ऐसे समयमें जब कि प्रत्येक चीज़ शिथिल हो परिवर्तित हो रही थी, निर्बल होगया दूसरी ओर सदाचार एवं आचरणके सिद्धान्त विनाश का भय दिखा रहे थे। इसका फल समस्त जातिको भोगना पड़ा।

हमारे जातीय भवनकी ये दरारें तथा छिद्र बिना किसी भयके सुधर सकते थे;यदि इनपर किसी तरहका बोझ न डाला जाता,किन्तु कुछ महान घटनाओंके स्पष्ट प्रभावके रूपमें परिवर्तित होनेकी कल्पना करते हुये, इनका किसी दुर्घटनाके रूपमें उपस्थित होना अनिवार्य था।

राजनीतिक विषयमें भी एक अवेक्षक इन बुराइयोंको देख सकता था, जो शीघ्र ही परिवतन एवं सुधारके अभावमें साम्राज्यकी बाह्य एवं गृह-नीतिके विनाशका संकेत कर रही थीं।

बहुतेरे ऐसे लोग थे, जिन्होंने इन संकेतोंको दुःखके साथ देखा और सुधारके अभावको निन्दा करते हुये साम्राज्यकी नीति पर अच्छी तरहसे विचार किया। वे इसकी भीतरी कमजोरी एवं खोखलेपनको भलीभांति जानते थे, परन्तु राजनीतिक जीवनके लिये वे केवल नवागन्तुक के समान थे। गवर्मेन्टके अधिकारवादने हस्टन स्टुअर्ट चेम्बरलेनकी सभी संस्थाओंकी उसी तरहसे उपेक्षा की,जिस तरह आज किया जाता है। ऐसे लोग अपने लिये कुछ सोचनेमें

महान मूर्ख होते हैं, परन्तु दूसरेकी बात सोचनेकी उन्हें बड़ी चिन्ता लगी रहती है।

विवेकहीन विचारोंमेंसे एक यह भी विचार है कि विद्रोहकालसे पार्लियामेंटरी-प्रणाली असफलताका एक कारण रही। इससे इस बात की कल्पना की जा सकती है कि विद्रोहके पहले इस प्रणालीका कुछ और ही रूप था। किन्तु वास्तवमें,इस संस्थाका प्रभाव नाशकारीही हो सकता है,एक समय था जबकि लोग इसकी चमक-दमककी ओर आकर्षित हुए थे,परन्तु शीघ्र ही उन्हें इसकी व्यर्थता प्रतीत हो गई। इतना होनेपर भी जर्मनी-पतनका इसे कारण नहीं कहा जा सकता।

किसी भी तरह एक व्यक्ति देख सकता है कि जो कुछ काम पार्लियामेंटके जिम्मे पड़ा, वही अधूरा रह गया।

साम्राज्यकी ऐक्य-सन्धि-नीति भी अपूर्ण और अयोग्यताकी परिचायक थी। यद्यपि अधिकारियोंने शान्ति बनाये रखनेकी चेष्टा की, तथापि वे युद्ध रोकनेमें असमर्थ रहे।

पोलिस नीति एक अधूरा यत्न था। उन्होंने प्रश्नपर गम्भीरता-पूर्वक विचार किये बिना ही पोलिस जनताको नाराज कर दिया इसका परिणाम न तो जर्मनीकी विजय हुई और न पोलिस जनता को शान्ति ही मिली, परन्तु रूससे दुश्मनी मोल ली गई।

ऐल्कस लौरेनके प्रश्नका समाधान भी निकम्मा और अधूरा था सिरपर चढ़े हुये फ्रेंच विषधरका निर्दयतापूर्वक सर्वदाके लिये अन्त करनेके बदले, उन्होंने कुछ भी नहीं किया। इतना ही नहीं, वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। देशके प्रमुख धोखेबाजोंने दलोंके रूपमें

अपना अड्डा जमा रक्खा था—उदाहरणार्थ, सेन्टर पार्टीके वेटरलेको देख लीजिये।

यहूदियोंने अपने मार्क्सवाद और प्रजातन्त्रवादी प्रेसों द्वारा समस्त संसारमें जर्मन-युद्धवादके विरुद्ध झूठा प्रचार किया और जर्मनीको हानि पहुंचानेका कोई भी उपाय बाकी न रक्खा। मार्क्सवादी और प्रजातन्त्रीय दलोंने जर्मनीकी राष्ट्रीय सेनाको पूर्ण करनेके लिये किसी भी प्रकारका व्यापक उद्योग करनेसे इन्कार कर दिया।

जर्मन-जातिके स्वातन्त्र्य संग्रामकी पराजयका कारण शान्ति-कालमें अपनी पितृभूमिकी रक्षाके लिये जनताके आह्वानकी बुज-दिली और निर्बलता है।

राजप्रणालीका एक यह खराब असर पड़ा कि लोगोंको बहकाया गया कि गवर्मेन्ट ही सर्वेसर्वा है और व्यक्तिमात्रको किसी भी बातकी चिन्ता कर दुःख उठानेकी जरूरत नहीं है। वास्तवमें जबतक गव-र्मेण्ट अच्छी थी, वा उसे समझा जाता था, सभी बातें सन्तोषप्रद वातावरणमें रहीं, किन्तु, आश्चर्य! कि एक प्राचीन गवर्मेन्टके स्थान पर एक नवीन और अविवेकी गवर्मेन्टकी स्थापना की गई! तब पूर्ण आज्ञाकारिता और बच्चों सा विश्वास जनताके हृदयमें कैसे रह सकता है, इसकी कल्पना सहजमें ही की जा सकती है।

परन्तु उपरोक्त एवं अन्य दूसरी कमजोरियोंके विरुद्ध असंदिग्ध मूल्यकी अनेकों बातें हैं।

सर्वप्रथम, राष्ट्रका नेतृत्व राष्ट्रके राजस्वरूपसे प्राप्त किया गया; लालची राजनीतिज्ञोंने जातिको व्यापारिक सौदोंसे कष्ट पहुंचाया;

और राजसत्ताकी मर्यादा नष्टकर प्राप्त अधिकारोंका दुरुपयोग किया; चापलूसोंको ऊंचे पद दिये गये एवं दलबन्दीके कारण सेनाको सिर चढ़ा लिया गया। फिर स्वयं सम्राट्ने अपने प्राप्त अधिकारोंकी उच्चता का दुरुपयोग किया, और उत्तरदायित्वका उदाहरण—जोकि पार्लियामेंटके बहुमत प्राप्त दलकी अपेक्षा सम्राटपर अधिक निर्भर था—जर्मन शासन-व्यवस्थाकी पवित्रता इन्हीं बातोंसे वर्णनीय थी।

सेनाने पितृभूमिकी महानताके लिये कुछ आदर्शों और आत्म-त्यागकी शिक्षा दी थी; किन्तु लालच एवं भौतिकवादने उसकी इस क्रियाशीलताके मार्गमें बाधा डाली। श्रेणियोंके विभाजनके विरुद्ध इसने सर्वदा ही राष्ट्रीय एकताकी शिक्षा दी है, और शायद इसके पतन का कारणही एकवर्षीय स्वेच्छासेवकदलका पृथकीकरण था। यह पतन का कारण क्यों हुआ? इसने पूर्ण समतुल्यताके सिद्धान्तको भंगकर अच्छे पढ़े लिखे लोगोंको साधारण सैन्य विभागसे अलग कर दिया, जबकि विपरीत फलदायक हो सकता था। उच्च श्रेणियोंका अपने ही लोगोंसे अलग होना और दिनोंदिन पारस्परिक विचित्रताका अनुभव करना, जिसे सेना, किसी न किसी रूपमें दूर कर सकती थी; तथा-कथित इन्टेलिजेन्जिया पत्रकी दृष्टिमें अच्छा था। ऐसा न होना ही अपराध था, परन्तु कौन सी संस्था इस पृथ्वीपर निरपराध है? किन्तु इसके विपरीत दूसरा पक्ष इतना बलशाली था कि उसने इन गल्तियोंसे लाभ उठाया।

एक समय वह भी था जबकि गणनाकालमें सेनाने अपना बहुमत स्थापित कर राष्ट्रकी महान सेवा की थी। यहूदी प्रजातन्त्रीय विचारके

विरुद्ध, बहुमतकी पूजा न कर सेना अपना व्यक्तिगत विश्वास रखती थी; क्योंकि इसने शिक्षा दी थी कि गतकालमें क्या २ बातें आवश्यक थीं। कोमलता और नपुंसकताके सागरसे निकल अपनी शक्तिपर अभिमान करनेवाले ३,५०,००० नवयुवक प्रतिवर्ष सेनामें भरती होते थे, और दो वर्षकी शिक्षाके उपरान्त उनकी युवावस्थाकी कोमलता गायब हो जाती थी और उनका शरीर फौलादके समान मजबूत हो जाता था। यह उन्हीं दो वर्षोंकी आज्ञाकारिताका परिणाम है कि एक युवक शासन करना सीख लेता था। अपनी बुद्धिसे ही प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित सिपाहीका अनुभव कर सकता था।

यह जर्मन-जातिका विद्यालय था, और किसी भी कारणसे किसी के हृदयमें ईर्ष्या और लालचवश यह धारणा न थी कि राष्ट्र अशक्त हो जाय और उसके नागरिक शस्त्रविहीन बने रहें।

प्राचीन साम्राज्यमें सेना और राष्ट्रके निर्माणमें अधिकारीवर्गकी अतुलनीय शक्ति लगी हुई थी।

संसारमें जर्मनीकी शासन-व्यवस्था और संगठन अद्वितीय माना जाता था। चाहे कोई जर्मन अधिकारियोंको नौकरशाहीका गुलाम ही क्यों न कहे, वे दूसरे राष्ट्रोंके अधिकारियोंकी अपेक्षा कहीं अच्छे थे। अन्य राष्ट्रोंके पास हथियारोंकी मजबूती और भूल न करनेवाले विचारवान सैनिक न थे। चरित्रहीन होते हुए, अयोग्य और अपढ़ रहनेकी अपेक्षा, जैसा कि आजकल देखनेमें आता है, ईमानदार एवं विश्वासी रहते हुये, अपनी कलापर अभिमान रखना बहुत ही अच्छा है।

जर्मन-अधिकारी और शासन-यन्त्र दोनों ही, विशेषतः व्यक्तिगत शासनोंमें युक्त थे। किसी भी तरहका अस्थायी विचार उनकी राजनीतिक स्थितिपर प्रभाव नहीं जमा सकता था। विद्रोहने इसे पूर्णतः परिवर्त्तित कर दिया। दल-बन्दियोंके विचारोंने योग्यता और विद्वताकी उपेक्षा की, और व्यक्तिगत गुणोंके स्थानपर सिफारिशोंका बोलबाला हो गया।

इन्हीं बातोंके कारण, राष्ट्रके स्वरूप, सेना और अधिकारीवर्गने प्राचीन साम्राज्यकी आश्चर्यपूर्ण शक्तिका प्रभाव नष्ट कर दिया।

ग्यारवां अध्याय।

जाति और वंश।

इतिहासमें ऐसे असंख्य उदाहरण हैं, जिनसे पता चलता है कि किस तरह आर्य-जातिका खून दूसरी नीच जातियोंसे मिल गया और उसका परिणाम संस्कृति-रक्षक वंशका अन्त हुआ। उत्तरी अमेरिका अधिकतर ऐसे जर्मनोंसे बसा हुआ है, जो नीचवर्ण की जातियोंसे बहुत कम हिले-मिले हैं, और जिनकी मानवता एवं सभ्यता, दक्षिणी अमेरिकाके लैटिन निवासियोंकी अपेक्षा, जिनका खून वहांके आदिम निवासियोंके साथ अच्छी तरह मिल गया है, श्रेष्ठ है। उपरोक्त उदाहरणोंको सामने रख हम वंशसम्बन्धी सम्मिश्रणके परिणामको भलीभांति सोच सकते हैं। अमेरिका महादेशमें जर्मन-वंशके लोगोंने, अपनेको पवित्र और अमिश्रित रखते हुए, उस महादेशपर अपना अधिकार जमा लिया है; और वे तबतक अपना अधिकार कायम रखनेमें सफल रहेंगे, जबतक उनका खून नीच जातियोंमें मिल, दोगलोंकी सृष्टि न करेगा।

जब कोई मनुष्य संसार पर विजय प्राप्त करता है और उसे विवशताके लिये बाध्यकर उसपर एकमात्र अपना ही अधिकार जमाता

है, ऐसी दशामें शान्तिपूर्वक दयाभाव बनाये रखनेका विचार ही सबसे अच्छा उपाय है। तब जो सिद्धान्त व्यवहारतः जनताके सामने रक्खा जायगा वह हानिकारक नहीं सिद्ध हो सकता। इसप्रकार, पहले संघर्ष और उसके उपरान्त शान्तिवादकी आवश्यकता पड़ती है। अन्यथा इसका अर्थ यही है कि मानवता उन्नतिकी उच्च सीमाको अतिक्रम करती हुई, सीमोल्लंघनके पथपर अग्रसर हो रही है, और नैतिक दृष्टिसे अत्याचार ही इसका अन्त नहीं है, किन्तु ऐसी दशामें जंगलीपन और गड़बड़ीका प्रादुर्भाव हुआ करता है। यह प्राकृतिक है कि कुछ लोग इस पर हंसेंगे, किन्तु यह भू लाखों वर्षोंसे मानवताके बिना ही संसारके आकाशमंडलमें मंडरा रहा है, और यह वैसा तभी कर सकता है जब मानवसमाज इस बातको भूल जाय कि उसका अस्तित्व पागलपनके विचारोंके कारण नहीं, युग-प्राचीन प्राकृतिक नियमोंके निर्दयी व्यवहारों तथा ईश्वरप्रदत्त बुद्धि-बलसे है।

सभी पदार्थ जिनका इस पृथ्वीपर हम सम्मान करते हैं—विज्ञान, कला, कलापूर्ण चातुरी एवं आविष्कार कुछ जातियोंकी उत्पादन-शक्तिके परिणाममात्र हैं, और मूलतः शायद एक ही वंशके। अपने अस्तित्वके लिये ही सभ्यताको इनपर निर्भर रहना पड़ता है। यदि इनका नाश हो जाय, तो पृथ्वीकी सभी सुन्दरता रसातलको चली जायेगी।

यदि हम मानव वंशको तीन श्रेणियोंमें विभाजित करें—संस्थापक, सुधारक और सभ्यताके विनाशक—तब आर्य ही प्रथम श्रेणीके माने जायेंगे।

संख्यामें कम होते हुए भी आर्यवंशोंने विदेशी जातियोंको पराजित कर दिया, और नीच श्रेणियोंके कुछ लोगोंके सहयोगसे, जो कि उनके अधीन थे,प्राप्त देशोंमें जीवनकी विशेष दशाओंके अनुसार उन्होंने उन्नति करना प्रारम्भ किया—उपजाऊपन, जलवायु इत्यादि, मानसिक तथा संगठनकारी गुणोंके सदुपयोगके कारण ही वे बेधड़क अग्रसर होरहे थे। कुछ शताब्दियोंमें ही उन्होंने विजित देशकी जनता एवं भूमिके अनुकूल सभ्यताका निर्माण कर डाला। जो हो, समयकी प्रगतिके साथ ही साथ, विजेताओंने खूनकी पवित्रता रखनेके सिद्धान्त (एक सिद्धान्त जिसके वे प्रारम्भमें अनुयायी थे) के विरुद्ध महान पाप किया तथा वे वहांके विजित, प्राचीन निवासियोंके साथ मिलने लगे और इसप्रकार उनका स्वतन्त्र अस्तित्व लुप्त होगया; क्योंकि किये हुए पापोंका फल सर्वदा ही मर्यादा-नाशक होता है।

सर्वदासे ही उच्च जातियां श्रेष्ठ ही मानी जाती हैं, चाहे बाहरी अवेक्षक इसे समझें अथवा नहीं। और कुछ नहीं केवल पूर्ण निपुणता ही ऐसे व्यक्तियोंको स्मरण रखनेके लिये विवश करती है, क्योंकि इस संसारमें बहुत आदमी ऐसे हैं जो अपनी प्रतिभाको समझनेमें असमर्थ हैं, किन्तु उसके बाह्य चिन्हेंको अविष्कारों, अनुसंधानों, भवनों, चित्रणों इत्यादिके रूपमें पहचाननेकी उनमें क्षमता रहती है। यहां तक कि उन्हे इसे समझनेमें बहुत समय लगता है। जिस तरह किसी व्यक्तिके जीवनमें कोई प्रतिभा अथवा अद्वितीय गुण किसी समस्याको व्यवहारिक उपायोंसे हल करनेके लिये विशेष प्रलोभनोंके प्रोत्साहनसे प्रयत्नशील होता है, उसी तरह जातियोंके जीवनमें महत्व

पूर्ण वास्तविक शक्तियोंका व्यवहार, जो उनमें कुछ विशेष परिस्थि-तियोंके कारण ही नहीं, बल्कि सर्वदा रहता है, जातीय अभ्युत्थानमें सहायक हुआ करता है। इसे हम एक ही वंशमें पाते हैं जो मानव सभ्यताके उन्नत जीवनका एकमात्र आधार था और आज भी है, वह है—"सभ्यताका पुजारी आर्यवंश"।

उच्च सभ्यताकी उन्नतिके लिये निम्न सभ्यताके अनुयायियोंका रहना अत्यन्त आवश्यक था, क्योंकि वे ही उस समयके लिये एक कलापूर्ण साधन थे, जिनके बिना उच्च सभ्यता समझके बाहरकी बात थी। निस्सन्देह इसके प्रारम्भमें मानव सभ्यता पाले हुए पशुओंकी अपेक्षा तुच्छ मानव पदार्थों पर भरोसा रखने लगी।

जब विजित वंशोंको गुलाम बना लिया गया, तब पशु-संसारको मनमाना आश्रय प्राप्त होगया; इसके विपरीत और कोई भी ऐसी बात न थी, जिसपर लोग विश्वास करना और अच्छा समझते। क्योंकि सर्वप्रथम गुलामों द्वारा ही हल जुतवाया जाता था, और उनके बाद घोड़े जोतते थे, और कोई नहीं किन्तु शान्तिके झूठे पुजारी, कुछ मूर्ख ही इस विषयको मानवनीचताका एक उदाहरण मान सकते हैं; और दूसरोंको स्पष्ट रूपमें देखना ही होगा कि इस उन्नतिका उस दशामें पहुंचना अनिवार्य था, जिसमें देवदूत संसारसे उस अज्ञान वातावरणको दूर भगाने योग्य हुए।

मानव उन्नति एक परम्परागत, अनन्त सीढ़ीके समान है; कोई भी मनुष्य नीचेसे ही ऊपर चढ़ सकता है, परन्तु एकाएक ऊपर नहीं पहुंच सकता। इसलिये आर्योंको अनुभव-पथका अनुसरण करना पड़ा,

उस पथका नहीं जिसको आधुनिक शान्त वातावरण देख रहा है।

किन्तु आर्यों का अनुसरणीय पथ बिल्कुल स्पष्ट था। एक विजेता की दृष्टिसे उन्होंने नीच आदमियोंको अपने अधीन कर लिया, और अपनी इच्छानुसार नियंत्रण रखते हुए,वे उनसे काम लेने लगे। यदि वे उनसे कोई लाभदायक काम लेते थे तो उस स्थानपर उसकी जीवन-रक्षा ही न कर, उन्होंने उन्हें अपने पूर्व अस्तित्वकी अपेक्षा एक सुन्दर अस्तित्व दे दिया था, जिसे दूसरे शब्दोंमें आज़ादी भी कहा जा सकता है। जबतक आर्य अपनेको शासककी तरह समझते रहे, उन्होंने अपना अधिकार ही कायम नहीं रक्खा, बल्कि सभ्यताकी उन्नति और संरक्षणमें अपना सर्वस्व लगा दिया। किन्तु जैसे ही जनता अपना उत्थान करने लगी और—कदाचित्—वह अपनी भाषा विजेताओंके समान करने लगी, और इसप्रकार स्वामी और भृत्यमें किसी भी तरहका अन्तर नहीं रह गया। आर्योंने अपने खूनकी पवित्रताकी पुनः घोषणा की,और अपने रहनेके लिये बनाये हुए इडेन पर अपना अधिकार बताया। वंशोंके बेतरह सम्मिश्रणको देख वे चिन्तामें डूब गये और उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा; उन्होंने सभ्यताके लिये अपनी योग्यता नष्ट कर दी, इसका कारण आदिम निवासियोंके साथ, अपने पूर्वजोंकी अपेक्षा, अधिक मिलना जुलना था, और कुछ समयके लिये वे सभ्यताका आनन्द लूट सकते थे, परन्तु उपेक्षाभाव दिखा उन्होंने भारी भूल की।

नयी सृष्टिके लिये किस तरह सभ्यता और साम्राज्योंका विनाश होता है, उसको पता इससे भलीभांति चल सकता है।

रक्तमिश्रण और वंशीय आधारका पतन ही बता सकता है कि क्यों प्राचीन सभ्यताओंका अन्त होता है। यह मानवसमाजका नाश करनेवाली युद्ध-पराजय नहीं है, किन्तु बाधक शक्तिका विनाश है, जो कि खूनकी पवित्रताके कारण ही सुरक्षित रह सकती है।

हमारी जर्मन-भाषामें एक वर्णनीय शब्द है—कर्त्तव्यपालनमें तत्परता ही (फ्लिचर-फुलन्ग) सर्वसाधारणके स्वार्थोंकी अनुपम सेवा है।

ऐसे भावोंके सारांशको हम आदर्शवाद कहते हैं, जो सोऽहंके गुणोंके विरुद्ध है; और इसीके द्वारा हम प्रत्येक व्यक्तिके आत्म-त्याग की क्षमता जान सकते हैं और समझ सकते हैं कि उसके हृदयमें अपनी जाति और अपने साथियोंके लिये कितना प्रेम है।

समय समय पर आदर्श गायब होते नजर आते हैं और उस समय हम अपनी उस शक्तिकी कमीका अनुभव करते हैं, जो जातिका तत्व है और सभ्यताके लिये अत्यन्त आवश्यक है। तब स्वार्थपरता की प्रधानता जम जाती है, और सुखकी लालसामें आज्ञापालनके बंधन खुल जाते हैं, और मनुष्य स्वर्गकी जगह नरकके अथाह कुंडमें गिर पड़ता है।

आर्योंके ठीक विपरीत यहूदी हैं। संसारकी किसी जातिकी अपेक्षा हमारी इस प्रियजनतामें आत्म-रक्षाका गुण बहुत ज्यादा है—लोग भले ही चूल्हे भाड़में पड़ें, परन्तु इन्हें अपनेसे ही काम रहता है। इसका सबसे अच्छा प्रमाण यह है कि आज भी यह वंश मौजूद है। यहूदियोंके अलावा, जिन्होंने गत दो हजार वर्षों में अपने आन्त-

रिक गुणोंमें नहींके समान परिवर्त्तन किया है और कौन सा ऐसा वंश है? कोनसा ऐसा वंश है, जिसमें इससे ज्यादा क्रान्तिकारो परिवर्त्तन हुये हैं;और जो अभी भी भयानक विपत्तियोंके पश्चात् माया-जालोंसे घिरा हुआ है ? इनके जीवनकी इच्छा और वातावरणकी अनुकूलता इन्हीं सब बातोंसे प्रगट है।

यहूदियोंके मानसिक गुणोंके परिवर्त्तनमें शताब्दियोंका समय लगा था। आज हम इन्हें धूर्त्त सोचते हैं,और वास्तवमें ये सर्वदा ही ऐसे थे और भविष्यमें भी इसी दशामें रहेंगे। इनकी मानसिक योग्यता इनकी व्यक्तिगत उन्नतिके कारण नहीं,विदेशियोंकी शिक्षाका फल है।

चूंकि प्रारम्भसेही यहूदियोंकी अपनी कोई सभ्यता नहीं रही है, इसलिये इनके मानसिक कार्य-कुशलताके आधार दूसरों द्वारा निर्धारित किये हुए हैं। प्रत्येक कालमें इनके विचारोंकी उन्नति समीपागत सभ्यताओंसे हुई है। इसके विपरीत कुछ भी नहीं।

यह एकदम गल्त है कि यहूदी बराबर ही अपने साथियोंसे लड़ते आये हैं अथवा उनको लूटते आये हैं—और इस प्रकार इससे यह परिणाम निकालना है कि इनमें भी आत्म-त्यागका आदर्श है।

इस बातमें यहूदियोंने किसी भी तरहका रुख नहीं अख्तियार किया, और इस प्रकार आत्म-रक्षाके सिद्धान्त पर अटल रहे, और यही कारण है कि यहूदी-राष्ट्र—जिसके विषयमें वंश-निर्माण और वृद्धि करनेवाले स्थायी जीवधारीकी कल्पना की जाती है—पूर्णतया सीमान्त प्रदेशोंसे मुक्त है। निश्चित सीमायुक्त राष्ट्रकी धारणा ही,

राष्ट्रोंके अन्तर्गत रहनेवाले वंशके महान आदर्शवादको द्योतक है,और साथही साथ इससे उस वंशके वास्तविक उद्देश्यका पता चल जाता है। जिस जनतामें इस धारणाका अभाव है,वह एक निश्चित सीमा-युक्त राष्ट्रके निर्माणका दावा नहीं कर सकती। इसलिये यहां कोई भी ऐसा आधार नहीं है,जिससे सभ्यताका निर्माण हो सके।

इसप्रकार, अपने प्रत्यक्ष मानसिक गुणोंसे यहूदी जातिकी कोई भी वास्तविक सभ्यता नहीं है—निस्सन्देह कोई भी विशेष सभ्यता नहीं है,जिसपर यहूदी दम्भ कर सकें। वर्त्तमान समयमें यहूदियोंकी जो सभ्यता नजर आती है,वह विशेषतः दूसरोंकी धन-दौलत है, जो आजकल इनके अधिकारमें रह दूषित हो रही है।

मूलतः कदाचित आर्य विदेशी थे, और तब, समयकी गतिके साथही साथ वे निवासी बन गये; यदि यह और कुछ नहीं है, तो यह प्रत्यक्ष प्रमाणित है कि वे किसी भी हालतमें यहूदी नहीं थे! नहीं, यहूदी विदेशी नहीं है, क्योंकि विदेशियोंका कार्यक्रम भी निश्चित था, उनका उन्नति-पथ आधारयुक्त था, जिसकी वे सभी आवश्यक मानसिक योग्यताओंके साथ सेवा करते थे। उनमें आदर्शवादी बनने की शक्ति थी, यदि वे किसी क्षीण अवस्थामें भी होते, और इसलिये जीवनकी धारणा विमुख होती, किन्तु असहानभूतिकारक नहीं, तथापि वे अपने आदर्श-बलसे अपनी रक्षा करनेमें समर्थ थे। जो जो यहूदियोंमें यह धारणा न थी, वे कभी भी विदेशी नहीं थे, किन्तु दूसरी जातियोंके पिछलगू अवश्य थे। सभी अवसरों पर इनके जीवन-वातावरणमें जो परिवर्त्तन होता आया है, वह इनकी इच्छा

पर नहीं निर्भर था, किन्तु यह उन जातियोंकी उदारताका परिणाम था, जिनकी दया दृष्टिका इन्होंने सर्वदा ही दुरुपयोग किया है। दूसरे पिछलगुओंको अपेक्षा संसारमें इनका उत्पत्ति-विषयिक वाता वरण अनोखा हो है! ये सर्वदा ही अपनी वंश वृद्धिके लिये नये-नये सुनहले मौके खोजते रहते हैं।

दूसरो जातियोंके साथ इनका जीवन तभी मिल सकता है, यदि इन्हें यह बतानेका, कि इनका जीवन वंशीय विषयोंसे सम्बन्धित नहीं धार्मिक सूत्रसे आवद्ध है, अवसर मिलता है, मानों यह बात उनके लिये स्वयं ही अद्भुत थी। यही सर्वप्रथम सफेद झूठ था।

जातियोंके पिछलग्गू बने रहनेके लिये यहूदियोंको अपनी आन्त-रिक प्रकृतिको अस्वीकार करना ही पड़ेगा। जितना ज्यादा यहूदी अपनी बुद्धिमत्ता प्रदर्शित करते हैं, उतना ही अधिक वे आत्म-कपट कर, प्रकृतिके विरुद्ध महान अपराध करते हैं। एक विभिन्न धर्मके अनुयायी होते हुए भी वे इस बातका विश्वास दिलानेकी चेष्टा करते हैं कि, वे इटालियन; फ्रेंच, अंग्रेज अथवा जर्मन हैं।

वर्तमान महान आर्थिक उन्नति जातिके सामाजिक वातावरणमें परिवर्तन उपस्थित कर रही है। छोटे और स्थायी उद्योग क्रमशः नष्ट हो रहे हैं. और परिणामस्वरूप श्रमिकोंके लिये यह असम्भव हो रहा है कि वे अपना अस्तित्व और अपनी आर्थिक स्थिति दृढ़ रख सकें, इस प्रकार उन्हें एक सामान्य श्रेणीमें रहनेके लिये बाध्य किया जा रहा है। इसका परिणाम लोगोंको धनिकोंके कारखानोंका गुलाम बनना है, और इस प्रकार श्रमिकोंको मानवजीवनके सुख-

वैभवसे वंचित करना है। वास्तवमें इसका अर्थ उनके अधिकारोंको छीनना है; ताकि वृद्धावस्थामें तकलीफ भोगते हुये ही उनका सोनेका जीवन अकाल-कालकवलित हो मिट्टीमें मिल जाय।

हालहीमें एक ऐसा समय आया था जबकि ऐसी ही परिस्थिति उत्पन्न हुई थी, और उसको सुलझानेके लिये कोई तरीका खोजा जारहा था, शीघ्र ही तरीका खोज निकाला गया। राष्ट्रके सरकारी एवं साधारण कर्मचारी ही तबदीलीके बाद किसानों एवं शिल्पकारोंके रूपमें बदल गये थे। वस्तुतः वे भी अधिकारोंसे वंचित थे। राष्ट्रने उस दूषित वातावरणको शुद्ध करनेका उपाय खोज निकाला, उसने राष्ट्रके उन कर्मचारियोंकी भलाईकी ओर ध्यान दिया, जो स्वयं अपनी वृद्धावस्था सुखपूर्वक नहीं बिता सकते थे, और तबदीलीके समय उसकी पेन्सन स्थिर कर दी गई। इस प्रकार अधिकारवंचित समस्त श्रेणीको सामाजिक दुःखोंसे मुक्त कर उसे जातिके एक अंग रूपमें स्वीकार कर लिया गया।

गतवर्षोंमें राष्ट्रको इन्हीं प्रश्नोंका बृहद् रूपमें सामना करना पड़ा। लाखोंकी तादादमें नयी जनता, नये उद्योग-धन्धेको चलानेके लिये, गावोंको निर्जन करती हुई शहरमें बसने लगी। ऐसा करनेके लिये वह विवश थी, क्योंकि उसे अपनी जीविका अर्जनका एकमात्र वही सहारा प्रतीत हुआ।

इस प्रकार एक नयी श्रेणी वास्तवमें एक स्थिति तक पहुंच गई, जिसपर बहुत कम ही ध्यान दिया गया है; और एक दिन आयेगा जब यह पूछा जायेगा कि आया समस्त जाति इस नयी श्रेणीको

साधारण जनतामें सम्मिलित करनेवाले अपने इस उद्योगसे अपने आपको शक्तिशाली बनायेगी, अथवा श्रेणी-श्रेणीका अन्तर एक दरारके रूपमें उपस्थित होगा।

जब मध्यश्रेणी इस महान कठिन प्रश्नकी उपेक्षा कर,अपना मन-माना काम कर रही है, उस समय यहूदी भविष्यकी कुछ असीम सम्भवनाओंका ध्यान करनेमें लगे हुए हैं। एक ओर तो वे अपने धनके जोरसे मानवताको नष्ट करनेको तुले हुए हैं और दूसरी ओर लोगोंको अपने त्यागका प्रलोभन दिखा, अपने विरुद्ध छिड़े हुए संग्रामके नेता बननेको ताकमें हैं। "अपने विरुद्ध", निस्सन्देह एक भावमय वाक्यरीति है, क्योंकि ये झूठोंके राजा भलीभांति जानते हैं कि किस तरह अपना दोष दूसरोंके सिरपर मढ़ा जाता है। जबसे इन्होंने जनताका नेतृत्व करनेका निश्चय किया है,तबसे ये और भी धोखेबाज सिद्ध हो रहे हैं।

यहूदियोंकी कार्य-प्रणाली इस प्रकार शुरू होती है:—

ये अपनेको कार्य्यकर्त्ता बताते हैं, लोगोंके भाग्यपर दयाभावका बहाना करते हैं अथवा उनके दुःख और दरिद्रता पर घृणायुक्त क्रोध प्रगट करते हैं, जिससे लोगोंपर इनका विश्वास जम जाय। जन-साधारणके जीवनकी कठिनाइयोंका वास्तविक अथवा कल्पित अध्य-यन करनेमें इन्हें बड़ी असुविधा होती है, और अस्तित्व-परिवर्त्तन की भावना तो इनके दिलमें कभी आती ही नहीं। अपनी अकथित चातुरीसे ये सामाजिक न्यायकी आवाज बुलन्द करते हैं, जो कि आर्य्यवंशके बच्चे-बच्चेके हृदयमें सुप्तावस्थामें अभी भी उपस्थित है,

और इस प्रकार सामाजिक कुरीतियोंको दूर करनेके लिये सार्व-देशिक सांसारिक नियमोंके अनुसार संघर्षमें प्रवृत होनेका मिथ्या प्रदर्शन करते हैं। यहां इनका एक छिपा उद्देश्य है—मार्क्सवादके सिद्धान्तोंको स्थापना करना।

रहस्यपूर्ण रीतिसे इसे जनताकी उचित मांगोंके साथ मिलाते हुए, ये इस सिद्धान्तकी जनप्रियता दृढ़ करना चाहते हैं, जब कि दूसरी ओर ये जनताको उन मांगोंसे अनिच्छुक बननेके लिये प्रेरित करते हैं, जोकि इस रूपमें उपस्थित की गई हैं कि उनका प्रारम्भ ही भूल भरा प्रतीत होता है। इनना ही नहीं. उनको समझना असम्भव है। क्योंकि सामाजिक विचारोंके पीछे एक निन्दनीय घृणित आकांक्षा छिपी हुई है, और उन सभी बातोंका खुलासा निर्भीकता एवं सरलतापूर्वक होते हुए भी मूर्खता भरा प्रयास था। श्रेणीके विचारसे व्यक्तित्वके प्रभावको अस्वीकार कर, जाति और वंशीय महत्वको न मान, यह मानव सभ्यताके प्रारम्भिक सिद्धान्तोंका विनाश करता है, जिनपर सभी बातें निर्भर है।

यहूदी अपने सांसारिक शिक्षा-गठनको विभाजित करते हैं; जो प्रत्यक्षतः पृथक होते हुए भी मूल तत्वसे किसी भी हालतमें पृथक नहीं रह सकता, अर्थात सब कुछ होनेपर भी उसका लगाव राजनीतिक और श्रमिक आन्दोलनोंसे अवश्य रहता है।

श्रमिक आन्दोलन कुछ विशेष महत्वपूर्ण नहीं है। अपने दुर्द्धर्ष अस्तित्व संग्रामसे यह श्रमिकोंको सहायता प्रदान करता है और हर तरहसे उनकी रक्षा करता है, इसके लिये श्रमिकोंके लोभ अथवा

कम अच्छी, और साथही साथ अच्छी तरहसे मोर्चा लेनेवाली शक्ति को धन्यवाद देना उचित होगा। यदि श्रमिक अपने अधिकारोंकी रक्षा करनेवाले व्यक्तियोंपर अन्धविश्वास रखनेमें हिचकिचाते हैं, और बुजदिल हो, अपने उत्तरदायित्वको समझनेमें भूल करते हैं; विशेषकर ऐसे समयमें जबकि राष्ट्र—जनताका संगठित रूप—उनपर व्यवहारतः किसी भी तरहका ध्यान नहीं दे रहा है तो उन्हें अपने स्वार्थों की रक्षा स्वयंमेव करनी होगी। इस स्थानपर तथाकथित "नेशनल बौर्जिओइस पार्टी," धनके मदमें चूर; अपने अस्तित्वके लिये छिड़ी हुई श्रमिकोंकी इस लड़ाईमें हर तरहका बाधा पहुंचानेकी चेष्टा करती है;और वह केवल इसका विरोध ही नहीं करती;किन्तु तत्परतःपूर्वक उन सभी प्रयत्नोंके विरुद्ध चेष्टा कर रही है, जो श्रमके अमानुषिक समयको कम कराने, बच्चोंसे मेहनत लेने,स्त्रियोंकी रक्षा करने, और कारखानोंमें स्वस्थ वातावरण रखने एवं हवादार मकान बनानेके लिये महान आन्दोलन उपस्थित करनेमें सहायक हो रहे हैं। विचारिये कि अब यहूदियों और कुत्तोंमें क्या अन्तर रह गया है? ये बदमाश ट्रेड यूनियन आन्दोलनके नेतृत्वको क्रमशः ग्रहण करनेमें लगे हुए हैं। इनकी एकमात्र यही इच्छा है कि लोग अन्धविश्वासी बन, इनके स्वार्थोंकी पूर्तिके लिये इनके इशारोंपर चल, अपने देशकी आर्थिक स्वतन्त्रताका नाश कर लें।

यहूदी इस क्षेत्रसे अपने प्रतिद्वन्द्वियोंको भगानेके लिये वाध्य करते हैं। अपनी स्वाभाविक लोभपूर्ण पशुता से ये ट्रेड यूनियन आन्दोलन को पशु-शक्तिके पावोंपर गिरनेके लिये वाध्य करते हैं। यदि कोई

बुद्धिमान व्यक्ति यहूदी-लोभके चंगुलमें नहीं फंसता है; तो उसका नाना प्रकारके भयसे दिल तोड़ दिया जाता है, चाहे वह कितना ही सावधान क्यों न हो। इसमें इन्हें अच्छी सफलता मिली।

ये ट्रेड यूनियनके जरिये, जोकि जातिकी रक्षा कर सकती थी, राष्ट्रके आर्थिक आधारको नष्ट करते हैं।

राजनीतिक संगठन पूर्वगन्तुक समतुल्य रेखाओं पर अग्रसर होता है। इसका ट्रेड यूनियन आन्दोलनमें भाग लेना ही अपने संगठनके यन्त्रका परिचालन होना है। यह सभी राजनीतिक कार्यों को अपनी ओर आकर्षित कर राष्ट्र और जातिकी हित-चिन्ता करना है। इतना ही नहीं; यह धनका एक जरिया है, जिससे राजनीतिक संगठनके यन्त्रका परिचालन होता है। यह सभी राजनीतिक कार्योंको अपने वशमें रखनेके लिये घोड़ेकी चाबुककी भांति काम देता है। परन्तु अन्तमें इसे अपने आर्थिक स्वभावको अपने राजनीतिक अस्त्र —“हड़ताल” के लिये त्यागना पड़ता है।

प्रेसको सुविधा प्राप्त कर लेनेसे राजनीतिक और श्रमिक संगठन दोनों ही, कम पढ़े-लिखे लोगोंपर भी, जो जातिके लिये अपना सर्वस्व न्योछावर कर देते हैं; अपना प्रभाव जमा सकते हैं। इसका फल संगठन-शक्तिको दृढ़ता होती है।

यह एक यहूदी प्रेसही है जो अपनी शैतानियतभरे निन्दा-आक्रमणसे, उन सभी विषयोंपर कीचड़ उछालता है जोकि किसी जातिकी स्वतन्त्रता; सभ्यता एवं आर्थिक स्वराज्यके स्तम्भ स्वरूप हैं। यह विशेषतः उन विषयोंके विरुद्ध चलता है जो यहूदी दमन-नीतिकी

कुछ भी परवाह न कर अपना काम करते हैं अथवा जिनसे यहूदियों को भय प्रतीत होता है।

यहूदियोंके वास्तविक स्वभावके प्रति जनताकी अज्ञानता और उच्च श्रेणियोंमें स्वाभाविक अनुभवका अभाव, दोनों हो, यहूदियोंके मिथ्या आक्रमणोंको सफल बनानेमें सहायक होते हैं।

उच्च श्रेणियोंकी स्वाभाविक कायरताके कारणही यहूदियोंके झूठ और निन्दा-आक्रमणोंपर लोगोंको विश्वास करनेका मौका मिला। इसके लिये जनताको दोषी ठहराना उचित नहीं, क्योंकि उसके स्वभावमें सर्वदा ही सीधापन पाया जाता है। राष्ट्रके अधिकारी या तो यहां अपने कर्त्तव्यको भूल जाते हैं अथवा उनका मुंह बन्द करा दिया जाता है, और यहूदी आक्रमणोंका अन्त करनेके बजाय उन निर्दोषोंको दण्ड देते हैं, जिनपर अन्यायतः आक्रमण किया जाता है, और फिर राष्ट्रके आफिसोंमें बैठे बदमाश इस कार्यको उचित बताते हुए, शान्ति और व्यवस्थाकी दुहाई देते है।

इसप्रकार, यदि हम जर्मन-विनाशके सभी कारणोंका पुनरवलोकन करें, तो हमें अन्तमें स्पष्ट रूपसे मालूम हो जायेगा कि वंशीय समस्या और यहूदी बन्दर-घुड़कीकी नासमझीका ही यह परिणाम है।

अगस्त, १९१९ ई० की युद्धक्षेत्रकी पराजयोंका कुछ और भिन्न ही रूप दिखाई दे सकता था, परन्तु हमारी भूलोंका प्रायश्चित होना अनिवार्य था। उनके कारण हमारे साम्राज्यको हानि नहीं पहुंची। किन्तु इसका कारण उन शक्तियोंकी प्रबलता थी, जिनका निर्माण हमें पराजित करनेके लिये किया गया था। हमारे उन सभी राज-

नीतिक एवं नैतिक गुणोंका अपहरण कर लिया गया, जिनका नाश करनेके लिये धोखेबाजोंका दल गत कई वर्षों से प्रयत्नशील था, और यही ऐसे गुण हैं जो जातियोंको अपना अस्तित्व बनाये रखने योग्य बना सकते हैं। हमारी स्वतन्त्रताके वंशीयआधार-स्थित प्रश्नकी उपेक्षा कर, प्राचीन साम्राज्यने उस नियमका अनादर किया जो इस पृथ्वी पर हमारे जीवनको सम्भव बना सकता है।

वंशीय पवित्रताका अभाव सर्वदाके लिये एक वंशकी भाग्यश्रीका नाश कर देता है; जिस वंशसे वह पवित्रता चली जाती है, उस वंशका धीरे धीरे विनाश हो जाता है। फलस्वरूप वंशधरोंकी निर्बलताके कारण वंश-स्मृति भी संसारमें लुप्त हो जाती है।

इसप्रकार, सुधारके सभी प्रयत्न, सहायताके लिये सभी सामाजिक कार्य्य, आर्थिक उन्नतिकी चेष्टा, और विज्ञानशास्त्रकी उन्नत कामना, सभी कुछ व्यर्थ प्रमाणित हुआ। इन्हीं सब बातोंपर राष्ट्र और संगठनकी सम्भवता इस पृथ्वी पर स्थिर है, परन्तु उन परिस्थितियोंके कारण उन्नतिके स्थानपर अवनति ही हुई। आन्तरिक निर्बलताके कारण साम्राज्यका प्रताप नष्ट हो गया, और रीचकी शक्ति बढ़ानेके सभी प्रयत्न व्यर्थ हुए,क्योंकि तत्कालीन लाभदायक प्रश्नोंकी उनमें उपेक्षा की गई थी।

यही कारण था कि, अगस्त, १९१४ ई० में एक जाति इच्छापूर्ण न होते हुए भी युद्धमें प्रवृत्त हुई; यह मार्क्सवाद और शान्तिवादके विरुद्ध आत्मरक्षाका एक राष्ट्रीय संग्राम था। परन्तु उन दिनों

किसीने भी उस घरेलू शत्रुकी ओर ध्यान नहीं दिया, जो टट्टीकी ओटमें शिकार करना चाहता था। इस प्रकार सभी बाधा व्यर्थ हुई, और भाग्यने जर्मन-जातिको विजयश्रीसे विभूषित न कर जर्मनोंसे अनन्त प्रतिफल लिया। आह! कैसी भाग्य-विडम्बना! कैसा भीषण प्रतिफल!

बारहवां अध्याय।

नेशनल सोशलिष्ट जर्मन वर्कर्स पार्टीके

अभ्युत्थानका प्रथमकाल।

यदि इस खण्डके अन्तमें मैं अपने उन्नत आन्दोलनका कुछ विवरण दूं, और सक्षेपमें उन घटनाओंका उल्लेख करूं जो मुझसे संबंधित हैं, तो मेरी यह इच्छा नहीं है कि साथ ही साथ आन्दोलनके मानसिक उद्देश्योंकी व्याख्या भी की जाय। इसके कार्य्य और उद्देश्य इतने भयंकर हैं कि समूचे खण्डकी अपेक्षा पाठकोंको इसमें तल्लीन होना ही पड़ेगा। अतः मैं आन्दोलनके कार्यक्रमके विषय में ही कहूंगा, और अपने भरसक इस बातको समझानेका प्रयत्न करूंगा कि "राष्ट्र" शब्दका वास्तविक अर्थ क्या है। "हम" शब्द द्वारा मेरा प्रयोजन उन्हीं सैकड़ों हजारों व्यक्तियोंसे है जो इस व्यक्ति-स्वाधीनता आन्दोलनके लिये अत्यन्त इच्छुक थे, किन्तु मेरे पास कोई ऐसा शब्द नहीं है जिससे मैं उनकी घबड़ाहट भलीभांति प्रकाशित कर सकूं। उनके सुधारोंकी सबसे बड़ी विचारणीय बात यह है कि प्रारम्भ से ही उनका एक ही नेता रहा और लाखों मनुष्योंने उसे सहयोग

दिया। उनका उद्देश्य प्रायः वही है जो कि हजारों शताब्दियोंसे मान्य होता आया है; नेता ही इस सार्वदेशिक आकांक्षाकी घोषणा करता है और इन प्राचीन विचारोंको नये सांचोंमें ढाल, जनताके साथ विजय-पथकी ओर अग्रसर होता है।

लाखोंके हृदयोंका महान असन्तोष इस बातको प्रमाणित करता है कि लोग अपनी परिस्थितियोंमें ऐसा परिवर्त्तन चाहते थे, जैसा कि आज है। अनेकों जिन्हें चुनावकी बिमारी लगी हुई है, और जो दल की शैतानियतका अन्त देखना चाहते हैं, उस बातके साक्षी हैं। इन्हीं कारणोंसे इस तरुण आन्दोलनका प्रारम्भ होना चाहिये।

आत्म-रक्षाके लिये अपनी राष्ट्रीय इच्छाकी पूर्ति, हमारी जातिकी राजनीतिक शक्तिके प्रश्नपर स्थित है, क्योंकि अनुभवसे पता चलता है कि परराष्ट्र-नीतिका निर्माण और किसी राष्ट्रके प्रभावकी स्थिरता स्थायी युद्ध-सामग्रियोंकी अपेक्षा जातिकी बाधा शक्तियों पर अधिक निर्भर है। उदाहरणार्थ, कोई भी सन्धि आदमियों द्वारा ही हो सकती है, शस्त्रों द्वारा नहीं। इसप्रकार, संसारमें ब्रिटिश-जातिकी मित्रता तबतक सर्वाधिक मूल्यवान मानी जायेगी, जबतक संसार युद्ध-निर्दयता एवं दृढ़ताके लिये ब्रिटिश जनताके नेतृत्व तथा भावोंका, जिनके द्वारा अन्तमें विजय ही होती है, ध्यान रक्खेगा, इससे यह स्पष्ट प्रमाणित है कि ब्रिटेनको अन्य दूसरे राष्ट्रोंकी भांति विशेष सेना रखनेकी आवश्यकता नहीं है।

जर्मन राष्ट्रमें आत्म-शासनके पुनर्स्थापनके लिये प्रयत्नशील, इस तरुण आन्दोलनको जनताकी सहानुभूति प्राप्त करनेके लिये अपनी

समस्त शक्ति लगानी ही होगी, ताकि दूषित वातावरणमें समुचित सुधार किया जा सके।

हमारी तथाकथित "नेशनल बौरजिओइस पार्टी" इतनी निराशा जनक है, उसमें राष्ट्रीय भावनाओंका इतना अभाव है कि, उसके द्वारा घर या बाहर सर्वत्र ही, हमारी दृढ़ राष्ट्रीय शक्तिका भयंकर विरोध किया जाना, शीघ्र ही किसी न किसी रूपमें अवश्यम्भावी है। इन्हीं मूर्खताभरे कारणोंसे, जर्मन मध्यश्रेणीने बिस्मार्कके सुधारोंका विरोध किया था, अतः ऐसी दशामें, उनकी स्वाभाविक कायरताको देखते हुये, हमें किसी भी विरोधका भय करनेकी कोई भी आवश्यकता नहीं है।

किन्तु, अन्तरराष्ट्रीय सहानुभूतियोंसे युक्त हमारी हमवतन जनता की दृष्टिमें इसका कुछ भिन्न ही रूप है। प्राचीन प्रकृतिका हिंसा-विचारोंको ओर अधिक झुकाव नहीं है, परन्तु हमारे यहूदी नेता ही अत्यन्त निर्दयी और पाशविक भावोंके अनन्य भक्त हैं।

इन बातोंको देखते हुये यह निश्चित है कि राष्ट्रीय प्रवंचनाके समर्थक, विभिन्न दलोंके ये नेता, आत्म-रक्षाके लिये प्रारम्भ प्रत्येक आन्दोलनका तीव्र विरोध करेंगे। ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे यह समझ के बाहरकी बात है कि जर्मन-जाति गत राष्ट्रीय दुर्घटनाके उत्पादकों से भीषण संघर्षके बिना ही अपनी पूर्वोन्नत दशामें पहुंच सकेगी। भविष्यके न्यायालयके समक्ष, नवम्बर १९१८ ई० का अविस्मरणीय काल अपनी उन्नतिके लिये नहीं, किन्तु जाति द्रोहियोंको उनकी करनीका समुचित दण्ड दिलानेके लिये उपस्थित होगा।

इसप्रकार, हमारी जनताके हृदयमें दृढ़ भावोंको स्थापना किये बिना जर्मन-स्वतन्त्रताविषयिक कोई भी बात करना असम्भव था।

१९१९ ई० में यह हमें स्पष्टतः विदित था कि इस नये आन्दोलनका एकमात्र उद्देश्य स्वातन्त्र्य भावनाओंको जनताके हृदयमें जागृत करना है। व्यूह-रचनाके दृष्टिकोणसे अनेकों आवश्यकतायें इससे निकलती हैं।

(१) जनताको राष्ट्रीय आन्दोलनकी ओर आकर्षित करनेके लिये कोई विशेष त्यागकी आवश्यकता नहीं। एक आन्दोलन, जिसका उद्देश्य जर्मन जातिके लिये जर्मन कार्यकर्त्ताओंको प्रस्तुत करना है, इस बातका भलीभांति समझ सकता है कि उसके लिये आर्थिक त्याग कोई लाभदायक बात नहीं परन्तु ऐसा उसी दशामें सम्भव है यदि उसके द्वारा जातिके आर्थिक जीवननिर्माण एवं स्वतन्त्रताको किसी प्रकार का भय न दिखाया जाय।

(२) कर्मसम्बन्धी दृष्टिकोणसे जनताका राष्ट्रीकरण अधूरे उपायों अथवा स्वार्थयुक्त उद्देश्योंसे नहीं हो सकता, किन्तु दृढ़ और हठी उपायोंसे ही ऐसा होना सम्भव है। साधारण जनता शिक्षकों और उपाधिधारियोंसे नहीं भरी होती। जो मनुष्य उनकी सहानुभूति एवं समर्थन चाहता है, उसे उसके हृदयकी चाभी को जानना ही पड़ेगा। इसे निर्बलता नहीं, दृढ़ इच्छा एवं शक्ति कहा जाय।

(३) जनताकी आत्माको हम तभी जीत सकते हैं जब हम अपने उद्देश्योंके लिये राजनीतिक संघर्ष करें और विरोधियों का समूल नाश कर दें।

(४) जातिकी किसी श्रेणीको, जिसका एक पृथक विभाग है, राष्ट्रका एक अङ्ग मानना, उच्च जातिओंका पतन करना नहीं, किन्तु नीच जातियोंका उत्थान करना है। इस तरीकेसे उस श्रेणीकी उन्नति नहीं हो सकती बल्कि बराबरीके लिये लड़ना ही उसके लिये लाभदायक है वर्तमानकालकी मध्यश्रेणी किसी उच्च राजकर्मचारीकी सहायतासे राष्ट्रमें सम्मिलित नहीं की गई थी, किन्तु यह उसके नेतृत्व और कार्यकुशलताका फल था।

किसी कार्यकर्त्ता तक पहुंचनेमें उसको, एक श्रेणीके ख्यालसे, स्वार्थ-ईर्ष्या बाधक नहीं, किन्तु अन्तरराष्ट्रीय नेताओंका रुख जो कि हमारी जाति और पितृभूमि दोनोंके लिये भयंकर है, हमारे मार्गमें रुकावट डालता है। यदि ट्रेड यूनियन संस्थायें, यदि स्वतन्त्रता और राजनीतिसम्बन्धी विषयोंमें दृढ़ राष्ट्रीयभावोंसे युक्त होतीं, तो लाखों व्यक्ति जातिके लिये मूल्यवान कार्य्यकर्त्ता प्रमाणित हो सकते थे, और इसका परिणाम यह होता कि हम इधर-उधरके आर्थिक विषयोंमें न भटकते और आजदिन कोई दूसरा ही दृश्य उपस्थित होता।

कोई भी आन्दोलन, जो जर्मन कार्य्यकर्त्ताओंको जनसेवामें लगाता और अन्तरराष्ट्रीयताके पागलपनसे उनकी रक्षा करता, साधारण स्वातन्त्र्य विचारोंमें बाधक उस मतके एकदम विरुद्ध होता, जिसके ध्यानमें असहाय श्रमिकवर्गपर मालिकोंका मनमाना अत्याचार उचित था।

सर्वसाधारणकी भलाई न सोच और जातिकी आर्थिक सम्पत्तिका ध्यान न रखकर ही कार्यकर्त्ता साधारण स्वातन्त्र्य विचारोंके

विरुद्ध महान पाप कर बैठते हैं। अपनी जनविश्वास-शक्तिसे वे उसी तरह अनुचित लाभ उठाना चाहते हैं जिस तरह एक मालिक जाति की कार्य्य-शक्तिका, विनाशकारक अमानुषिक उपायोंसे दुरुपयोग करता है और लाखोंके पसीनोंसे अनुचित लाभ उठाना चाहता है। इसलिये, हमारे इस नये आन्दोलनके लिये सर्वप्रथम सच्चे कार्य्य-कर्त्ताओंके एक गुट्टकी आवश्यकता पड़ेगी। हमारा कर्त्तव्य होगा कि सर्वप्रथम हम उनको अन्तरराष्ट्रीय मूर्खता-जालसे छुड़ावें, सामाजिक दरिद्रतासे उन्हें मुक्त करें, और उन्हें जातिकी परिस्थितिसे अवगत करा, एक ऐसा सुधारक बना दें जिसका हृदय दृढ़, मूल्यवान और राष्ट्रीय भावनाओं एवं आकांक्षाओंसे भरा हो।

वास्तवमें, हमारा उद्देश्य अपने राष्ट्रीय व्यूहमें बाधकोंकी सृष्टि करना नहीं, किन्तु अपने कारणोंसे राष्ट्रीयता-विरोधी वातावरणको सर्वदाके लिये नष्ट करना है। समस्त आन्दोलनके चातुरीपूर्ण पथ-प्रदर्शनके लिये यह सिद्धान्त अत्यन्त लाभदायक है।

यह स्थायी है, और इसलिये स्पष्ट भी है कि प्रचार द्वारा आन्दोलनके ध्येयसे सर्वसाधारणको परिचित करा दिया जाय, क्योंकि प्रचार-शैलीकी दृष्टिमें अपना प्रभाव जमानेका यही एकमात्र उपाय है।

रूप और विषय दोनोंमें ही प्रचार इस तरहका होना चाहिये जिससे साधारण जनता तक उसकी आवाज पहुंच सके, व्यवहारमें सफलता ही इसकी शुद्धताका एकमात्र परिचय है। साधारण जनताकी एक सभामें उसे एक अच्छा वक्ता नहीं माना जा सकता जो श्रोताओं को शिक्षित श्रेणीका समझ, अपनी विद्वताका परिचय देना प्रारम्भ

करता है; किन्तु उस वक्ताकी प्रशंसाकी जा सकती है, जो सबको अशिक्षित समझता हुआ, अपने भावयुक्त सीधेसादे भाषणसे लोगों पर अपना प्रभाव जमा लेता है।

राजनीतिक सुधारके लिये किसी आन्दोलनका उद्देश्य मनमानी चरजानी करने अथवा अन्य दूसरी शक्तियोंपर प्रभाव जमानेसे प्राप्त नहीं हो सकता, किन्तु राजनीतिक शक्तियोंपर अधिकार जमानेसे उसकी सफलता निश्चित हो जाती है।

परन्तु यदि विद्रोही शासनपर अधिकार प्राप्त कर लेते हैं, तो उस विद्रोहको किसी भी हालतमें सफल नहीं माना जा सकता। हां ऐसा तभी हो सकता है, जबकि उस विद्रोही कार्यकी आकांक्षायें एवं उद्देश्य जनताके लिये उपभुक्त शासन-प्रणालीसे अधिक उपयोगी हों; १९१९ ई०के शरदकालीन लुटेरेपनको देखते हुए, कमसे कम जर्मन-विद्रोहके विषयमें ऐसा नहीं कहा जा सकता।

यदि राजनीतिक शक्तिकी प्राप्ति ही व्यवहारतः सुधारोंको कार्यान्वित करनेका प्राथमिक उपाय है, तब एक सुधारप्रिय आन्दोलनको, अपनी स्थापनाके प्रथम दिनसे ही अपनेको जनताका आन्दोलन समझना होगा, एक शिक्षित चाय-मंडल (टी-क्लब) अथवा खिलाड़ियोंकी एक जमात नहीं।

हमारा यह तरुण आन्दोलन, अपने विचारों एवं संगठन दोनोंसे ही, पार्लियामेंट विरोधी है, यह बहुमत सिद्धान्तके विचारके प्रतिकूल है, और इस बातका समर्थन करता है कि नेता ही दूसरोंके आदेशों तथा मन्तव्योंको कार्यान्वित कर सकता है। बड़े और छोटे

सभी विषयोंमें, उत्तरदायित्वपूर्ण नेताके ऊपर निर्भर रहना ही आन्दोलनका एक सिद्धान्त है।

आन्दोलनके प्रमुख कर्त्तव्योंमें यह भी एक कार्य्य है कि वह इस सिद्धान्तको अपने तक ही सीमित न रख, समस्त राष्ट्रमें प्रचलित करादे।

अन्तमें इस आन्दोलनका विचार राष्ट्रके एक स्वरूपके मुकाबले किसी दूसरेका निर्माण करना नहीं है, किन्तु उन आधारपूर्ण सिद्धान्तोंको बनाना है जिनके बिना किसी राजसत्ता अथवा प्रजातन्त्रीय सरकारका स्थायीपन नहीं रह सकता। इसका अभिप्राय एक राजसत्ता अथवा एक प्रजातन्त्रीय सरकारकी स्थापना करना नहीं, एक जर्मन राष्ट्रका निर्माण करना है।

आन्दोलनके आन्तरिक संगठनका प्रश्न किसी सिद्धान्तसे सम्बन्धित नहीं, किन्तु उसकी उपयोगिता पर स्थिर है। वही संगठन सबसे श्रेष्ठ है जो राष्ट्र-यन्त्रको, अधिक नहीं थोड़ा ही, नेताओं और उनपर निर्भर रहनेवाले लोगोंसे अवगत करा देता है। क्योंकि संगठन का कर्त्तव्य एक निश्चित विचारको—जो कि सर्वदा ही एक मनुष्य की बुद्धिसे उत्पन्न होता है—साधारण जनतामें प्रचलित करना है, और सिद्धान्तके व्यवहारपर अपना नियन्त्रण रखना है।

जब अनुयायियोंकी संख्या बढ़ती है, छोटी-छोटी सम्बन्धित शाखायें खोली जाती हैं,जो स्थानीय जनताको भविष्यमें राजनीतिक संगठनके लिये प्रस्तुत करती हैं।

आन्दोलनका आन्तरिक संगठन इसप्रकार होना चाहिये:—

सर्वप्रथम समस्त कार्य्यकी देख-रेख एक ही स्थानपर—म्युनिक होना आवश्यक है। असंदिग्ध एवं विश्वासी अनुयायियोंके एक विभागको शिक्षा देना, और भविष्यमें विचारोंके प्रचारके लिये एक विद्यालय खोलना चाहिये। इसके बाद सफलताको देखते हुए इसी एक केन्द्रके लिये आवश्यक अधिकार प्राप्त किये जाते हैं।

स्थानीय शाखायें तबतक नहीं खोली जा सकीं, जबतक म्युनिक स्थित केन्द्रीय नेतृत्वका पूर्ण प्रभाव नहीं जम गया।

नेतृत्वके लिये केवल इच्छा-शक्तिकी ही आवश्यकता नहीं है, किन्तु उस योग्यताकी आवश्यकता पड़ती है जिससे पवित्र प्रतिभाके अतिरिक्त जनताको वशमें रखनेकी शक्ति प्राप्त होती है। इन गुणोंका संयुक्त गठन सर्वश्रेष्ठ है।

किसी भी आन्दोलनका भविष्य अतिभक्ति पर निर्भर है, साथ ही साथ असहनशीलताकी भी आवश्यकता है जिससे उसके अनुयायी एक उचित पथकी भांति उसकी रक्षा करते हैं, और नाना प्रकार के विरोधी वातावरणकी परवाह न करते हुये उसके ध्येयकी पूर्तिके लिये प्राणपणसे चेष्टा करते हैं।

यह सोचना महान भूल है कि एक आन्दोलन दूसरे अन्य आन्दोलनसे मिल जानेसे अधिक शक्तिशाली हो जाता है, चाहे उनका उद्देश्य एक ही क्यों न हो। मैं इस बातको माननेको तैयार हूं कि रूपकी वृद्धि कार्यक्षेत्रका विस्तार है, और—बाहरी अवेक्षकोंकी दृष्टिमें साथ ही साथ शक्तिकी दृढ़ता है; किन्तु वास्तवमें, जो हो, वह आन्दोलन अपने लिये निर्बलताका बीज रोपता है।

किसी भी कार्यकुशल आन्दोलनकी महानता,जो कि एक विचार का रूप है, उसको धार्मिक अतिभक्ति और असहनशीलतापर निर्भर है, जिसके द्वारा अपनी सत्यता पर विश्वास करते हुए वह दूसरों पर आक्रमण करता है। यदि कोई विचार स्वतः ही सत्य है,तथा अस्त्रोंसे सुसज्जित रह इस पृथ्वीपर संघर्ष करनेके लिये प्रस्तुत है, तो उसे अजेय कहना पड़ेगा, और उसके कष्ट उसकी आन्तरिक शक्तिको दृढ़ करते जायेंगे।

क्रिश्चियन-धर्मकी महानता प्राचीन तार्किक विचारोंकी गुलामीसे नहीं, जो प्रायः इससे मिलते-जुलते हैं, बल्कि अपने सिद्धान्तोंको दृढ़ता और रक्षासे है।

आन्दोलनके सदस्योंको हमारी जातिके शत्रुकी घृणा और गवर्मेन्टके सिद्धान्तोंसे नहीं डरना होगा, उन्हें इनसे बहुत ही सतर्क रहना पड़ेगा। उस घृणामें झूठ और निन्दाका भरा रहना अत्यन्त आवश्यक है।

यदि कोई भी व्यक्ति यहूदी प्रेसके आक्रमणों,निन्दा और गालियोंसे बचा हुआ है तो वह सच्चा जर्मन नहीं है, और उसे सच्चा नेशनल सोशलिष्ट भी नहीं माना जा सकता। उसकी भावनाओंका मूल्य दृढ़ विश्वासकी वास्तविकता, इच्छा-शक्तिका प्रभाव और उसके प्रति शत्रु की निठुरतासे ही जाना जा सकता है।

हमारे इस आन्दोलनको व्यक्तित्वका हर प्रकारसे सम्मान करना चाहिये, इसे यह ध्यान रखना होगा कि व्यक्तित्वमें ही सभी मानव मूल्य पाये जाते हैं, अर्थात् प्रत्येक विचार,प्रत्येक कार्यकी पूर्त्ति मनु-

व्यक्ती श्रमपूर्ण क्रियाशीलताका परिणाम है, और इस महानताकी प्रतिष्ठा इसके लिये धन्यवादमात्र है, किन्तु साथ ही साथ उनके लिये संगठन-प्राप्ति है जो इसके कृतज्ञ हैं।

अपने व्यक्तित्वकी अपरिचितता और कम प्रभावके कारण आन्दोलनके प्रारम्भमें हमलोगोंको कुछ कठिनाइयां पड़ीं, और इसने स्वतः ही सफलताको सन्देहजनक बना दिया। वास्तवमें जनता हमलोगोंसे एकदम अपरिचित थी। म्युनिकमें तो इस पार्टीका कोई नाम भी नहीं जानता था, उन दिनों इसके चन्द अनुयायी और इनेगिने लोग ही इससे परिचित थे। अतः इस छोटे रूपको बृहत् रूप देना, अनुयायियोंकी संख्या बढ़ाना, और सबसे बड़ी बात आन्दोलन का नामकरण कर उसे प्रसिद्ध करना—ये सभी बातें लाभदायक थीं।

इन बातोंको दृष्टिमें रख हमलोगोंने प्रतिमाह,और बादमें प्रति-पक्ष एक सभा करना प्रारम्भ किया। कुछ निमन्त्रण टाइप किये होते थे, और कुछ हाथोंसे ही टिकटोंपर लिखे जाते थे। मुझे स्मरण है कि एक अवसरपर मैंने स्वयं ही वैसे अस्सी टिकट लोगोंको दिये थे, और सायंकाल हमलोग आनेवाली भीड़की प्रतीक्षा किया करते थे। एक घण्टे तक सभा कर,सभापति वास्तविक सात सदस्यों की उपस्थितिमें सभाकी कारवाई शुरू करता था, और कोई भी वहां उपस्थित नहीं रह सकता था!

हम गरीब बहुत कम चन्दा देते थे और इसलिये अन्तमें हमलोगों ने म्युनचेनर विओबेचर नामक स्थानमें, जो कि उन दिनों स्वतन्त्र था, एक सभा बुलाई। उस समयकी सफलता आश्चर्यजनक थी।

हमलोगोंने सभाके लिये एक कमरा लिया। सात बजे संध्याको प्रायः एकसौ ग्यारह लोगोंकी उपस्थितिमें सभाकी कारवाई शुरू हुई। म्युनिकका एक प्रोफेसर प्रधान वक्ता था, और उसके बाद मुझे बोलना था। मै लगभग तीस मिनट तक बोला, और स्वभावतः मैंने जो कुछ समझा था उसे प्रमाणित कर दिया, किन्तु मुझे इस बातका विश्वास नहीं था कि मैं बोल सकूंगा। उन तीस मिनटोंके बाद ही उपस्थित जनतामें एक प्रकारकी नयी स्फूर्त्ति प्रतीत हुई, और .मेरी अपीलका इतना असर पड़ा कि लोगोंने संस्थाके खर्चके लिये तीनसौ मार्क (जर्मनीका सिक्का) उसी समय दे दिये। इसने हमें एक बहुत बड़ी चिन्तासे मुक्त कर दिया।

पार्टीका तत्कालीन सभापति,हर हैरर, शिक्षा और धन्धेसे एक सम्पादक था। किन्तु एक दलके नेता अथवा पार्टी लीडरकी हैसि· यतसे उसमें एक अयोग्यता थी। वह जनताकी सभामें बोलनेवाला एक वक्ता नहीं था। यद्यपि उसका कार्य उचित और विवेकपूर्ण था, परन्तु इस प्रतिभाकी त्रुटिसे उसमें विशेष संचालन-शक्तिका अभाव था। . आन्दोलनकी म्युनिक-स्थित स्थानीय शाखाका सभापति हर ड्रेक्सलर एक अच्छा कार्यकर्त्ता था, किन्तु एक अच्छा वक्ता नहीं, इतना ही नहीं, वह एक सैनिक भी न था। उसने कभी युद्धका मुंह भी नहीं देखा था,और इसलिये स्वभावतःअनिश्चित और निर्ब ः रहते हुए, उसने ऐसी शिक्षा नहीं प्राप्त की जिससे मनुष्य कोमलत और अनिश्चितं स्वभावोंसे मुक्त हो सकता है। इस प्रकार उन दोनोंमें से कोई भी आन्दोलनमें विजयकी आशा रखने योग्य न था।

मैं उस समय भी एक सिपाही था।

अधिकांश लोग जातिके मार्क्सवादी धोखेबाजोंके उस आन्दोलन से घृणा करते थे, जिसका उद्देश्य जनताके ऊपर अपना प्रभाव जमा, अन्तरराष्ट्रीय मार्क्सवादी यहूदी स्टाक एक्सचेञ्ज पार्टियोंके इशारों-पर चलना था। किन्तु हमारी "जर्मन वर्केर्स-पार्टी" किसी दूसरेके इशारे पर न चल स्वतः ही अपना संचालन करती थी।

विजयपथकी ओर अग्रसर होते हुए तरुण आन्दोलनके विश्वास को दृढ़ करनेके लिये १६१६—२० ई० के शीतकालमें हमलोगोंने एक संघर्ष आरम्भ किया; हमारा अभिप्राय इसे उस अतिभक्तिकी सीमा तक पहुंचा देनेका था जिसमें पहाड़ोंको भी विचलित कर देनेकी महान शक्ति है।

डैच्योर स्टेूसि स्थित "ड्यूचेस रीच" की एक सभाने पुनः प्रमाणित कर दिया कि मैं ठीक रास्तेपर था। उपस्थिति दो सौ से कुछ अधिक थी, और जनता तथा अर्थसम्बन्धी विषय दोनोंसे ही हमारी उन्नति हो रही थी। एक महीने बाद हमारी सभामें चार सौ आदमी उपस्थित हुए।

किसी भी कारणसे यह नहीं कहा जा सकता था कि इस तरुण आन्दोलनका एक निश्चित कार्यक्रम है और इसे जनप्रियता नहीं प्राप्त थी। अपनी सीमित धारणाके अभावके कारण, यह वाक्यरीति किसी भी आन्दोलनके सम्भव आधारको नहीं बता सकती, और न आन्दोलनोंकी कार्य्य-प्रणालीको ही समझनेमें समर्थ हो सकती है। चूंकि व्यवहारतः धारणाका वर्णन करना कठिन है और इसको

व्याख्यामें महान मतभेद है, इसलिये इसकी अपील भी व्यर्थ ही है। किसी धारणाका एक राजनीतिक संघर्षके लिये इसप्रकार अवर्णनीय और नाना प्रकारकी व्याख्याओंसे भरा रहना,संघर्षमें एक उद्देश्ययुक्त जातिका नाश करना है, जो कि व्यक्ति विशेपके कथनानुसार अपने काय्यं-पथसे विमुख नहीं हो सकती।

मै अपने सतर्क तरुण आन्दोलनको तथाकथित "मौन काय-कर्त्ताओं" के जालमें फंसनेके लिये विशेप चेतावनी देना उचित नहीं समझता। ये कार्यकर्त्ता डरपोक ही नहीं, सर्वदा ही अयोग्य और आलसी देखनेमें आये हैं। एक मनुष्य जो कि किसी विषयमें कुछ जानता है, कुछ सम्भव आपदाओंको समझता है और प्रत्यक्ष रूपसे उनका उपचार भी जानता है, किसी भी हालतमें मौन रहकर काम नहीं करेगा,बल्कि सरेआम उन बुराइयोंके सुधारके लिये प्रयत्न करेगा। यदि वह ऐसा करनेमें असफल होता है तो वह एक दुर्बल है, अपने कर्त्तव्यको भूल जानेवाला है, और उसकी असफलता या तो कायरता अथवा आलस्य और अयोग्यताके कारण होती है। इसीसे पता चल सकता है कि वे मौन कार्यकर्त्ता किस प्रकार विरुद्ध-आचरण किया करते थे, यद्यपि उन्हें मालूम था कि ईश्वर सब कुछ देखता और समझता है। वे पूर्ण अयोग्य थे तथापि अपनी बहानेबाजियोंसे उन्होंने संसारकी आंखोंमें धूल झोंकनेकी चेष्टा की; वे आलसी थे, तथापि अपने मौन कार्यक्रमके बहानेसे उन्होंने अपनी कार्यकुशलता का परिचय देनेका दुस्साहस किया। संक्षेपमें, वे वंचक थे, राजनीतिसे लाभ उठानेवाले थे,और दूसरों द्वारा किये हुए सच्चे कामसे घृणा रखने

वाले थे। प्रत्येक आन्दोलनका साहसपूर्वक अपने विरोधीका सामना करना तथा निर्भीकता एवं वीरतासे अपने विचारोंकी रक्षा करना, वैसे हजारों चोरी-चमारीसे काम करनेवालोंकी अपेक्षा अधिक असर करेगा।

१९२० ई० के प्रारम्भमें मैंने अपील की कि जनताकी एक बहुत बड़ी सभा होनी चाहिये। हर हैरर, पार्टीका तत्कालीन सभापति मेरे विचारोंसे असहमत हो गया और उसने प्रतिष्ठाके साथ अपना नेतृत्व छोड़ दिया। अब हर एन्टन ड्रेक्सलरने उसका काम सम्हाला। मैंने स्वयं ही आन्दोलनके प्रचारका काम अपने हाथमें ले लिया और निर्विघ्न अग्रसर हुआ।

१९२० ई० की २४ वीं फरवरीको जनताकी एक विराट सभा करनेका निश्चय किया गया। मैंने स्वयं उसका इन्तजाम किया।

हमारे झण्डेका रंग लाल था इसमें बहुत आकर्षण था तथा विरोधियोंको जलाने तथा भड़कानेके लिये यथेष्ट था, और इसलिये उनकी स्मृति एवं विचारोंपर हमलोगोंका अच्छा असर पड़ा।

सभा प्रारम्भ हुई, ७ बजकर १५ मिनिटपर मैं म्युनिकके प्लैट-जल-स्थित हौफ्रहौसफेस्टसलवाले हाल (सभा-भवन) की ओर रवाना हुआ, उस समय मेरा हृदय आनन्दसे पुलकित हो रहा था। वह बड़ा हाल दो हजार जनतासे ठसाठस भरा हुआ था। यह देख मेरे आनन्दकी सीमा न रही।

जब पहला वक्ता भाषण दे चुका तब मेरी बारी आई। कुछ मिनिटोंमें मुझपर आपत्तियां होने लगीं और हालमें एक भयानक

दृश्य प्रतीत हुआ; कुछ विश्वासी युद्धकालीन मित्रों तथा अनुयायियोंने शोरगुल मचानेवालोंको चुप करा शान्ति स्थापित कर दी। मैं आगे बढ़ने योग्य हुआ। आधे घण्टेके बाद ही न जाने सभी बाधायें किस अन्धकारके साम्राज्यमें विलीन होगईं और २५ मिनटके भाषणोपरान्त जनतासे खचाखच भरा हाल, एक दृढ़ विश्वासमें आबद्ध हो मेरा समर्थन करने लगा। मैं कह नहीं सकता कि किस आकस्मिक धारणाने उनके विश्वास एवं इच्छामें अभूतपूर्व परिवर्तन कर दिया। क्रान्तिकी एक ज्वाला भभक उठी, जिसके प्रकाशसे तलवारोंका चमकना सम्भव होगया, और यह निश्चित होगया कि जर्मन-जाति पुनः अपनी प्राचीन स्वतन्त्रता प्राप्तकर अभ्युत्थान-पथपर अग्रसर होगी।

आगेके अध्यायोंमें मैं उन सिद्धान्तोंका विशेष विवरण दूंगा, जिन्होंने हमें अपना कार्यक्रम स्थिर करनेकी सहूलियत प्रदान की। तथाकथित अपनेको ऊंचा समझनेवाली श्रेणियोंने समालोचनाओंसे हमारी खिल्ली उड़ानेका प्रयत्न किया। किन्तु हमारे कार्यक्रमकी सफलताने सिद्ध कर दिया कि हमारे विचार उस समय बिल्कुल ठीक थे।

द्वितीय खण्ड ।

पहला अध्याय।

सांसारिक सिद्धान्त और दल।

यह स्पष्ट है कि यह नया आन्दोलन किसी एक महान संघर्ष के लिये प्रभाव एवं शक्ति नहीं प्राप्त कर सका, जबतक कि प्रारम्भसे ही इसके अनुयायियोंके हृदयमें सद्भावनायुक्त दृढ़ विश्वास नहीं जम गया कि इसका राजनीतिक जीवन नये चुनावके होहल्ले के वास्ते नहीं, किन्तु सांसारिक सिद्धान्तके आधार पर जर्मनामें नवजीवनका निर्माण करनेके लिये है।

इसपर भी रीतिपूर्वक उन "दल कार्यक्रमों" का असर पड़ना चाहिये था, जो समय समय पर नयी विधिसे नये नये ढांचोंमें ढलते रहते हैं। उनमें से एक या तो नये विचारोंकी सृष्टि करने अथवा विचारोंमें परिवर्तन करनेको वाध्य करता है, वह है—आगामी चुनाव-परिणामकी चिन्ता।

एक बार जब चुनाव हो जाता है और जो लोग पांच वर्षके लिये सदस्य चुने जाते हैं, उन्हें प्रतिदिन प्रात.काल रीचभवन जाना तथा वहां उपस्थिति देकर आना पड़ता है।

जनताके प्रति उनकी महान सेवा उन्हें अपना हस्ताक्षर करनेके लिये प्रेरित करती है, और प्रतिदिन होनेवाले इस अथक परिश्रमके बदलेमें उन्हें प्रतिष्ठारूपी ख्यातिप्राप्त पारितोषिक प्राप्त होता है।

पार्लियामेंटमें वास्तविक रूपमें होनेवाली समस्त घटनाओंका निरीक्षण और इस क्रमानुगत धोखेबाजीका ध्यान,अन्य दूसरे विषयों की अपेक्षा अधिक दुःखदायक है।

इसतरहकी मानसिक मिट्टी, मार्क्सवादकी संगठित शक्तिके विरुद्ध लड़नेके लिये मध्यश्रेणीमें शक्तिका प्रादुर्भाव नहीं करसकती,और निस्सन्देह,पार्लियामेंटके माननीय सदस्य इसपर तनिक भी ध्यान नहीं देते।

तथाकथित मध्यश्रेणीवालोंके सभी दलोंकी प्रवृत्तिको देखते हुए, यह स्पष्ट था कि राजनीति पार्लियामेंटके प्रत्येक सदस्यके लड़ाई-झगड़े में ही है, जिसमें भावनाओं और सिद्धान्तोंको समयानुसार ईंट-पत्थरोंकी भांति फेंक दिया गया था; इन बातोंसे ही उपरोक्त दलोंके कार्यक्रमों और शक्तिका पता चल सकता है। उनमें उस महान आकर्षण-शक्तिका अभाव था जिससे जनताके ऊपर उच्च और गंभीर विचारोंका असर पड़ता है तथा दृढ़तायुक्त युद्ध-शक्तिसे संयुक्त असंदिग्ध विश्वासकी उत्पत्ति होती है। किन्तु ऐसे समयमें जब कि एक पक्ष हजारों बार अपराधी होते हुए भी अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो, स्थायी चीजोंपर आक्रमण करता है, तब दूसरा पक्ष एक नये विश्वास को धारण करता है—हमारी राजनीतिक दशामें—और रक्षाके दुर्बल तथा कायर विचारोंको त्याग, वीरतापूर्ण निर्दयी आक्रमणका समर्थन करता है।

"जनप्रिय" शब्द व्यवहारमें अनिश्चित और असीमित प्रतीत होता है, और व्याख्यामें "धार्मिक" शब्दकी भांति योग्य है। दोनों ही कुछ आधारपूर्ण विश्वासों पर स्थित हैं। और तौभी, अलौकिक प्रभावयुक्त, ये स्वरूपमें इतने अनिश्चित हैं कि इनका मूल्य विचारोंके अतिरिक्त और किसो भी तरहसे, कम या बेशी, नहीं आंका जा सकता, जबतक कि ये राजनीतिक दलके रूपमें आधारयुक्त तत्वोंकी भांति निश्चित नहीं होजाते। जिस तरह केवल कोरी भावनायें और मनुष्यकी इच्छायें सांसारिक आदर्शों एवं मांगोंके रूपमें परिवर्तित नहीं हो सकतीं, उसी तरह केवल सार्वदेशिक आकांक्षाओंसे ही आजादी नहीं मिल सकती। नहीं, ऐसा तबतक नहीं हो सकता, जबतक आदर्श स्वतन्त्रताकी ओर अग्रसर होता हुआ, सैनिक-शक्तिके रूपमें युद्ध-संगठनकी नीतको अख्तियार नहीं करता और इस बात का स्मरण नहीं रखता कि एक जातिकी इच्छायें अच्छे अनुभवोंमें परिवर्त्तित की जा सकती हैं।

कोई भी सांसारिक आदर्श, हजारों बार ठीक और मानवसमाज के लिये लाभदायक ही क्यों न हो, जातीय जोवनके लिये शक्तिहीन है, जबतक उसके सिद्धान्त एक लड़नेवाले आन्दोलनके आधारस्वरूप हो, एक दलके रूपमें उपस्थित न हों, और उस दलके सिद्धान्तोंको राष्ट्रके आधारपूर्ण नियमके रूपमें समेस्त जातिके लिये अंगीकृत न किया जाय।

आजकलकी राजनीतिक विचारधाराके प्रति हमारे साधारण भाव इसप्रकार होने चाहिये कि महत्वपूर्ण और सभ्यताकारी शक्ति

ही राष्ट्रके लिये लाभदायक है, अर्थात् इसका लगाव वंशसम्बन्धी किसी भी विषयसे नहीं है, किन्तु यह आर्थिक आवश्यकताकी एक उपज है अथवा, सबसे बढ़कर,राजनीतिक शक्तियोंका प्राकृतिक परिणाम है। अपने तार्किक परिणामके कारण, यह आधारपूर्ण विचार वंशीय कारणोंका गलत रूप ही उपस्थित नहीं करता, किन्तु व्यक्तित्वका उचित मूल्य ठहरानेमें भी असफल रहता है। सभ्यता-निर्माणकी योग्यताके विषयमें वंशोंमें विभिन्नता न मानना, व्यक्तित्वके समझनेमें महान भूल करना है। विभिन्न वंशोंमें स्वभावमें समतुल्यताकी कल्पना करना,विभिन्न जातियोंके विषयमें उसी प्रकार सोचना है और उसी प्रकार व्यक्तित्व पर विचारना है। इसप्रकार, अन्तरराष्ट्रीय मार्क्सवाद अपने आपही संसारका साधारण विचार है—जो कि चिरकालसे चला आ रहा है—और जिसे यहूदी कार्ल मार्क्सने राजनीतिक विश्वासके सीमित रूपमें उपस्थित किया है। साधारण चीरफाड़के लिये जहरीलेतरीकेके अभावके कारण, उन सिद्धान्तोंकी अपूर्व सफलता असम्भव थी। वास्तवमें कार्ल मार्क्स लाखोंमें से एक था जिसने एक भविष्यदर्शीकी दृष्टिसे भ्रान्त संसारके दलदलमें एक लाभदायक विष देखा,और उसे इतनी कुशलतासे एक ऐसे सुझावके रूपमें रक्खा, जिसका उद्देश्य इस पृथ्वीकी स्वतन्त्र जातियोंके अस्तित्वको सर्वदाके लिये मिटा देना था और सब तरहसे अपनी जातिकी सेवा करना था।

इस भांति मार्क्सवादी सिद्धान्त, वर्त्तमानमें साधारणतः प्रचलित सांसारिक विचारोंका संक्षेपमात्र है।

संसारके इस भागमें मानव संस्कृति और सभ्यता दोनोंही आर्य-तत्वकी उपस्थितिके कारण अपनी सीमाके अन्तर्गत थे। यदि इसका अन्त हो जाता अथवा किसी तरह भी इसे धक्का पहुंचता, तो पुनः पृथ्वीके ऊपर सभ्यताहीन कालका एक काला परदा पड़ जाता।

प्रत्येक राष्ट्रीय अवेक्षककी दृष्टिमें, मानव सभ्यताके अस्तित्वके साथ विश्वासघात करना एक बहुत ही निन्दनीय अपराध है, वंशका नाश ही इसका मूल कारण है। जो कोई भी ईश्वरकी प्रतिमापर बुरी दृष्टिसे हाथ लगाता है, वह उसके निर्माताके साथ अन्याय करता है और नरकका भागी बनता है।

हम सब इस बातसे सावधान हैं कि सुदूर भविष्यमें मानवसमाज को युद्धविषयिक समस्याओंका अच्छी तरहसे समाधान करना होगा, जिससे कोई भद्र वंश,पृथ्वीकी सभी शक्तियोंकी सहायतासे संसारका नेतृत्व करेगा।

किसी भी सांसारिक नीतिका संगठन उसके स्पष्ट तथा निश्चित कथनसे ही हो सकता है, किसी भी संगठन-पथगामी राजनीतिक दलके सिद्धान्तोंके लिये यह तरीका उसी तरह उपयुक्त है जिस तरह किसी धर्मके लिये मतानुसरण करना।

इसलिये राष्ट्रीय नीतिको एक ऐसा अस्त्र रखना होगा जो कि शक्तिपूर्वक उसकी रक्षा कर सके, जैसा कि मार्क्सवादी पार्टी अपने अन्तरराष्ट्रीयताके पथके लिये कर रही है। यही एक ध्येय है जिसका अनुसरण नेशनल सोशलिस्ट जर्मन वर्कर्स पार्टी कर रही है,और यह निश्चित है कि इसे निकट भविष्यमें अच्छी सफलता मिलेगी।

उस समय मुझे अनुभव हुआ कि मेरा यह विशेष काम था कि सभी अस्तव्यस्त लाभदायक विषयोंको एकत्रित कर उनको सैद्धान्तिक रूप दे जनताके सामने उपस्थित किया जाय। दूसरे शब्दोंमें, नेशनल सोशलिस्ट जर्मन वर्कर्स पार्टीका यह कर्त्तव्य था कि वह सार्वदेशिक राष्ट्रीय सिद्धान्तोंको स्वीकार करे,और उसकी व्यवहारिक सम्भवताओं,समयानुकूल कार्य्यों और मानव पदार्थ तथा निर्बलताके लिये उपाय करे, ताकि एक ऐसे वंशकी सृष्टि की जा सके जो कि जन-संगठनको दृढ़ करते हुए इस सिद्धान्तकी विजय-पताका विश्वके कोने-कोनेमें फहरा दे।

—※—

दूसरा अध्याय।

राष्ट्र और तत्कालीन विचार-धारा।

यहां तक कि १६२०-२१में हमारे तरुण आन्दोलनके विरुद्ध अन्तरराष्ट्रीयताकी उपासक तत्कालीन मध्यश्रेणीकीओरसे यह अभियोग लगाया गया कि—राष्ट्रके प्रति हमलोगोंका बुरा रुख है, इससे हमारी पार्टीके सभी विचारवालोंने एकमत हो यही स्थिर किया कि उस नये सांसारिक सिद्धान्तके विचारोंसे सभी सम्भव उपायों द्वारा हमें लड़ना ही होगा। किन्तु वे अपने मतलबकी इस बात को भूल ही गये कि तत्कालीन मध्यश्रेणी-संसार इस बातको मानता है कि राष्ट्र एक सजातीय स्वरूप नहीं है,अर्थात् इस शब्दकी न कोई स्थायी परिभाषा है और न हो ही सकती है। और अभी भी हमारे राष्ट्रके उच्च विद्यालयोंके शिक्षकोंको, जो कि राष्ट्र-नियमोंके वक्ताकी हैसियतसे नियुक्त हैं, यह बात अच्छी तरहसे मालूम होगी कि राष्ट्रका अस्तित्व, बुरा या भला, कैसा था और अब कैसा है। एक राष्ट्रका जितना ही अधिक रद्दी विधान होगा,उतने ही अधिक उसके अस्तित्वके उद्देश्य मूर्खताभरे और बेसिर-पैरके होंगे। ऐसा किस प्रकार हो सकता है, उदाहरणार्थ, क्या कभी कोई गवर्मेन्ट-प्रोफेसर राष्ट्रके

उद्देश्य और विचारों पर कुछ लिख सकता था. विशेषतः ऐसे देशमें जिसका राष्ट्र-अस्तित्व बीसवीं शताब्दीमें सबसे बेहूदा और निस्सार था। वास्तवमें एक महान कठिन कार्य था!

तत्कालीन राष्ट्रके पिठ्ठुओंको तीन भागोंमें विभाजित किया जा सकता है:—

पहला, उनका दल है जो कि राष्ट्रके एक गवर्मेन्टके शासनान्तर्गत जनताका स्वाधीन जमघट मानते हैं। उनके ध्यानमें राष्ट्रका अस्तित्व पाप रहित और पवित्रताका एक रूप है। मानव बुद्धिकी इस पागल धारणाके समर्थनमें,एक अन्धभक्तकी भांति वे तथाकथित राष्ट्र-सत्ताकी पूजा करना चाहते हैं। इस प्रकार अपने इशारोंसे वे स्वार्थ-सिद्धि करना चाहते हैं। इस स्थानपर राष्ट्रका कर्त्तव्य जनताकी सेवा करना नहीं रहता,बल्कि जनताको एक उस राज-सत्ताकी पूजा करनी पड़ती है जो अधिकारवादके विचारोंको ग्रहण कर अपनी धांधली चलाना चाहती है।

दूसरा दल यह विश्वास नहीं करता कि राष्ट्र-सत्ता ही राष्ट्रका एकमात्र ध्येय है,किन्तु इसके द्वारा जनताकी उन्नति अवश्य हो सकती है। राष्ट्र-धारणा वाले इस दल द्वारा "स्वाधीनता" विषयक विचार गलत रूपमें समझे गये है और यही कारण है कि राष्ट्रसम्बन्धी इसके विचार परस्पर विरोधी हैं। वास्तवमें बात तो यह है कि उस गवर्मेन्टका रूप उसकी पवित्रताका साक्षी नहीं है,किन्तु उसकी वास्तविकताकी परीक्षा होना आवश्यक है। इस विचारके समर्थक विशेषतः "नोर्मल जर्मन एवं लिबरल डेमोक्रैटिक पार्टीमें" पाये जाते हैं।

और तीसरा दल तो गणनामें पूर्णतया दुर्बल है। इसकी दृष्टिमें, एक भाषाभाषी संगठित जनताकी शक्ति-नीतिके प्रति कल्पित प्रवृत्तियोंका संदिग्ध ज्ञान ही राष्ट्रका एक काम है।

गत एकसौ वर्षोंमें जनताने किस तरह इन विचारोंका अनुसरण किया, यह देख वास्तवमें महान दुःख होता है। अधिकांश लोग तो इन विचारोंके थे कि जर्मन सङ्गठनका एक यही तरीका है। मुझे भलीभांति स्मरण है कि किस तरह युवावस्थामें इन विचारोंके कारण झूठी धारणाओंको मेरे हृदयमें स्थान मिला था। हां,पैन जर्मन केन्द्रों में ही यह अवश्य सुननेमें आया कि गवर्मेंटके द्वारा ही जर्मन-अस्ट्रियन गुलाम-नीति निर्विघ्न कार्यान्वित की जायेगी।

यह बात सर्वथा असम्भव है कि एक निग्रो अथवा एक चीनी जर्मन बन सकता है, हालां कि उसने जर्मन भाषा सीख ली है तथा आजन्म उसको बोलनेकी प्रतिज्ञा कर ली है और वह किसी जर्मन राजनीतिक दलके पक्षमें अपना मत देता है।

यह तरीका हमारी जातिको वर्णसंकरोंसे भर देगा, और इस प्रकार जर्मन-संगठन नहीं, किन्तु जर्मन-तत्वका विनाश होगा।

चूंकि स्वातन्त्र्य विचार, अथवा वंश, भाषासम्बन्धी कोई विषय नहीं बल्कि खूनका सवाल है,इसलिये जर्मन-संगठनका प्रश्न तभी उठ सकता था जबकि वंशधरोंकी रक्त-प्रकृतिमें कुछ आवश्यक परिवर्त्तन किया जाता और ऐसा होना सर्वथा असम्भव था। अतः इसका परिणाम जातिके रक्तका बेमेल सम्मिश्रण होना था, और फलस्वरूप श्रेष्ठ वंशका पतन एक प्रकारसे अवश्यम्भावी था।

इतिहास इस बातका साक्षी है कि हमारे पूर्वजोंकी तलवार द्वारा विजित देशोंका जर्मन-संगठन लाभदायक था, क्योंकि वहांके निवासी किसान और मजदूर श्रेणीके लोग थे। जबसे हमारी जातिके शरीरमें विदेशी खून मिला है, तभीसे उसका परिणाम हमारी राष्ट्रीय प्रकृतिके लिये हानिकारक हो रहा है।

हमें इस प्रमुख सिद्धान्तको स्मरण रखना होगा कि राष्ट्र स्वार्थ-साधनके लिये नहीं, किन्तु जनसाधारणके हितोंकी रक्षाके लिये है। यह वही नींव है जिसपर मानव-सभ्यता स्थिर है, किन्तु इसे सभ्यता का निर्माता नहीं माना जा सकता। सभ्यताकी योग्यताओंसे विभूषित एक वंश ही इसे कर सकता है। संसारमें सैकड़ों तरहके राष्ट्र-रूप हो सकते थे, तथापि यदि सभ्यताके प्रवर्तक आर्य मर गये होते, तब आजकलकी उच्च जातियोंके मानसिक आधारमें किसी भी तरह की सभ्यताका अस्तित्व नहीं पाया जाता। वंशकी ग्रहण-शक्तिके अभावमें श्रेष्ठ मानसिक योग्यता एवं विचारशीलताके नाशकी कल्पना करते हुए, हम और अधिक कह सकते हैं कि हम राष्ट्र द्वारा अदृश्य होनेवाले वंशकी रक्षा नहीं कर सकते।

राष्ट्र सभ्यताके माध्यमको निश्चित नहीं कर सकता, किन्तु यह उस वंशको मिला सकता है जो इसका निर्णय करता है।

अतः एक उच्च मानवताके निर्माणके लिये राष्ट्र कुछ भी नहीं कर सकता, किन्तु यह एक वंशका ही कार्य है जिसके पास इसके लिये लाभदायक गुण हैं। विश्वके इतिहासमें ऐसे असंख्य उदाहरण हैं जो इस बातकी सत्यता प्रमाणित कर सकते हैं।

सांस्कृतिक एवं महत्वपूर्ण प्रतिभायुक्त जातियां अथवा उससे और अच्छा, वंश ही नाना प्रकारके विपरीत वातावरणमें भी अपनी उन्नति कर सकते हैं। इसप्रकार,पूर्व-क्रिश्चियन कालकी जर्मन जनता को असभ्य अनार्य्य बताना हमारे लिये जलती हुई आगमें घी छोड़ना है। जर्मन कभी ऐसे नहीं थे। अपने घरके उत्तरीय दूषित जलवायुने उन्हें उन दशाओंमें रहनेके लिये विवश किया, और उनके महत्व-पूर्ण गुणोंको उन्नतिसे रोका। यदि प्राचीन संसार अपनी श्रेष्ठताका दावा न करता, और वे सुविधाजनक दक्षिणीय प्रदेशोंमें रहना प्रारंभ करते और उन्नतिके लिये अपनेसे नीच वंशोंको कामोंमें लगा,अपनी कार्यकुशलताका परिचय देते,तो उनकी सभ्यता-निर्माणकारी योग्यता और अच्छी तरहसे प्रस्फुटित होती तथा उन्हे अपनी सफलता पर गौरव होता।

प्राचीन वंशीय तत्वोंकी रक्षा करना ही किसी भी राष्ट्रीयतावादी राष्ट्रका उद्देश्य होना चाहिये, क्योंकि इनके द्वारा प्रचारित सभ्यतासे मानवताकी सुन्दरता और मनोहरताकी सृष्टि होती है।

हमलोग, आर्य्योंकी हैसियतसे किसी राष्ट्रके अधीन रह, अपने मनमें उसी स्थायी स्वातन्त्र्य विचारयुक्त संगठनकी कल्पना कर सकते हैं,जो केवल यही विश्वास नहीं दिलाता कि हमारे स्वाधीन विचार क्रमोन्नत होंगे,किन्तु यह भी बताता है कि इनकी योग्यता उत्तरोत्तर बढ़ती ही जायेगी तथा ये हमारी स्वाधीनताको चरम सीमा तक पहुंचा देंगे।

और अभी भी,आजकल,राष्ट्रके रूपमें हमपर जो दबाव डाला जा रहा है वह एक महान भूल है,और यह हमें अकथनीय दुःख दे रहा है।

हम नेशनल सोशलिष्ट इस बातसे बहुत सचेत हैं कि संसार हमारे विचारोंके कारण हमें विप्लवी कह, हमपर कलंकका टीका लगाना चाहता है। किन्तु इन निन्दाओं और घृणित समालोचनाओं से हमारे विचार एवं कार्य्य किसीभी हालतमें प्रभावित नहीं हो सकते हम आज भी पूर्ववत अपने सत्यपूर्ण विचारोंपर स्थित हैं। हमें उस समय अतीव आनन्द प्राप्त होगा जब कि हमारी सन्तानें हमारे वर्त्तमान कार्य्योंको केवल समझेंगी ही नहीं, बल्कि उनके औचित्यको स्वीकार कर, उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रगट करेंगी।

राष्ट्रके उच्च उद्देश्यके विषयमें बोलते हुए हमें यह नहीं भूल जाना चाहिये कि उच्च उद्देश्य पूर्णतया जातिपर ही स्थित है, और इस लिये राष्ट्रका यही कर्त्तव्य रह जाता है कि वह इसकी संगठनशक्तिको दृढ़ कर जातिको स्वतन्त्र उन्नति पर ध्यान दे।

यदि हम यह पूछें कि जर्मनों द्वारा वाँछित राष्ट्रका संचालन कैसे हो सकता है, हमें इस विषयको स्पष्ट कर लेना होगा कि हमें किस उद्देश्यका अनुसरण करना पड़ेगा और जनताको किस रास्ते पर लगाना होगा।

दुर्भाग्यवश, हमारी जर्मन जातिका केन्द्रीय तत्व वंशसम्बन्धी विषयोंमें एकसा नहीं है विभिन्न मूल अंश जोड़नेका तरीका इतना अधिक प्रचलित नहीं हुआ है कि हम यह कह सकें कि इससे एक नया वंश निकला है। ठीक इसके विपरीत हमारे खूनकी अपवित्रताने जिससे हमारी राष्ट्रीय आत्माको गत तीस वर्षोंसे कष्ट उठाना पड़ रहा है,हमारे खूनमें ही परिवर्तन नहीं किया है, किन्तु हमारी आत्मा

को भी दूषित कर दिया है। पितृभूमिकी खुली सीमायें, सीमान्त प्रदेशोंके निकट विदेशी गैर-जर्मनोंका निवास, और सबसे बढ़कर, रीचमें विदेशी रक्तका प्रवेश, अपने अविराम आक्रमणसे पूर्ण एकता नहीं होने देता।

जर्मन सामूहिक-स्वाभाविक बुद्धिसे विहीन हैं,जो कि उस समयों उपस्थित होती है जब सब लोग एक खूनके होते हैं और यह जातिय को भयकालमें नाशसे बचाती हैं। इसके अभावसे हमारी अकथित हानि हुई है। इसने चन्द जर्मनोंको धनिक बनाया है, किन्तु इसके कारण ही जर्मन-जाति अपने अधिकारोंसे वंचित हुई है।

एक मृत यन्त्रका स्थान ग्रहण करनेके लिये,जो कि अपने अस्तित्वका दावा करता है,एक ऐसे स्थायी संगठनकी आवश्यकता है जिसकी धारणा उच्च विचारयुक्त हो।

राष्ट्रकी हैसियतसे, जर्मन रीच स्वयं ही समस्त जर्मन-जातिको एक सूत्रमें आबद्ध कर सकती है, यह जर्मन-जातिके उज्ज्वल रत्नोंको एक स्थानपर एकत्रित कर उनसे काम ही नहीं निकालेगी,किन्तु धीरे-धीरे उन्हें उस आदरणीय पदपर पहुंचा देंगी,जहां उनका नाम अप्रलय तक अन्धकारमय राष्ट्रके लिए गौरव-प्रकाशका काम देता रहेगा।

आजकल हमारा शासकवर्ग किसी दूसरी अभिलषित वस्तुके लिये न लड़, अपने सञ्चालित कार्यक्रमकी संभालमें आनन्दका अनुभव कर रहा है। वह इस बातका अनुभव करेगा कि राष्ट्र एक जीवन-रक्षक यन्त्र है—और इसलिये राष्ट्र-सेवकोंका जीवन, जैसा कि वे चाहनाके साथ कहा करते हैं,“राष्ट्रको समर्पित है”।

अतः जब हम अपने नये विचारोंके लिये लड़ रहे हैं—जो कि चीजोंके वास्तविक अर्थसे मिलते-जुलते हैं—हम जनसमूहसे कुछ ऐसे साथियोंको अपनी ओर आर्षित कर लेंगे जो लड़नेमें हमारी सहायता करेंगे,और जिनका शरीर तथा मस्तिष्क दृढ़ होगा। कुछ अपवाद भी है—वृद्ध होते हुए भी जिनकी आत्मा तरुण और उत्साह पूर्ण है वे भी हमारा साथ देंगे, किन्तु हमें उनका सहयोग नहीं प्राप्त हो सकता जिनके जीवनका अन्तिम उद्देश्य अपरिवर्त्तनशील संसार की रक्षा करना है।

हमें इस बातको ध्यानमें रखना होगा कि यदि जनतामेंसे बुद्धिमानों और विद्वानोंका एक छोटासा गुट्ट अलग हो जाता है और उसका उद्देश्य एक ही होता है, वैसी दशामें वे कमसंख्यक ही बाकी समस्त लोगोंपर अपना प्रभाव जमा लेते हैं। विश्वका इतिहास कम-संख्यकों द्वारा ही बनाया गया है, हां, यह बात अवश्य है कि उन्होंने जातिकी इच्छा-शक्ति एवं दृढ़ता पर अच्छी तरहसे अधिकार जमा लिया था।

अतः अधिकांशोंको हानिकारक प्रतीत होते हुए भी जो कुछ हम करते हैं वह हमारी विजयके लिये यथेष्ट साधन है। हमारे कर्त्तव्यकी महानता एवं कठिनतामें ही हमारी सत्यता है और हमारे इस स्वाधीनता-आन्दोलनमें अच्छे लड़ाके ही हमारा साथ देंगे। सफलताकी प्रतिज्ञा हमारे कार्य्योंसे ही पूरी हो सकती है।

वंशोंका प्रत्येक नियन्त्रण वर्णसङ्करोंकी उत्पत्तिका नाश करता है, जबतक कि उस वंशकी वंशीय पवित्रता सुरक्षित रहती है। ऐसा तभी

होता है जबकि वंशीय पवित्रताका अन्तिम चिन्ह वर्णसङ्करों द्वारा पद-दलित किया जाता है अथवा दोनोंकी उत्पत्ति भयकी सृष्टि कर देती है। किन्तु, यदि वंश-निर्माणकी एक नई नींव डाली जाय और वह सर्वथा प्राकृतिक हो,तो वंशीय विषको दूधकी मक्खीकी नाईं निकाला जा सकता है, अर्थात् वंशीय पवित्रताकी पुनः स्थापना होगी और वर्णसङ्करोंकी उत्पत्तिका गतिरोध किया जायगा।

एक राष्ट्रीय राष्ट्रका सर्वप्रथम यह कर्तव्य है कि वह वंशीय पवित्रताके विरुद्ध अन्तरवंशीय विवाह-प्रथाको रोके, और एक संस्थाकी भांति उसकी प्रतिष्ठा करे, और उसे ईश्वरकी लीलाका एक रूप माना जाय, दैत्य-रूप नहीं, आधा आदमी, आधा बन्दर।

तथाकथित हितैषी आधारोंके प्रति प्रतिवाद करना, उस युगके लिये हानिकारक है जिसमें भूलोंकी उपेक्षा की जाती है, और इस प्रकार वह अपने समकालीन एवं आगामी अन्य युगोंपर अकथनीय दुःखका भार लादता है,जबकि दूसरी ओर माता-पिताके पूर्ण स्वस्थ रहते हुए भी उत्पत्ति-नियन्त्रणके उपाय प्रत्येक औषधि-विक्रेता और फेरीवालेके हाथ बेचे जाते हैं। इस यथाक्रमिक आगामी राष्ट्रके संरक्षकों का कहना है कि—इस नेशनल बौरजिओइस संसारमें जनताके क्षय तथा वंशगत क्रिपल्स एवं क्रिटन्स रोगोंका निवारण भी एक अपराध गिना जाता है, जब कि लाखोंकी तादादमें हमा अच्छेसे अच्छे लोग इसी तरहके राजनीतिक रोगोंसे पीड़ित हैं, और इसे नैतिक अपराध जानते हुए भी कोई इसके विरुद्ध सिर उठानेका साहस नहीं करता। यह सब विचारोंकी तुच्छताका परिणाम है। यदि ऐसा न होता,लोगों

की बुद्धिके कपाट खुल जाते और उन्हें अपनी जातिके लिये एक स्वस्थ वातावरणकी आवश्यकता प्रतीत होती, जिसके द्वारा आगामी सन्तानोंका हित हो सकता था।

यह तरीका किस प्रकार प्रतिष्ठा और आदर्शोंमें पिछड़ रहा है, कोई भी भविष्य-सन्तानोंकी भलाईके लिये किसी भी तरहका प्रयत्न नहीं कर रहा है,किन्तु परिस्थितिको सुधारनेकी अपेक्षा उसे ज्योंका त्यों छोड़, भविष्यका नाश किया जा रहा है।

हमारे राष्ट्रीय राष्ट्रका यह कर्त्तव्य है कि वह चारों ओरसे गिरी-पड़ी, अस्तव्यस्त सभी चीजोंका सुधार करे। इसे जातिके साधारण जीवनको ध्यानमें रख वंशको केन्द्रीय दशा तक पहुंचाना ही होगा और वंशीय पवित्रताकी रक्षा भलीभांति करनी होगी। इसे बचपनको जातिकी सबसे मूल्यवान सम्पत्ति समझना होगा। इसे इस बातका ध्यान रखना होगा कि किस तरह स्वस्थ बच्चे पैदा हों—अर्थात् व्यक्तिगत अयोग्यताओंसे पूर्ण अथवा बीमार मनुष्योंको संसारमें बच्चे नहीं पैदा करने चाहिये; यह एक सम्मानीय कार्य्य है कि लोगोंको ऐसा करनेसे रोका जाय। दूसरी ओर इसे जातिको दुर्बल बच्चोंसे नापाक न करनेका तरीका सोचना ही होगा। इसे इन स्वीकृत विषयोंके लिये औषधोपचारकी सहायता देनी ही होगी। इसे ऐसे व्यक्तिको, जो कि रोगी है अथवा वंशगत अयोग्यताका शिकार है, बच्चा पैदा करनेमें अयोग्य करार करके उसे ऐसे कामसे रोकना होगा। इसे यह भी देखना होगा कि एक स्वस्थ स्त्रीको प्रसवकालमें किसी भी प्रकारकी आर्थिक तकलीफ न हो, जिसके कारण बच्चा

अपने मां-बापके लिये श्रापस्वरूप हो जाता है, इतना ही नहीं, इसका वंशपर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा करता है।

प्रत्येक व्यक्तिको शिक्षा देते हुए राष्ट्रको यह शिक्षा देनी होगी कि व्याधिग्रसित हो दुर्बल रहना,लज्जाजनक ही नहीं, किन्तु दुःख जनक और दुर्भाग्य है, और इसलिये यदि कोई मनुष्य अपनी स्वार्थपरतासे दुर्भाग्यको कलङ्कित करता हुआ किसी अज्ञान जीवकी उत्पत्तिमें सहायक होता है,तो यह उसका अपराध है, और इसलिये एक महान लज्जापूर्ण कुकृत्य है, जो जातिके नामपर कलंकका टीका लगाता है। इसके विपरीत यदि कोई बीमार आदमी किसी अपरिचित बच्चेका जिसकी स्वस्थ प्रकृति उसे भविष्यमें जातिका एक हृष्ट-पुष्ट सदस्य होने योग्य बनाती है,पालन-पोषण करता है, तो यह उसके विचारों की भद्रताका सम्माननीय प्रमाण है। अपने इस शिक्षा—कार्यसे राष्ट्र अपनी राजनीतिक कार्यकुशलताको मानसिक रूपमें उपस्थित करनेमें सफल होगा। फिर इसका कार्य्य, विचारोंकी दुविधामें न पड़ बिना किसी रोक-टोकके आगे बढ़ता जाय।

राष्ट्रमें राष्ट्रीय जागृतिके लिये एक उज्ज्वल युगको उपस्थित करना होगा जिसमें लोग घोड़े, कुत्तों और बिल्लियोंकी रोटीके लिये अपना सारा ध्यान न लगा, मनुष्योंकी दशा उन्नत बनानेमें अपना अमूल्य समय लगायें, जिससे पुनरुत्थानकी भावना जागृत हो, और लोगोंमें नवजीवनका संचार किया जा सके।

इस संसारमें यह बात किसी भी हालतमें असम्भव नहीं हो सकती, जहांकि सैकड़ों और हजारों आदमी स्वेच्छापूर्वक केवल एक

चर्चकी आज्ञापर अपना सर्वस्व न्योछावर करनेको तैयार हो जाते हैं।

यदि एक जाति सब कुछ समझते हुए भी, अपनी भूलोंका फल भोगती है,और इस बातको स्वीकार करते हुए भी अपनेको सन्तुष्ट करती है, जैसाकि आजकलके मध्यश्रेणी-संसारमें हो रहा है, तो उसके लिये विनाशके अतिरिक्त और कोई भी पथ नहीं है।

नहीं, हमलोगोंको इस कष्टसे अपनी रक्षा करनी होगी। हमारी वर्त्तमान मध्यश्रेणी बहुत ही खराब है और मानवताके लिये कुछ करने में यह सर्वथा अयोग्य है। यह बहुत ही खराब है—मेरी ही रायमें नहीं, किन्तु एक महान आलस्य-प्रवृत्ति और अपनी करनीके अन्य परिणामोंके फलस्वरूप ही ऐसा हुआ है। ऐसा तभीसे हुआ जबसे राजनीतिक दलोंने बौरजिओइस पार्टीकी अधीनता स्वीकार कर, किसी श्रेणी विशेषके धन्धेकी रक्षा करना चाहा;और विभिन्न दलोंके नेताका जितना हित करनेके स्थानपर अपने स्वार्थ साधने लगे। यह प्रत्यक्ष है कि बौरजिओइस पार्टीके राजनीतिज्ञ लड़ने-भिड़नेके अतिरिक्त मोलभाव करने, और सौदा पटाने, बकबक करने इत्यादि की विद्यामें बहुत ही निपुण हैं, विशेषतः ऐसे समयमें जब कि दूसरा पक्ष सावधान दुकानदारोंकी अपेक्षा उन गरीब किसानोंसे संगठित है, जो कि अपने विचारों और मांगोंपर दृढ़ है।

राष्ट्रका यह कर्तव्य है कि वह राष्ट्रकी तरुण सन्तानोंको भविष्यमें वंश-वृद्धि करने योग्य बना दे।

इन विचारोंको दृष्टिमें रखते हुए,हमारे राष्ट्रीयराष्ट्रको अपनी शिक्षा पद्धतिको केवल विद्याज्ञान करानेतक ही सीमित न रख जातिकी

शारीरिक उन्नति पर भी ध्यान देना होगा। इसके बाद मानसिक योग्यताका प्रश्न उठता है। यहां पुनः सर्वप्रथम चरित्र-निर्माणकी आवश्यकता पड़ती है, विशेषतः ऐसी दृढ़ इच्छा-शक्तिके लिये प्रोत्साहित करना पड़ता है, जिसमें उत्तरदायित्व ग्रहणका आनन्द प्राप्त हो, और तबतक ऐसा ही रहे जबतक कि अगलेको पवित्र ज्ञान न प्राप्त हो जाय।

इस राष्ट्रीय राष्ट्रको इस बातको ध्यानमें रखकर ही काम करना होगा कि साधारण शिक्षा प्राप्त, किन्तु शरीरसे हृष्ट-पुष्ट, चरित्रमें दृढ़ और इच्छा-शक्ति एवं आत्मविश्वाससे पूर्ण कोई भी मनुष्य एक उच्च शिक्षाप्रद कमज़ोरसे लाख दर्जें अच्छा है।

अतः शरीर-रक्षा राष्ट्रके किसी व्यक्तिका अकेला काम नहीं, न जातिके स्वार्थोंके लिये केवल माता-पितासे ही सम्बन्धित है, किन्तु यह वंश-निर्माणका एक उपाय है, जिसकी रक्षा करना राष्ट्रका कर्त्तव्य है। इसलिये राष्ट्रको अपनी शिक्षा-प्रणालीको इस तरहका बनाना चाहिये, जिससे नवयुवकोंका शरीर बचपनसे ही फौलादके समान मजबूत बनाया जा सके,ताकि वे अपना आगामी जीवन एक स्वाभिमानीकी भांति व्यतीत कर सकें। इसे इस बातका विशेष ध्यान रखना होगा कि दुर्बल सन्तानोंकी उत्पत्ति न हो।

राष्ट्रीय विद्यालयोंमें विद्याज्ञानके साथ ही साथ शारीरिक व्यापामपर भी उचित ध्यान देना चाहिये। ऐसा कोई भी दिन नहीं होना चाहिये जिसमें एक लड़केको कमसे कम प्रातः एवं सायंकाल एक घंटा शारीरिक व्यायाम न कराया जाय, चाहे खेलोंसे अथवा जिम-

नास्टिक-प्रणाली द्वारा;विशेषतः एक व्यायाम किसी भी हालतमें नहीं छूटना चाहिये,जिसे राष्ट्रीयताके झूठे उपासक व्यर्थ और भद्दा करार देते हैं, वह है मेरा प्रिय खेल—"घूसेबाजी"। शिक्षितोंके बीच इसके प्रति जो साधारण विचार हैं वे अविश्वसनीय और झूठे हैं। वे नव-नवयुकोंके लिये कुश्ती लड़ना प्राकृतिक और माननीय समझते हैं, किन्तु यदि वे घूंसेबाजी करते हैं तो उन्हें बुरा मालूम होता है। ऐसा क्यों? कोई भी ऐसा खेल नहीं है जो इसकी भांति आक्रमण करने को प्रोत्साहित करता है, यह अवयवोंको दृढ़ करता है और इसप्रकार शरीरको कठोर बनाता है। दो नवयुवकोंके लिये चमकती तलवारों की अपेक्षा घूंसोंसे लड़ एक झगड़ेका निपटारा कर लेना अच्छा है।

यदि हमारी समस्त बुद्धिमान-श्रेणीको उच्च चाल-चलनकी शिक्षा न मिली होती, और उसके बदलेमें उसे घूंसा चलाना सिखाया जाता, तब लड़कोंका जर्मन-विद्रोह नहीं देखनेमें आता और आज जर्मनी कुछ और ही रूपमें उपस्थित होता। ऐसा क्यों हुआ, इसका यही उत्तर है कि हमारे उच्च विद्यालयोंकी शिक्षा द्वारा लोगोंको मानवताके स्वाभिमानका ज्ञान न करा, सरकारी कर्मचारी, इञ्जीनियर, ज्यूरी, साहित्यिक—और इस बुद्धिमत्ताको चिरस्थायी रखनेके लिये—प्रोफेसर बनाया गया।

हमारे बुद्धिपूर्ण नेतृत्वका सर्वदा ही अच्छा फल निकला है,किन्तु हमारी इच्छा-शक्तिकी रक्षा समालोचनासे परेकी बात है।

हमारी जर्मन-जातिको, जो कि इस समय विनाशकी दशामें पड़ी है, आत्मविश्वास द्वारा कथित शक्तिकी परमावश्यकता है। बच-

पनसे ही हमारी जातिके नवयुवकोंको इस आत्मविश्वासकी शिक्षा मिलनी चाहिये। उनकी समस्त शिक्षामें ऐसे भाव भरे रहने चाहिये, जिससे उन्हे प्रतीत हो कि वे सबसे श्रेष्ठ हैं, और उनसे बढ़कर इस दुनियांमें कोई भी नहीं है। अपनी शारीरिक शक्ति और चातुरीसे नवयुवकोंको अपनी जातिकी अजेय शक्तिपर विश्वास करना ही पड़ेगा। जर्मन-विजय जब कभी प्राप्त हुई है तो उसका श्रेय लोगोंके आत्मविश्वास और नेताओंके प्रति श्रद्धाभावको ही मिला है। यही एक दृढ़ विश्वास है जिससे पुनः स्वाधीनता प्राप्त की जा सकती है। किन्तु यह विश्वास लाखों मनुष्योंकी भावनाओंका अन्तिम परिणाम ही हो सकता है।

खैर अब किसीको इस विषयमें भूल न करनी चाहिये, हमारा जातीय विनाशका रूप जितना वृहत् था, उसीको भांति एक दिन इस असुखकर दशाको दूर करनेवाला प्रयत्न भी वृहत् होना चाहिये। केवल राष्ट्रीय इच्छा-शक्तिके प्रादुर्भावसे ही, हमलोग स्वाधीनता और उमंग भरे विचारोंकी प्यास बुझा सकते हैं, जिसका कि हमारे बीच महान अभाव है।

राष्ट्रीय राष्ट्रका कर्त्तव्य है कि वह शारीरिक उन्नतिके लिये केवल विद्यालयके सीमित वर्षों तक ही ध्यान न दे, किन्तु उस अवधिके पश्चात भी तबतक ध्यान देता रहे जबतक नवयुवक पूर्णतया स्वस्थता लाभ न करलें और उनका शारीरिक गठन सुन्दर न हो जाय। यह सोचना महान मूर्खता है कि राष्ट्रका यही अधिकार है कि यदि उसके नवजवान नागरिक विद्यालय-जीवन समाप्त कर सेनामें भरती हों

तभी वह उनके शारीरिक गठनपर ध्यान दे सकता है, अन्यथा नहीं। अधिकार ही कर्त्तव्य है और वह हमेशा ही एकसा रहता है।

सेना निर्माण इसलिये ही नहीं हुआ है कि वह लोगोंको मार्च करने और सावधानीसे खड़े रहनेकी शिक्षा दे, किन्तु इसे राष्ट्रीय शिक्षाके उच्च विद्यालयकी भांति काम करना होगा। निस्सन्देह एक नवजवान रंगरूटको अस्त्र-प्रयोग सीखना ही होगा, किन्तु साथ ही साथ अपने भविष्य-जीवनका ध्यान रखते हुए उसे अपनी शिक्षाको व्यवहार रूपमें जारी रखना होगा। इस विद्यालयमें लड़कोंको आदमी बना दिया जायगा; उन्हें केवल आज्ञापालनकी ही शिक्षा नहीं दी जायेगी;किन्तु उन्हें शासन करनेके उपाय भी सिखाये जायेंगे,जिससे भविष्यमें एक कमान्डरकी हैसियतसे उनके काममें कठिनाई न पड़े। उन्हें शान्त रहना सिखाया जायगा, केवल उसी समयके लिये नहीं जब कि उनकी निन्दा की जाय, किन्तु यदि आवश्यक हो तो वे अन्यायको भी शान्तिपूर्वक सह सकें।

अपनी शक्तिपर विश्वास करते हुये, उसके हृदयके उत्साहको अन्य दूसरोंकी भांति समझ एक लड़केके हृदयमें यह विश्वास हो जाता है कि उसकी जाति अजेय है।

जब उसकी सैनिक-शिक्षा समाप्त हो जाती है,तब उसे दो प्रमाण दिखाने योग्य होना होगा—पहला राष्ट्रके नागरिककी हैसियतसे उसके उचित विचार,जो उसे सार्वजनिक कार्य्योंमें भाग लेनेके लिये प्रेरित करते हैं, और दूसरा उसके स्वास्थ्यका परिचय-पत्र, जो इस बातको बताता है कि स्वास्थ्यके ख्यालसे वह विवाह करने योग्य है।

स्त्री-शिक्षामें भी शारीरिक शिक्षापर विशेष जोर देना चाहिये, और उसके पश्चात् चरित्र-निर्माण पर, सबसे अन्तमें विद्या पर। किन्तु स्त्री-शिक्षाके इन सभी अंगोंका एकमात्र सारांश भविष्यमें आदर्शवती माता बनाना ही होना चाहिये।

गत महायुद्धमें यह भलीभांति देख लिया गया कि किस तरह हमारी जनता अपनी बातको अपने तक ही सीमित रखनेमें अयोग्य है,और यहांतक कि हमारे गुप्तभेद भी शत्रुओंकी बुद्धिसे न छिप सके। इसे अपने कलेजेपर हाथ रख सोचिये। क्या जर्मन-शिक्षा महायुद्धके पूव मौन रहनेको एक प्रमुख गुण मानती थी ? नहीं,हमारे विद्यालयों के लिये यह एक महान दुखदायक प्रश्न था। इसके कारण राष्ट्रको लाखोंका बलिदान देना पड़ा,क्योंकि हमारी नब्बे प्रतिशत बातें गुप्तता के अभावमें प्रगट हो जाती थीं। उपेक्षित विज्ञप्तियां इसी तरह लापरवाहीसे निकला करती हैं,हमारा राष्ट्रीय व्यापार अपनेही निर्माताओंके भेद खोल देनेसे लगातार गिरता जारहा है,और देशकी रक्षा करनेका कोई भी प्रयत्न सफल नहीं हो पाता,क्योंकि जनतामें अपनी जबानको काबूमें रखनेकी शक्ति नहीं है। इस तरहका वातावरण युद्ध में हारनेके लिये विवश करता है। इस बातको समझना बहुत जरूरी है कि जो आदत युवावस्थामें पड़ जाती है वह आजन्म वैसी ही बनी रहती है।

हमारे उच्च श्रेणीके विद्यालयोंमें अब उस प्रकारकी शिक्षा न होगी। अबसे इसे दूसरे ही रूपमें सोचना होगा। विश्वासप्रियता, आत्म-त्यागके लिये तत्परता, मौन रहनेकी कला ही ऐसे गुण हैं जिनकी

एक महान जातिको आवश्यकता है, और इन्हें ध्यानमें रख कर ही हमारे विद्यालयोंमें शिक्षा दी जानी चाहिये। इससे हमारा पाठ्यक्रम पूर्ण हो सकता है।

अतः राष्ट्रीय राष्ट्रके शिक्षाकार्यका विशेष झुकाव शरीर-रक्षाके साथ ही साथ चरित्रपर भी होना चाहिये। हमारी जातिमें जो नैतिक दोष पाये जाते हैं, वह इस स्थायी शिक्षा द्वारा बहुत अंशोंमें सुधर सकते हैं, चाहे पूरी तरहसे नष्ट न भी हों।

१९१८ ई० के नवम्बरसे दिसम्बरके अन्ततक लोग यही शिकायत करते सुने जाते थे कि सभी कामोंमें असफलता होरही है, और सम्राटसे लेकर छोटेसे छोटा अफसर भी किसी स्वतन्त्र विचार पर पहुंचनेमें असमर्थ है। वह भयानक बात हमारी शिक्षाका श्राप था, क्योंकि उस निर्दयी विपत्तिमें जो कुछ भी सामने आया वह कुछ नहीं, केवल तुच्छ बातोंके लिये फिजूल रगड़ा था। इस इच्छा-शक्तिके अभावके कारण ही हमलोगोंमें आजकल बाधा-शक्तिका अभाव है, इसके लिये युद्ध-सामग्रीको दोष देना उचित नहीं। हमारी जातिमें यह एक महान अवगुण है और इसीके कारण हम खतरेसे भरे किसी निर्णय पर नहीं पहुंच सकते, मानों हमारे कार्य्योंमें वीरताका नामोनिशान ही नहीं है। एक जर्मन जेनरलकी असफलताका कारण यही था कि वह इसे न समझ सका और उसने एक नयी बात ही सोची, उसका कहना था कि—"मैं तबतक किसी कामको नहीं कर सकता जबतक मुझे उसमें इक्यावन प्रतिशत सफलताकी आशा न हो"। इसीने जर्मन-विनाशके करुणामय दृश्यको उपस्थित किया।

वर्त्तमान समयमें उत्तरदायित्वका भय भी इसी ढङ्गका है। नवयुवकोंकी शिक्षा ही इसका अपराध है, यह सार्वजनिक जीवनका रूप विकृत कर देती है और पार्लियामेंटरी गवर्मेंटको अच्छा समझती है।

जिस तरह राष्ट्रीय राष्ट्रको भविष्यमें न्याय और इच्छा-शक्तिके लिये ध्यान देना होगा, उसी तरह बचपनसे ही नवयुवकोंके हृदयमें उत्तरदायित्वके आनन्द और अपने अपराधोंके लिये साहसका बीज बोना ही होगा।

वैज्ञानिक शिक्षा, जो कि आजकल राष्ट्रीय राष्ट्रोंका आदि-अन्त है, कुछ परिवर्त्तनोंके साथ स्वीकार की जा सकती है और इसकेलिये विचार भी हो सकता है।

सर्वप्रथम अनावश्यक विषयोंसे किसी नवयुवकके मस्तिष्कपर व्यर्थ बोझ नहीं लादना चाहिये। यदि ऐसा किया जायगा तो वह जो कुछ जानता वा समझता भी होगा उसे भी भूल जायगा। उदाहरणार्थ एक कर्मचारीको देखिये, जो कि अपने छत्तीसवें अथवा चालीसवें वर्षमें "जिमनासियम" अथवा "औवेरियल" स्कूलकी सर्वोच्च परीक्षामें उत्तीर्ण होता है। जो कुछ उसे पढ़ाया गया उसका उसे कितना कम ज्ञान रह गया!

मेरे कथनानुसार साधारणतः शिक्षा-प्रणालीका जो रूप है वह नवयुवकोंके लिये यथेष्ट होगा। इसके अतिरिक्त,यदि कोई दूसरा कुछ और अधिक अध्ययन करना चाहे तो यह उसकी इच्छापर निर्भर है और इसे उसके लिये हर प्रकारकी सुविधा दी जायेगी। प्रत्येक व्यक्तिको यह अधिकार दिया जायेगा कि वह विशेष अयध्यन करे।

तथाकथित शिक्षाप्रणालीमें आवश्यक शारीरिक शिक्षाका भी समुचित प्रबन्ध होगा, इसके अतिरिक्त अन्य आवश्यकताओंकी पूर्त्ति भी की जायेगी जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं।

शिक्षाके तरीकोंमें विशेषतः इतिहासमें कुछ परिवर्तन करनेके लिये आवश्यक विचार होगा। वर्तमान प्रणालीमें ९९ प्रतिशत ऐसी बातें हैं जिन्हें देख बड़ा दुःख होता है। कुछ तारीखें, जन्मदिन और नाम तो जैसेके तैसे ही हैं, किन्तु सभी वास्तविक घटनाओंको गायब कर दिया गया है। वास्तवमें, जो विषय लाभदायक हैं उन्हें कभी भी नहीं पढ़ाया गया, किन्तु लोगोंको तारीखं याद करने और उत्तराधिकारकालीन घटनाओंको स्मरण रखनेका उपदेश दिया गया है।

जो इतिहास संक्षेपमें पढ़ाया जाय उसपर भलीभांति विचार करना होगा। क्योंकि इतिहास गतावलोकनके लिये ही नहीं, किन्तु भविष्यके शिक्षा ग्रहण करने एवं अपनी जातिके अस्तित्व बनाये रखनेके वास्ते पढ़ाया जाता है।

प्राचीन घटनाओंके अध्ययनमें किसी भी तरहकी बाधा नहीं देना चाहिये। अपनी सत्यताके कारण हो रोमन-इतिहास शिक्षाका सर्वोच्च साधन माना जाता है, आजकलके लिये नहीं, बल्कि सभी कालोंके लिये।

राष्ट्रीय राष्ट्रका यह कर्तव्य है कि वह इस बातको गम्भीरतापूर्वक देखे कि संसारमें वही इतिहास सच्चा और वास्तविक मान्य होगा, जिसमें वंश सम्बन्धी विषयोंको प्रमुखता दी जायेगी।

आजकल हमारी विद्यालयोंकी शिक्षा-प्रणालीसे, विशेषतः सेकेन्डरी स्कूलोंमें, "पश्चात् जीवनमें क्या रोजगार करना चाहिये" इस

विषय पर थोड़ा बहुत ध्यान अवश्य दिया है; इसके कथनानुसार विभिन्न तीन विद्यालयोंकी परीक्षाओंमें उत्तीर्ण हो प्रत्येक मनुष्य एक अच्छा रोजगारी बन सकता है। इसलिये जो कुछ भी होता है वह महज साधारण शिक्षा है, किन्तु विशेष ज्ञानके लिये स्थायी साधन नहीं। किन्तु विशेष ज्ञानकी आवश्यकतामें हमारे वर्त्तमान सेकेन्डरी स्कूलोंके पाठ्यक्रम द्वारा किसी भी दशामें हमारी इच्छा पूरी नहीं हो सकती।

अतः राष्ट्रीय राष्ट्रको इन अयोग्यताओंको स्पष्ट करनेके लिये अपना तनिक भी समय व्यर्थ न खोना होगा।

हमारे विद्यालयोंमें दूसरा परिवर्तन इसप्रकार होना चाहियेः—

विशेष एवं साधारण शिक्षामें महान अन्तर करना होगा। चूंकि साधारण शिक्षा धनकी गुलामीका भय दिखाती आयी है, इसलिये उसकी आदर्शवादी धारणाके अनुसार उसके गत कार्य्योंके विपरीत कोई रुख अख्तियार करना ही होगा। हमें इस सिद्धान्तका अनुसरण करना पड़ेगा कि उद्योग और कार्यकुशल विज्ञान एवं व्यापार तभी तक उन्नत रह सकते हैं जबतक एक जाति अपने आदर्शोंसे युक्त रह, उचित व्यवस्था रखनेमें समर्थ है। इसके द्वारा भौतिक स्वार्थपरता नहीं समझी जाती, किन्तु त्याग-तत्परता और मृतोत्थानके आनन्द का बोध होता है।

आजकल धारणाके ख्यालसे राष्ट्रकी कोई भी स्पष्ट परिभाषा नहीं है, स्थानीय देशभक्तिके अतिरिक्त और कुछ भी सीखनेके लिये नहीं छोड़ा गया है। प्राचीन जर्मनीके कुछ सम्राटोंके विषयमें ऐसी बात

फैलाई गई हैं, जिनसे उनके कार्य्योंमें प्रारम्भसे ही असम्भवताके चिन्ह प्रतीत होते हैं, और इसप्रकार उनकी महानतामें धब्बा लगाया गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि जर्मन-इतिहासके विषयमें हमारी जनताके विचार दूषित होगये। फलस्वरूप सत्य-पथसे लोग विमुख होगये। इसीसे प्रत्यक्ष है कि इस तरीकेसे कोई भी आदमी अपनी जातिके प्रति वास्तविक प्रेम नहीं प्राप्त कर सका।

कोई भी नहीं जानता था कि किस तरह जातिके वर्तमान प्रमुख व्यक्तियोंको सम्मानित किया जाय, किस प्रकार उनपर सार्वदेशिक ध्यान दिया जाय, और इसप्रकार एक अर्थमय भावनाकी सृष्टिकी जाय।

जबसे जर्मनीमें विद्रोह हुआ और राजभक्तिकी अधखिली कली मुरझाई, तभीसे इतिहासकी शिक्षाका उद्देश्य केवल ज्ञानप्राप्त करना होगया है। राष्ट्र,जैसा कि वह अब है,राष्ट्रीय प्रेमकी आवश्यकता नहीं समझता; और जो कुछ वह चाहता है वह कभी भी नहीं मिलेगा। स्वातन्त्र्य विचारयुक्त सिद्धान्तोंको देखते हुए यह निश्चित है कि राजवंशीय देश-भक्तिसे स्थायी बाधा-शक्ति नहीं प्राप्त हो सकती; और साथ ही साथ प्रजातन्त्रीय सरकारके लिये भी यही बात है। क्योंकि यदि ऐसा होता तो जर्मन-जनता किसी भी हालतमें साढ़े चार वर्षोंतक अपने सिद्धान्तोंकी रक्षाके लिये डटकर युद्ध न करती। हमारा यह संग्राम प्रजातन्त्रीय सरकारकी स्थापना करनेके लिये नहीं था, किन्तु हम जर्मनीमें एक बुद्धिमान सरकारकी आवश्यकता समझते थे।

तथाकथित प्रजातन्त्रीय सरकार बाकी समस्त संसारमें विख्यात है। एक कमजोर आदमीको वे ही ज्यादा पसन्द करते हैं जो उसका व्यवहार करते हैं, किन्तु एक रूखे स्वभाववाला उसे नहीं चाहता। वास्तवमें इसप्रकारके राष्ट्रके सम्बन्धमें शत्रुपक्षकी जो सहानुभूति है, वह इसकी खरी समालोचना है। यही कारण है कि शत्रु-राष्ट्र जर्मन-रिपब्लिकको पसन्द करते हैं, क्योंकि उन्हें भलीभांति विदित है कि हमारी जातिको गुलामीकी जंजीरसे बांधनेके लिये और कोई भी सम्भव उपाय नहीं होसकता।

राष्ट्रीय राष्ट्रको अपने लिये लड़ना होगा। अधूरे और निर्बल प्रस्ताव इसकी रक्षा नहीं कर सकेंगे, क्योंकि इसकी आत्मरक्षा और जीवन वैसा ही होगा जिसपर लोग विश्वास करते हैं और उसीके अनुसार कार्य्य कर सकते हैं। स्वरूप और तत्वमें जितना अधिक यह उचित और मूल्यवान होगा उतना ही अधिक इसके विरोधी इसको गतिविधिमें बाधा प्रदान करेंगे। उस समय इसके अस्त्रोंकी अपेक्षा नागरिक इसकी रक्षा अच्छी तरहसे करेंगे। किलेकी दीवारें इसे नहीं घेर सकतीं, किन्तु पितृभूमिके सच्चे सेवक और राष्ट्रीय भावनाओंसे भरे असंख्य नर-नारी इसकी रक्षामें अपने आपको बलिदान कर गौरवान्वित होंगे।

तीसरा तरीका वैज्ञानिक शिक्षाका खुलासा करता है:—

राष्ट्रीय राष्ट्र विज्ञानको राष्ट्रीय स्वाभिमानका वृद्धिकारक उपाय मानेगा। इस दृष्टिकोणसे केवल संसारका इतिहास ही नहीं, किन्तु सभ्यताका इतिहास भी पढ़ाना होगा। एक आविष्कारकी महानता

अविष्कारककी हैसियतसे नहीं, किन्तु उससे अधिक एक देशभक्तकी हैसियतसे मानी जायेगी। किसी भी महान कार्य्यकी प्रतिष्ठा इसलिये अभिमानसे संयुक्त होगी कि जो भी भाग्यशाली काम हुआ है वह हमारी जातिके एक साधारण सदस्यने किया है। हम जर्मन-इतिहाससे महान व्यक्तियोंका नाम चुनेंगे और उसे युवकोंके सामने इसतरह रक्खेंगे कि उनकी भावनायें एक निर्भय राष्ट्रीयतावादीकी भांति हो जायंगी।

राष्ट्रीयताके अतिरिक्त और कोई भी ऐसी चीज नहीं है जो श्रेणी-विचार करती हो। कोई भी आदमी उसी हालतमें अपनी जाति पर अभिमान कर सकता है जब कि कोई भी ऐसी श्रेणी न हो जिससे उसे लज्जाका अनुभव करना पड़े; किन्तु एक जाति, जिसका आधा अंग दुःखसागरमें डूबा हुआ है, जो चिन्ताओंसे क्षीण है वा भूलोंसे भरी हुई है और इस तरह अपनी बुरी परिस्थितिका चित्र अङ्कित करती है, तो भला हम किस प्रकार स्वाभिमानका दावा कर सकते हैं। जब कि एक जातिके सभी अवयव स्वस्थ हो जाते हैं,और उनमें उच्च विचारोंको लहरें आया करती हैं, तब हम सच्चे राष्ट्रीय अभिमानका अनुभव कर सकते हैं। किन्तु यह उच्च अभिमान उसी मनुष्यके पास आसकता है जो कि जातिको महानता समझता है।

निस्सन्देह संसारमें महान परिवर्तन हो रहे हैं। यहां केवल एक प्रश्न यह है कि इसका परिणाम अर्थ्य-जगतके लिये लाभदायक होगा अथवा अनन्त यहूदी-संसार इससे लाभ उठायेगा।

अतः राष्ट्रीय राष्ट्रका यह कर्त्तव्य होगा कि वह पृथ्वीके सभी परिवर्तनोंसे अपने नवयुवकोंको अवगत करा दे,जिससे वे उन्हें न्याय

और अन्यायके तराजूपर तौल लें। इसका परिणाम वंश-रक्षा होगी। जो जाति इस क्षेत्रमें पहले अग्रसर होगी वही विजय प्राप्त करेगी।

वंशके दृष्टिकोणसे सेना द्वारा इस शिक्षाका प्रचार कर इसे पूर्ण करना चाहिये, और साधारण जर्मनोंके लिये सेनाका यह प्रचार-काल प्राकृतिक शिक्षाका परिणाम गिना जाना चाहिये।

जिस तरह राष्ट्रीय राष्ट्रमें मानसिक एवं शारीरिक शिक्षाका महत्व बहुत ज्यादा है, उसी तरह अच्छे व्यक्तियोंका चुनाव भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय है। दैवयोगसे ही आजकल ऐसा होता है। नियमानुसार ये अच्छे माता-पिताके बच्चोंके समान होते, हैं जिनकी शिक्षा-दीक्षा ऊंचे ढङ्ग पर होनी चाहिये। इसीके अन्तर्गत बुद्धिका प्रश्न आता है। बुद्धिको केवल इससे सम्बन्धित ही माना जा सकता है। एक किसानके लड़केकी बुद्धि एक मातापिताके उच्च पदप्राप्त लड़केसे ज्यादा हो सकती है,बशर्ते साधारण ज्ञानमें वह उससे किसी भी हालतमें कम न हो। दूसरे माता पिताके लड़केके श्रेष्ठ ज्ञानका बुद्धिसे, कम या अधिक,कोई भी सम्बन्ध नहीं है,किन्तु अपनी व्यापक शिक्षा और जीवनके साधारण आचार-विचारके प्रभावोंका ही यह फल है।

रटन्त विद्या द्वारा प्राप्त ज्ञानसे युक्तिकारी गुणोंका प्रादुर्भाव नहीं हो सकता,किन्तु वही होता है जो कुछ बुद्धि द्वारा मिलता है। जो हो, आजकल कोई भी इस बातपर ध्यान नहीं देता,और कुछ नहीं,इसकी आवश्यकताका आर्त्तनाद ही इसे बाहर निकालनेमें समर्थ होगा। एक दिन आयेगा जब कि हमारी यह इच्छा फलवती होती प्रतीत होगी।

यहां राष्ट्रीय राष्ट्रके लिये एक दूसरा शिक्षासम्बन्धी कर्त्तव्य है। इसका यह कर्त्तव्य नहीं है कि यह अपने प्रभावको समाजकी किसी स्थायी श्रेणीके हाथ सौंप दे, बल्कि इसका इस स्थान पर यह कर्तव्य है कि यह जनतामें से कुछ योग्य व्यक्तियोंको चुने और उनके हाथमें इस कार्यकी वागडोर सौंप उनकी तथा अपनी उन्नति करे। राष्ट्रका यह कर्तव्य है कि राष्ट्रीय विद्यालयोंमें बच्चोंकी उम्रका ख्याल रख कुछ निश्चित परिभाषिक शिक्षा दे, किन्तु साथ ही साथ इसे बुद्धि-विकाशको भी हर प्रकारकी सुविधा देनी होगी जिसका कि इसे उपभोग करना पड़ेगा। इस राष्ट्रका सबसे बड़ा कर्तव्य यह होगा कि यह राष्ट्र-शिक्षासम्बन्धी सभी विषयोंके द्वारको सभी वर्गों के लिये बिना भेदभावके खोल दें।

इस विषयपर राष्ट्रको क्यों ध्यान देना होगा,इसका और भी एक कारण है। विशेषतः, जर्मनीमें बुद्धिमानवर्ग इसप्रकार बुरी दशामें है कि वह अपनेसे छोटी श्रेणियोंकेजीवनपर ध्यान नहीं दे पाता। इससे दो बुरे परिणाम निकलते हैं—पहला कि इसकी सहानुभूति जनताके साथ नहीं रहती। जनतासे इसके सभी प्रकारके सम्बन्ध टूट जाते हैं, क्योंकि इसे अभी भी जनताविषयक आवश्यक आध्यात्मिक ज्ञान रखना है। यह लोगोंसे अपरिचित सा हो गया है। दूसरा कि इस उच्च वर्गमें इच्छा-शक्तिका अभाव है, क्योंकि यह प्राचीन जनताकी अपेक्षा सर्वदा ही दुर्बल रहा है। ईश्वर इस बातका साक्षी है कि हम जर्मन बुद्धिमें कभी भी किसीसे कम नहीं रहे हैं किन्तु साथ ही साथ दृढ़ता और इच्छा-शक्तिका हममें बहुत बड़ा अभाव रहा है। हमारा

अधिकारीवर्ग जितना अधिक बुद्धिमान रहा है, उतना ही वास्तविक गुणोंका उसमें अभाव पाया गया है। युद्धके लिये हमारी राजनीतिक तैयारी और कार्यकुशल शस्त्रास्त्र थोड़े नहीं थे,किन्तु जो लोग हमारा सञ्चालन कर रहे थे वे बहुत ही कम पढ़े-लिखे थे। निस्सन्देह हमारे शासक वा साम्राट उच्च शिक्षाप्राप्त थे, बुद्धि और विद्याके पंडित थे, किन्तु स्वाभाविक बुद्धि और वीरताका उनमें पूर्ण अभाव था। यह हमारी जातिका दुर्भाग्य था कि हमें एक ऐसे सञ्चालककी आज्ञापर चलना पड़ा जोकितार्किकदृष्टिकोणसे कमजोरथा। यदिहमारासञ्चालन बेटमेन हौलवेगके स्थान पर जनताके किसी वीर प्रतिनिधि द्वारा होता तो हमारे देशवासियोंका वीर रक्त व्यर्थ ही न जाता। इतना ही नहीं, नवम्बरके बदमाशोंको दुरुस्त करनेवाले तरीके भी असफल न होते। इन्हीं सब लज्जाजनक कारणोंसे हमारी दशा खराब हो गई और इस प्रकार हमारे शत्रुपक्षकी विजय निश्चित कर दी गई।

रोमन कैथोलिक चर्च इस विषयमें एक उदाहरण उपस्थित करता है जिससे हम बहुत कुछ सीख सकते है। इसके पादरियोंकी अविवाहित दशा जनताको पादरीपनकी ओर आकृष्ट करती है।अधिकांश जनता इस अविवाहित दशाके विशेष महत्वसे अनिभिज्ञ है। यह सात्विक शक्तिका ही प्रताप है कि यह प्राचीन संस्था अपने सिद्धान्तका विधिवत् पालन कर रही है।

अपनी शिक्षणयोग्यताके अनुसार राष्ट्रीय राष्ट्रका यह कर्तव्य होगा कि वह इस बातका निरीक्षण करता रहे कि बुद्धिमान् वर्गके रक्तमें नीचेसे ऊपर तक परिवर्त्तन होरहा है अथवा नहीं। राष्ट्रका यह भी

कर्त्तव्य है कि वह जनतामें से ऐसे बुद्धिमान, विवेकी, स्वस्थ राजनीतिज्ञोंका चुनाव करे, जो राष्ट्रके लिये अपना सर्वस्व भी दे सकते हैं,और उन्हें राष्ट्र-सेवामें लगावे। किन्तु आजकल,हमारे इस संसारमें, ऐसा होना असम्भव प्रतीत होता है।

समस्त कार्यका मूल्य दो तरहसे आंका जाता है,उसकी भौतिक पवित्रता और उच्च आदर्श। उसकी कार्यकुशलतासे ही उसका मूल्य, और उसकी जांच लाभदायक आवश्यकतासे ही जानी जाती है, भौतिक दृष्टिसे नहीं। आदर्शतः बोलते हुए, यह मानना ही पड़ेगा कि मनुष्यमात्रमें यह गुण है कि अपने वातावरणमें, चाहे वह जैसा ही क्यों न हो, स्वयं अपने भरसक अच्छा ही काम करनेकी चेष्टा करता है। मनुष्यका मूल्य जाति द्वारा निर्धारित कार्यक्रमकी पूर्तिसे ही आंका जा सकता है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्तिके अस्तित्वके लिये श्रम उपायमात्र है, उद्देश्य नहीं। उसे अपनेको एक मनुष्य समझते हुए भद्र बनाना पड़ेगा, किन्तु ऐसा तभी सम्भव हो सकता है जबकि उसकी संस्कृति वा सभ्यता इस योग्य हो जाय कि वह एक राष्ट्रका नागरिक कहा सके और उसके अनुकूल अपने आचरण बनाये रक्खे।

किन्तु वर्त्तमानकाल स्वयं ही अपना नाश कर रहा है; यह सार्वदेशिक मताधिकार प्रणालीको उपस्थित करता है,समान अधिकारोंके लिये कोरी बकबक करता है, और इसके लिये किसी भी प्रकारका कारण बतानेमें हिचकिचाता है। इसकी दृष्टिमें भौतिक पुरस्कार ही मनुष्यकी योग्यताका परिचय है, और इसप्रकार यह उस समानताके आधारको नष्ट कर रहा है जिसकी स्थापना सम्भव हो सकती थी।

मनुष्योंके कार्य्योंमें न कभी समानता रही है और न रह सकती है, किन्तु यह बात अवश्य है कि प्रत्येक मनुष्य अपना अपना कर्त्तव्य पालन कर सकता है। यही और यही अकेला, एक मनुष्यकी योग्यता प्रदर्शित करनेमें प्रकृतिके सुअवसरोंसे लाभ उठानेमें सहायक होसकता है, और प्रत्येक मनुष्य इससे अपने महत्वको भलीभांति प्रगट कर सकता है।

यह माना जा सकता है कि स्वर्ण वर्त्तमान जीवनके लिये एक शक्तिशाली अस्त्र होगया है; तौभी एक समय आयगा जबकि मनुष्योंको उच्च देवताओंके आगे नतमस्तक होना पड़ेगा। आजकल अधिकांश वातावरण धन और सम्पत्तिके लिये इच्छुक प्रतीत होरहा है, किन्तु उस वातावरणका सर्वथा अभाव है जिसकी हमें आवश्यकता हैं।

हमारे आन्दोलनका यह भी एक कर्त्तव्य है कि हम मानव जीवन की सुविधाके लिये समयानुकूल वातावरणकी सृष्टि करें, और इस सिद्धान्तको बता दें कि भौतिकवादमें ही सच्चा आनन्द नहीं है जिसका अच्छा प्रभाव पड़ेगा और प्रत्येक ईमानदार कार्य्यकर्त्ता और राष्ट्रीयता सम्भव हो जायेगा कि वह साधारणतः एक [illegible]का बच्चा जिसका जन्म सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत कर सके। जो जर्मनीमें रहता है वही

खैर जो हो, हमें इसे केवल कल्[illegible]रिक है।

हालांकि संसार इसके व्यवहारमें अ[illegible]रनेका यह तरीका एक क्रियाशील नहीं प्राप्त कर सका है। भिन्न नहीं है।

तथापि हमलोग इतने सीधे प्रस्तावका स्वागत नहीं जा सकता, कि एक अपराधरहित जीवन [illegible]कतासे गिरी हुई और कम सोची हुई

सकता है। किन्तु ऐसा कह देनेसे ही हम अपने कर्त्तव्यसे मुक्त नहीं हो जायेंगे; हमें दुर्बलताको अस्तित्वविहीन करने एवं आदर्श-पूर्तिके लिये उपस्थित अपराधोंसे संघर्ष करना ही पड़ेगा। इसका कड़वा अनुभव स्वयं ही नानाप्रकारके प्रतिबन्धोंकी सृष्टि करता है। यह देखते हुये मनुष्यको अन्तिम उद्देश्य प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी ही होगी। हमें असफलताओंके कारण अपने उद्देश्यसे विचलित न होना पड़ेगा, जैसे कि कुछ भूलोंके कारण कानून नहीं बदल सकता और बीमारियोंके न होनेके कारण औषधियोंसे घृणा भी नहीं की जासकती। हमें इस बातसे सतर्क रहना पड़ेगा कि हम अपने आदर्शकी शक्तिको नीची निगाहसे न देखें।

—*—

५५ में,
उसकी स्
नागरिक कहा स
किन्तु वर्तमानकाल
देशिक मताधिकार प्रणालीको
लिये कोरी बकबक करता है, औ
कारण बतानेमें हिचकिचाता है। इ
मनुष्यकी योग्यताका परिचय है, औ
आधारको नष्ट कर रहा है जिसकी स

तीसरा अध्याय।

राष्ट्रके नागरिक और जनता।

जिस संस्थाको आजकल भूलसे "राष्ट्र" कहकर सम्बोधित किया जाता है वह केवल दो प्रकारके लोगोंको जानती है— राष्ट्रके नागरिक और विदेशी। राष्ट्रके नागरिक वे हैं, जो जन्मतः ही वहांकी प्रकृतिकी सन्तान होनेके कारण राष्ट्रके नागरिक अधिकारों का उपभोग करते हैं; विदेशी वे हैं जो किसी दूसरे राष्ट्रकी शरणमें रह, इन्हीं अधिकारोंका आनन्द भोगते हैं।

आजकल इन अधिकारोंका वही आनन्द ले सकता है जिसका जन्म राष्ट्रकी सीमाके अन्तर्गत हुआ है। यहां जाति और राष्ट्रीयता का कोई भी प्रश्न नहीं उठता। एक निग्रोका बच्चा जिसका जन्म जर्मन-गवर्मेन्टके राज्यमें हुआ है और जो जर्मनीमें रहता है वही एक प्रकारसे जर्मन-राष्ट्रका एक नागरिक है।

इसलिये नागरिकता प्राप्त करनेका यह तरीका एक क्रियाशील संस्थाके सदस्य बननेके तरीकेसे भिन्न नहीं है।

मैं जानता हूं कि इस प्रस्तावका स्वागत नहीं जा सकता, किन्तु हमारी वर्त्तमान नागरिकतासे गिरी हुई और कम सोची हुई

कोई भी चीजकी सम्भवताको समझना बहुत ही कठिन है। हां,एक ऐसा भी राष्ट्र है जहां दुर्बल प्रयत्नोंसे सुन्दर व्यवस्था करनेकीआकांक्षा अभी भी प्रत्यक्ष है। निस्सन्देह, मैं अपनी "जर्मन रिपब्लिक गवर्मेन्टके विषयमें यहां नहीं कह रहा हूं, किन्तु यहां मेरा प्रयोजन अमेरिकाके उस संयुक्त राष्ट्रसे है, जहां लोग आमतौरसे अभी भी कौंन्सिलोंमें अपना विश्वास दृढ़ बनाये रखनेकी चेष्टा कर रहे हैं। वे उन तत्वोंके प्रवासको, जो कि स्वास्थके दृष्टिकोणसे बुरे हैं,अस्वीकार करते है,और परिभाषित वंशोंके जन्मसिद्ध अधिकारोंको भूलते हैं,और इस प्रकार उस विचारकी ओर नरम हो अग्रसर होते हैं जो कि राष्ट्रीय राष्ट्रकी धारणासे विमुख नहीं है।

राष्ट्रीय राष्ट्र अपने निवासियोंको तीन भागोंमें विभाजित करता है—राष्ट्र-नागरिक, राष्ट्र-जनता और विदेशी।

सिद्धान्तानुसार,जन्म एक प्रजाजनकी दशाका स्पष्टीकरण करता है। इसका मतलब यह नहीं है कि उसे राष्ट्रके किसी सरकारी पदपर नियुक्त किया जाय और वहांकी राजनीतिमें क्रियाशीलता दिखानेका अवसर दिया जाय, अथवा मताधिकारसम्बन्धी सभी सुविधा प्रदान की जाय। राष्ट्रकी प्रत्येक प्रजाके लिये राष्ट्रीयता और वंशका विचार होना अत्यन्त आवश्यक है। अपनी राष्ट्रीयताके कारण प्रजा राष्ट्रकी नागरिकता प्राप्त करनेके लिये हरसमय स्वतन्त्र है। एक विदेशी और राष्ट्र-प्रजामें यही अन्तर है कि वह एक विदेशी राष्ट्रमें रहता है।

जर्मन-राष्ट्रीयतायुक्त सभी नवयुवक जनता उस विद्यालय-शिक्षाको प्राप्त करनेके लिये बाध्य है जो कि जर्मनोंके राष्ट्रीय उत्थानके लिये

बनाई गई है। तत्पश्चात जर्मन नवयुवकोंके लिये राष्ट्र द्वारा आयोजित शारीरिक शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य होगा, और इस प्रकार अपनेको इस योग्य बना लेना होगा जिससे समयपर अपनी इच्छानुसार वे सेनामें भी भरती हो सकें। सैनिक शिक्षा सार्वदेशिक है। अपनी सैनिक-सेवाके पश्चात हमारे कलंकरहित नौजवान राष्ट्रके नागरिक अधिकारोंका आनन्द भोगते हैं। समस्त जीवनमें उनका यही एक महत्वपूर्ण आदर्श पृथ्वीपर रहता है।

हमारे इस राष्ट्रमे झाड़ू देनेवाले मेहतरकी हैसियतसे रहना, किसी विदेशी राष्ट्रके राजा होनेकी अपेक्षा अधिक सम्मानीय है।

जर्मनवाला एक राष्ट्र-प्रजा है, किन्तु विवाहके कारण उसे नागरिकता प्राप्त हो जाती है। किन्तु एक जर्मन-स्त्री जो कि व्यापारमें तल्लीन है, उसे नागरिक अधिकार प्रदान किये जा सकते हैं।

—*—
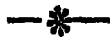
चौथा अध्याय।

राष्ट्रीय राष्ट्रका व्यक्तित्व और उसकी धारणा।

वंश द्वारा किसी मनुष्यकी योग्यताकी कल्पना करना और उसी समयमें मार्क्सवादी सिद्धान्तानुसार—"एक मनुष्य एक दूसरेके समान हैं"—युद्ध छेड़ देना मूर्खताका परिचायक होसकता था, जबतक कि हम इसके अन्तिम परिणामतक पहुंचनेमें असमर्थ थे।

कोई भी जो आजकल यह विश्वास करता है कि एक राष्ट्रीय राष्ट्रीयतावादी-समाजवादी राष्ट्रको अपने आर्थिक जीवन एवं यन्त्र-सम्बन्धी उपायोंसे, गरीबों एवं धनिकोंके बीच सम्मानजनक समझौता कराते हुए अथवा आर्थिक शासनको व्यापक बनाते हुए अथवा सुन्दर प्रतिफल द्वारा तनख्वाहोंमें विशेष अन्तर न रखते हुए दूसरे राष्ट्रोंसे भिन्न होना चाहिये, उसके लिये इसे माननेके अतिरिक्त और कोई भी रास्ता नहीं है, पुनः उसे हमारे सांसारिक दृष्टिकोणके विषयमें कुछ भी अनुभव न होगा। जो तरीके ऊपर बताये गये हैं उनसे स्थायी-पनकी कोई भी आशा नहीं झलकती, और न वे भविष्यकी प्रतिज्ञा ही करते हैं। कोई भी जाति जो ऐसे दिखावटी सुधारोंपर विश्वास करती है वह जातियोंके साधारण संग्राममें विजय प्राप्त करनेकी आशा नहीं रख सकती। एक अन्दोलन जिसकी नींव इन सुधारों पर स्थिर है,

किसी भी प्रकारका सुधार उपस्थित नहीं कर सकता, और उसके लिये विषयोंकी वास्तविकता तक पहुंचना असम्भव है।

पहला कार्य, जिससे मानवसमाजका ध्यान पशु-संसारसे विरक्त हुआ है, आविष्कारोंका प्रादुर्भाव है। मनुष्योंने अपनी योग्यतासे ही पशु-संसारपर अपना अधिकार जमाया है, इसके लिये उनकी संचालन-शक्तिको धन्यवाद दिया जाय तो बहुत ही सुन्दर होगा। उस समय भी व्यक्तित्व स्पष्ट था, और इसीने न्याय और कार्यकुशलताको उपस्थित किया, जिसे आगे चल मानवसमाजने एक उपाय के रूपमें स्वीकार कर लिया। किसी मनुष्यका अपनी शक्तियोंका ज्ञान, जिसे मैं अभीतक युद्ध-विद्याकी नींव मानता हूं, वस्तुतः एक दृढ़ मस्तिष्कका परिणाम है, और ऐसा तबतक न था जबतक कि हजारों वर्षों के पश्चात युद्धकलाको पूर्णतया प्राकृतिक रूपमें स्वीकार नहीं किया गया।

मनुष्यने इस पहली खोजको एक दूसरेसे अलंकृत किया, अपने जीवन-संग्राममें तल्लीन रहते हुए उसने दूसरी चीजोंसे यह सीखा कि किस तरह जीवन यापन करना चाहिये। इस प्रकार मनुष्यमें आविष्कारी कार्यकुशलता विशेष रूपमें प्रतीत होने लगी, जिसका परिणाम हम आज सर्वत्र देखते हैं। यह व्यक्तित्वकी महत्वपूर्ण योग्यता और शक्तिका परिणाम है। यह उस मनुष्यके लिये साधनस्वरूप है जिस में क्रमशः आगे बढ़नेकी शक्ति है। जो कुछ एक समय शिकारियोंके लिये जंगलोंमें अस्तित्व बनाये रखनेका साधन था वह अब हमारे वर्त्तमानकालके वैज्ञानिक अनुसन्धानोंका परिणाम बन रहा है, और

यह मानवसमाजको अस्तित्व-संग्राममें सहायता प्रदान करता हुआ भविष्यके संघर्षके लिये प्रस्तुत रहनेका आदेश देता है।

पवित्र सिद्धान्तको प्रमाणित करने वाला श्रम, जो अतुलनीय है किन्तु साथ ही साथ आगामी भौतिक अनुसंधानके लिये परमावश्यक है, पुनः मनुष्यकी उत्पादन शक्तिका एकमात्र परिणाम प्रतीत होता है। एक समूह कभी आविष्कार नहीं करता, बहुसंख्यक कभी भी संगठन नहीं करते अथवा विचारते, किन्तु यह सर्वदा ही एक मनुष्यका काम रहा है जिसका व्यक्तित्व श्रेष्ठताका परिचायक है।

एक मानव जाति तभी अच्छी तरहसे संगठित रूपमें देखी जा सकती है यदि वह सभी सम्भव उपायों द्वारा तथाकथित महत्वपूर्ण शक्तियोंकी उन्नति करते हुए उन्हें जाति-हितमें लगाये। संगठन तभी हो सकता है जबकि बुद्धिमानोंसे जनताको अवगत कराया जाय और जनताको उनके आदेशों पर चलनेके लिये कहा जाय।

इसप्रकार संगठन जनतासे निकालनेवाले बुद्धिमानोंके उत्थानमें बाधा उपस्थित नहीं कर सकता, किन्तु इसके विपरीत, अपने जागृत कार्य्योंसे सम्भवताको दृढ़ करता हुआ सभी प्रकारकी सुविधायें प्रदान करता है। सभी चीजोंसे परे, कठिन संघर्ष ही बुद्धिमानोंके उत्थानमें सहायक प्रतीत होता है।

रक्षण-शक्तियोंसे सम्बन्धित राष्ट्रको शासन-व्यवस्था और जातियों की शक्ति व्यक्तित्व और अधिकारवादके विचार और उच्च पदावेष्टित मनुष्यके उत्तरदायित्व पर निर्भर है। यहां बहुसंख्यक कुछ भी नहीं कर सकते।

केवल आजकलके राजनीतिक जीवनने ही प्रकृतिके सिद्धान्तके प्रतिकूल काम किया है। जब कि समस्त मानव सभ्यता-व्यक्तित्वकी शक्तिका परिणाम है, ऐसे समयमें हमें बहुसंख्यकोंके अधिकारवादका पाठ पढ़ाया जा रहा है और इसीसे हमारी उन्नतिकी आशा की जा रही है, किन्तु दुःखके साथ कहना पड़ रहा है कि यह कार्य्य हमारे जीवनको विषमय कर देगा और फलस्वरूप हमारी जाति पतन-पथ की ओर अग्रसर होती दिखाई देगी। जुडावादके नाशकारी कार्य्यों का ही यह परिणाम है कि व्यक्तित्वकी उच्चताको दबाते हुये, आज हमें बहुसंख्यकोंके अधिकारवादको स्वीकार करनेके लिये वाध्य किया जा रहा है, और इस प्रकार हमारी जातिके प्रति महान शत्रुता दिखाई जा रही है।

अब हम प्रत्यक्ष रूपसे देखते हैं कि यहूदियोंने अपने प्रयत्नसे मार्क्सवादकी स्थापना मानव जीवनके सभी विभागोंसे व्यक्तित्वके प्रभावको नष्ट करने तथा उसके स्थानपर बहुसंख्यकोंको नियुक्ति करनेके लिये ही की है। राजनीतिमें गवर्मेन्टका पार्लियामेन्टरी रूप इसका स्पष्टीकरण है, और यह वही बला है जो एक छोटेसे चर्चसे लेकर रीच तक हमारे पथोंमें धूर्त्तताके कांटे बिछा रही है।

मार्क्सवाद किसी सभ्यताके निर्माणमें अथवा स्वयं किसी भी आर्थिक प्रणालीकी स्थापनामें कभी भी सफल नहीं हुआ है, किन्तु इतना ही नहीं, यह कभी भी अपने सिद्धान्तोंको एक स्थायी प्रणालीके रूपमें प्रचलित नहीं कर सका है। हां, थोड़े ही समयके पश्चात्, इसे अपना रास्ता बदलनेके लिये वाध्य किया और इसे व्यक्ति-

त्वके सिद्धान्तके लिये कुछ सुविधा प्रदान करनी पड़ी, यहां तक कि अपने निजी संगठनमें भी यह इस सिद्धान्तको अस्वीकार नहीं कर सका।

इसलिये संसारके राष्ट्रीय सिद्धान्तको मार्क्सवादी सिद्धान्तसे भिन्न होना ही पड़ेगा, इसे अपना विश्वास व्यक्तित्वपर रखना ही होगा,और साथ ही साथ व्यक्तित्वके महत्वको ध्यान रखते हुये इसको अपने मूलतत्वका आधार बनाना ही पड़ेगा। यही सब इसके सांसारिक दृष्टिकोणके आधारपूर्ण सिद्धान्त हैं।

राष्ट्रीय राष्ट्रको राजनीतिक नेतृत्व, अथवा दूसरे शब्दोंमें, गवमन्टको बहुसंख्यकोंके शासनसे मुक्त करनेके लिये अविराम गतिसे परिश्रम करना होगा,और इस प्रकार व्यक्तित्वके अविवदनीय अधिकारकी स्थापना करनी होगी।

राष्ट्र और विधानका सबसे अच्छा रूप वही है जो प्राकृतिक निश्चितताके साथ जातिके बुद्धिमानोंके नेतृत्वका उत्थान करता है और व्यक्तित्वके प्रमुखत्वयुक्त प्रभावको स्वीकार करता है।

हमें बहुसंख्यकोंके मतपर नहीं चलना होगा,किन्तु उत्तरदायित्व पूर्ण व्यक्तियोंके एक संघ द्वारा हमारा संचालन, और "कौंसिल" शब्दको पूर्ववत अपने प्राचीन अर्थमें परिवर्तित कर दिया जायगा। प्रत्येक मनुष्यको अधिकार होगा कि वह अपना मत प्रगट करे,किन्तु अन्तिम निर्णय एक व्यक्ति-विशेषके हाथमें ही रहेगा।

राष्ट्रीय राष्ट्रको इस बातका दुःख नहीं उठाना पड़ेगा कि अशिक्षित और अविवेकी लोग भी किसी विशेष विषय पर मन्त्रणा

करनेके लिये आमन्त्रित किये जांय और उनके मतानुसार काम हो। उदाहरणार्थ यदि हम अर्थशास्त्र पर विचार करना चाहते हैं, तो क्या कोई मूर्ख उसके विचारमें हमारी सहायता कर सकता है ? नहीं कदापि नहीं ! इसलिये राष्ट्र अपने प्रतिनिधि रूपको राजनीतिक कमेटियोंमें विभाजित करेगा और उसके अन्तर्गत एक ऐसी भी कमेटी बनायेगा जो व्यापार और धन्धेका राष्ट्रमें प्रतिनिधित्व करे। दोनोंका लाभदायक सहयोग प्राप्त करनेके लिये उनके ऊपर एक स्थायी मंत्रि-मण्डलकी स्थापना की जायेगी। किन्तु मन्त्रिमण्डल और चेम्बर, दोनोंमें से किसीको भी अन्तिम निर्णय देनेका कोई भी अधिकार न होगा;क्योंकि उनकी नियुक्ति राष्ट्रके कार्य्यको सुचारु रूपसे चलाने के लिये हुई है, निर्णय देनेके लिये नहीं। राष्ट्रके सदस्योंको अधिकार होगा कि वे अपनी राय दें किन्तु वे किसी भी दशामें निर्णय नहीं कर सकते। यह तो समय समयके सभापतिका विशेष अधिकार है।

अपने ज्ञानको व्यवहार रूपमें परिणित करनेको सम्भवताके विचारसे मैं अपने पाठकोंको पुनः स्मरण दिला सकता हूं कि बहुमत द्वारा निर्णय देनेवाले पार्लियामेंटरी सिद्धान्तसे मानव वंशका संचालन कभी भी नहीं हुआ है; इसके विपरीत,इतिहासमें ऐसे बहुत कम काल देखे गये हैं जब कि ऐसा होता है, और जब कभी ऐसा हुआ तभी राष्ट्रको जातियोंका विनाश ही हुआ है।

मान लीजिये कि इस बात पर कोई भी विश्वास नहीं करता है कि उल्लिखित पवित्र सैद्धान्तिक प्रयत्नोंसे विधानमें परिवर्तन किया जा सकता है। किन्तु स्मरण रखिये कि ऐसी क्रांति एक आन्दोलन

द्वारा उपस्थित की जा सकती है, इसकी सृष्टि भावोंसे होती है, और इसलिये इसे आगामी राष्ट्रकी जननी कह सकते हैं।

इसप्रकार नेशनल सोशलिष्ट आन्दोलन इस विचारको ग्रहण कर, इसे अपने संगठनके बीच व्यवहार रूपमें उपस्थित करनेके लिये बाध्य होगा, जिससे कि यह केवल राष्ट्रका उचित पथ-प्रदर्शक ही न बने, किन्तु राष्ट्र-कार्य्यके निर्वाहके लिये राष्ट्रका रूप धारण करे।

पांचवां अध्याय।

सांसारिक सिद्धान्त और संगठन।

मैंने जिस राष्ट्रीय राष्ट्रका चित्र अङ्कित करनेका प्रयत्न किया है, वह राष्ट्र केवल आवश्यकताओंके ज्ञानसे ही सजीवता नहीं प्राप्त कर सकेगा। इतना ही जानना अधिक नहीं है कि राष्ट्रका रूप किस प्रकार होना चाहिये। हम तबतक विश्राम नहीं ले सकते जबतक वर्त्तमान राजनीतिक दलोंका उद्देश्य राष्ट्रसे लाभ उठाना है, और वे अपने कार्य्यक्रमोंमें परिवर्त्तन नहीं करते। यह सर्वथा असम्भव है, क्योंकि उनके नेता, और कोई नहीं, यहूदी ही हैं।

यहूदियोंका उद्देश्य जर्मन-मध्यश्रेणी और मजदूर श्रेणीके उन लोगों द्वारा निर्विघ्नपूर्ण होता है, जो अपनी आलस्यपरायणता, मूर्खता एवं भीरुताके कारण विनाश-पथकी ओर अग्रसर हो रहे हैं। यहूदी अपना अन्तिम उद्देश्य पूर्ण करनेके लिये सर्वदा ही सचेत रहते हैं। उनके द्वारा संचालित प्रत्येक दल उनके स्वार्थोंके लिये ही लड़ेगा और आर्य्य जातियोंकी भांति उसका स्वभाव और गुण नहीं होगा।

इसप्रकार, यदि हम राष्ट्रीय राष्ट्रके आदर्शको समझनेका प्रयत्न करें, हमें जनताके जीवनपर शासन करनेवाली वर्त्तमान शक्तियोंकी उपेक्षा करनी होगी और उसके स्थानपर उन शक्तियोंको उत्पन्न

करना होगा जो कि आदर्श-संग्रामके लिये उपयुक्त हैं, क्योंकि हमारे सिरपर एक संघर्ष उपस्थित है। हमारा प्रथम कर्त्तव्य एक राष्ट्र की धारणाकी सृष्टि करना नहीं, किन्तु उपस्थित धारणाका समूल नाश करना है।

किसी भी तरुण उपदेशके पहले अखको, जो कि महान सिद्धान्तोंपर स्थित है, चाहे उसे क्यों न अधिकांश लोग नापसन्द करते हैं, समालोचनासे नहीं डरना होगा।

मार्क्सवादका एक उद्देश्य था और यह अपने संगठनपर अभिमान रखता है (हालांकि यह यहूदियोंके अर्थ-संसारको एक सृष्टि है;) किन्तु इतना होते हुए भी इसने गत सात वर्षोंकी कटु समालोचनाओं की तनिक भी परवाह न की और अपना काम पूर्ववत् अविराम गति से प्रारम्भ रक्खा। तब इसका तथाकथित "संगठन-कार्य्य" आरम्भ हुआ। यह प्राकृतिक और तार्किक दृष्टिसे पूर्णतया उचित था।

कोई भी सांसारिक सिद्धान्त किसी एक ऐसे दलके साथ रह,जो कि अनेकों दलोंके बीच उपस्थित है, सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। वह अपने पूर्ण और स्थायी चिन्हपर निर्भर रहता है और अपने विचारोंके अनुसार सार्वजनिक जीवनके विषयमें उसकी धारणा एक दम नवीन होती है। इसप्रकार वह ऐसी किसी भी शक्तिकी क्रमानुगतताको नही सह सकता जो कि उपरोक्त पहली दशामें कार्य्य करती है।

ऐसा ही धर्मके विषयमें है।

क्रिश्चियन-धर्म अपनी वेदीके निर्माणसे ही सन्तुष्ट न था; इसे प्रतिमाजपूकोंकी वेदियोंका नाश करनेके लिये बाध्य किया गया था।

इसप्रकारकी अतिभक्तिपूर्ण असहनशीलताने ही इसे अनमोल जातियों के निर्माणमें सहायता प्रदान की; यह इसके अस्तित्वकी पूर्णतया लाभदायक दशा है।

राजनीतिक दल परस्पर समझौता करनेके लिये प्रस्तुत रह सकते हैं;किन्तु सांसारिक सिद्धान्त ऐसा कभी भी नहीं कर सकते। राजनीतिक दल अपने प्रतिद्वन्द्वियोंसे सौदा भी कर सकते हैं; किन्तु सांसारिक सिद्धान्त अपनी अभ्रान्तताकी घोषणा करते हैं।

इतना ही नहीं, राजनीनिक दल स्वच्छन्द अधिकारको सर्वदा ही आकांक्षा रखते हैं, वे सर्वदा ही सांसारिक सिद्धान्तका ठीक तरहसे पदानुसरण नहीं करते देखे गये हैं। फलस्वरूप उनके कार्यक्रमकी दरिद्रता उन्हें वीरतासे वंचित कर देती है। जिनको सांसारिक सिद्धांतकी परमावश्यकता है, उनका आकर्षणोंकी ओर झुकनेकी तत्परता उन्हें दुर्बल भावोंके पथपर ले जाती है, और इसके द्वारा किसी भी धर्मयुद्धका संचालन नहीं हो सकता। इसप्रकार वे बहुधा अपनी दुर्बलताके कारण दलदलमें फंस जाते हैं,और उनकी गति रुक सी जाती है।

एक सांसारिक सिद्धान्त तबतक सफल नहीं होसकता जबतक कि वह अपने उद्देश्यके नीचे समकालीन वीर और विद्वान तत्वों एवं जातियोंको एकत्रित कर उनको युद्ध करनेवाले संगठनके रूपमें परिवर्तित नहीं करता। संसारके साधारण दृष्टिकोणसे कुछ विचारोंको एकत्रित कर उन्हें संक्षेपमें सर्वसाधारणके सामने उपस्थित करना भी उसके लिये बहुत लाभदायक है; किन्तु स्मरण रहे कि उसका रूप ऐसा होना चाहिये जो मानव समाजको एक नवीन जातिकी तन-

मन-धनसे सेवा करें। ऐसे समयमें एक राजनीतिक दलका यह कार्य-क्रम होना चाहिये कि वह आगामी चुनावमें अच्छा फल पानेकी चेष्टा करे, अर्थात् एक सांसारिक सिद्धान्त चीजोंके स्थायी क्रमानुसार युद्ध-घोषणाके समान है, और वास्तवमें, जीवनके एक स्वीकृति दृष्टि-कोणके विरुद्ध संग्राम है।

प्रत्येक लड़ाकेके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह आन्दोलनके नेताओंके विचारों तथा तौरतरीकोंका ज्ञान रक्खे।

एक सेना किसी भी हालतमें अच्छी नहीं कही जा सकती यदि प्रत्येक सिपाही जेनरल बनना चाहे, और इसीप्रकार एक आन्दोलन किसी भी दशामें एक सांसारिक सिद्धान्तकी रक्षा नहीं कर सकता यदि आन्दोलनके सभी अनुयायी नेतृत्व करना चाहें। नहीं, यह एक नेताकी आवश्यकता समझता है जोकि सबसे आगे हो लड़े, क्योंकि इसके बिना किसी भी प्रकारका आन्तरिक अनुशासन नहीं रह सकता

स्वभावतः कोई भी संगठन तबतक अपने परों नहीं खड़ा रह सकता जबतक कि उसके बुद्धिमान नेता भावनाभरी जनता द्वारा सम्मानित नहीं किये जाते और उसका नेतृत्व सर्वमान्य नहीं होता। दो सौ मनुष्योंकी एक जमातमें, जिसमें सभी बुद्धिमान भरे हों, किसी भी तरह अनुशासन नहीं रह सकता, किन्तु इसके विपरीत एक सौ मनुष्योंकी जमातमें, जिसमें केवल दस व्यक्ति ही अधिक बुद्धिमान हों, ऐसा होना सम्भव है।

सामाजिक प्रजातन्त्रवादका संगठन भी इसी विषयके अन्तर्गत है। इसकी सेना अफसरों और मनुष्योंसे संगठित है। जर्मन कार्य-

कर्त्ता जो कि सेनासे अलग हैं,गुप्त सैनिकके रूपमें हैं,यहूदी अफसरों के पदपर नियुक्त हैं।

इसलिये कि राष्ट्रीय विचार वर्त्तमानकालकी अस्पष्ट आकांक्षाओं से मुक्त हो विचारोंका स्पष्टीकरण करें, हमें जनताकी विस्तृत धारणाओंसे प्रमुख प्रमुख विषयोंको अपना लेना होगा। इसको ध्यानमें रखते हुए नये आन्दोलनके चुने-चुने पच्चीस उद्देश्य रक्खे गये हैं। हमारा प्रथम उद्देश्य आन्दोलनकी इच्छाओंसे जनताको परिचित करा देना है। बहुत अंशोंमें ये राजनीतिक विश्वासको स्वीकार करते हैं, कुछ बातोंमें अपने लाभके लिये और कुछ संगठनकी दृष्टिसे सदस्योंको एकसूत्रमें बांधनेके लिये।

किसी उद्देश्यको,जिसका सिद्धान्त दृढ़ है, व्यापक रूप देनेवाली हमारी नीतिके विषयमें हमारे यही विचार है कि किसी धारणापर अटके रहनेकी अपेक्षा ऐसा होना कम हानिकारक है, हालांकि इसे वास्तविकता तो नहीं प्राप्त होती किन्तु उसके लिये चेष्टा अवश्य होती है, जिससे आन्दोलनके आधारपूर्ण नियमोंके लिये वादविवादका द्वार खोल दिया जाय,जैसा कि अबतक नहीं हुआ है,क्योंकि ऐसा न करने से बहुत बुरी बातें उत्पन्न हो सकती थीं। वास्तवमें ऐसा तभी हो सकता है जबकि एक आन्दोलन विजयके लिये प्राणपणसे लड़ रहा हो। जो कुछ लाभदायक है उसे बाहरी रूपमें न ग्रहणकर, आन्तरिक भावसे अपनाना होगा;और उनमें किसी भी प्रकारका परिवर्तन नहीं करना होगा। यदि आन्दोलन अपने स्वार्थोंकी पूर्ति करना चाहेगा तो ऐसी दशामें लड़ाइयोंके-लिये आवश्यक,इसकी शक्तिका ह्रास होगा

और परिणामस्वरूप यह भेदभावको न मिटा सकेगा एवं दृढ़ताका इसमें अभाव पाया जायगा।

रोमन कैथोलिक चर्चसे बहुत कुछ सीखा जा सकता है। यद्यपि इसका सिद्धान्त-रूप वास्तविक विज्ञान और अनुसन्धानसे कहीं कहीं भिन्न हो जाता है—जैसा कि कुछ अंशोंमें अनावश्यक है—तथापि हमारा यह चर्च किसी भी दशामें अपने सिद्धान्तका एक शब्दांश भी बदलने अथवा त्यागनेको प्रस्तुत नहीं है। इसने बहुत अच्छी तरहसे समझ लिया है कि इसकी बाधा-शक्ति समकालीन वैज्ञानिक घटनाओं पर नहीं निर्भर है जो कि वास्तवमें,सर्वदा ही परिवर्तित हुआ करती है—किन्तु निश्चित किये हुये सिद्धान्तोंपर दृढ़ बने रहनेसे ही अपने को स्थिर बनाये रह सकती है और ऐसी दशामें विश्वासके स्वभाव को प्रगट करती है। फलतः चर्च पहलेकी अपेक्षा आज और भी अधिक दृढ़तापूर्वक स्थिर है।

अपने पचीस सिद्धांतोंके कार्य्यक्रमको आधार रूपमें नेशनलिस्ट सोशलिष्ट जर्मन वर्कर्स पार्टीने स्वीकार किया है,और उनका इसप्रकार निर्माण किया है जिससे उसकी दृढ़ता सर्वदा अजेय बनी रहे। अभी और भविष्यमें भी हमारे आन्दोलनके सदस्योंका कर्त्तव्य इन प्रमुख सिद्धान्तोंमें किसी प्रकारका परिवर्त्तन करना अथवा इनकी समालोचना करना नहीं रहेगा, किन्तु इनपर निर्भर रहनेके लिये बाध्य होते हुए इनके प्रति श्रद्धा रखनी होगी। अपनी युवावस्थामें हमारे इस तरुण आन्दोलनको इन्हींके आधारपर अपना नामकरण करना पड़ा, और अपना कार्यक्रम भी इन्हींके अनुसार बनाना पड़ा।

नेशनलिष्ट सोशलिष्ट अन्दोलनके आधारपूर्ण विचार राष्ट्रीयताके उपासक हैं,और उसीतरह समानतापूर्वकराष्ट्रीयताके विचार राष्ट्रीयतावादी-समाजवादी है,यदि राष्ट्रीयतावादी-समाजवाद विजय प्राप्त करता है तो यह पूर्णतया और स्पष्टतः इस दृढ़ विश्वासको प्रमाणित कर देगा। अधिकारकी भांति ही इसका कर्त्तव्य है कि यह इस बातकी घोषणा कर दे कि राष्ट्रीयविचार,जो कि नेशनलिष्ट सोसलिष्ठ जर्मन वर्कर्स पार्टीकी सीमाके बाहर हैं अस्वीकरणीय हैं, चाहे क्यों न बहु-संख्यकों द्वारा उचित माने गये हों।

सभी प्रकारकी गोष्ठियां तथा एकमत संस्थायें,छोटे छोटे दल और जहां तक मेरा ध्यान है, बड़े-बड़े दल भी अपने लिये स्वयं ही राष्ट्रीयतावादीहोने वा कहलानेका दावा करते हैं,यह कुछनहीं केवलनेशनल सोशलिष्ट आन्दोलनका प्रभाव है। किन्तु इसके लिये,ऐसा कभी भी नहीं देखनेमें आयाकि इनसब संगठनोंने कभी भी "राष्ट्रीयतावादी" शब्दका व्यवहार किया हो, इन सभी दलोंने कभी भी इसपर विशेष ध्यान देनेकी चेष्टा न की, और फलस्वरूप वे राष्ट्रीय धारणाके अनुसार कुछ कर भी न सके। ने० सो०ज०व०पार्टी ही प्रथम है जिसने कि इस शब्दको उचित रूपमें देखा और इसके महत्वको पहचाना, हमारे इस दलने इसके गुणोंको अपनाया और सौभाग्यवश आज वे सर्वसाधारणमें उपस्थित प्रतीत होते हैं। हमारे आन्दोलनने अपने प्रचार-कार्यसे राष्ट्रीयतावादी विचारोंकी शक्तिको भलीभांति प्रमाणित कर दिया है। इसके लाभका लोभ अन्य सभी दलोंको कमसे कम इसकी इच्छाका,बहानामात्र करनेके लिये बाध्य कर रहा है।

छठवां अध्याय ।

प्रारम्भिक दिनोंका संघर्ष और वक्तृता-शक्तिका प्रभाव

फ़रवरी २४, १९२० ई० को हौफ़ हौफेस्टसलकी विराट सभा अभी समाप्त ही हो पाई थी कि हमें एक दूसरी सभाके आयोजनकी चिन्ता प्रतीत हुई। अबतक हमलोगोंने प्रतिमाह अथवा प्रतिपक्ष म्युनिक नगरमें एक सभासे अधिकका कार्यक्रम बनाने का साहस नहीं किया था, किन्तु अब प्रति सप्ताह एक विराट सभा करनेका विचार किया गया।

उस समय समस्त सभा-भवन राष्ट्रीयतावादी-समाजवादी विचारमय प्रतीत होता था। क्रमशः हमारी सभाओंमें भीड़ ज्यादा होती जाती थी और जनताका ध्यान हमारी ओर आकर्षित होता जाता था। सभाकी कार्यवाही युद्ध-अपराधके विषयसे प्रारम्भ होती थी जिसके विषयमें तबतक किसीने भी विचार नहीं किया था, और तत्कालीन शान्ति-संधियों पर गम्भीर गवेषणा ही की गई थी। हमारे भाषणकी भीषण प्रणालीने इन विषयोंपर आवश्यक प्रकाश डाला और लोगोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट करनेमें महान सफलता प्राप्त की।

उन दिनों श्रमिकोंकी सभामें वर्सेलीजकी सन्धिके विषयमें खूब चर्चा छिड़ती थी, अर्थात् रिपब्लिकके ऊपर आक्रमण किया जाता

था, और यदि वह राजसत्तावादी नहीं होती तो उसे प्रगतिविरोधी कहा जाता था। वर्सिलीज आन्दोलनको काफी समालोचनाहुई,और नित्यप्रति बाधायें देखनेमें आया करती थीं। जनता तबतक होहल्ला मचाती रहती थी जबतक कि वक्ता अपनी वाकचातुरीसे उसे फुसला नहीं लेता था। ऐसी जनताको देख हमलोगोंने दीवालसे अपना सिर फोड़ लेनेकी इच्छा की! कैसे मूर्ख! वर्सिलीज सन्धिको न समझना कैसीलज्जाजनक और भद्दी बात! क्यावहसन्धि हमारी जातिकेहरे-भरे खेतको उजाड़नेके लिये यथेष्ट न थी? मै ही नहीं,किन्तु समस्त संसार कहेगा कि अवश्य थी—अवश्य थी। विनाशकारी मार्क्सवादी कार्य्यक्रम और शत्रुपक्षीय विषैले प्रचारने हमारी जनताको ज्ञानान्ध बना दिया और अभी भी कोई इस बातकी शिकायत नहीं कर सकता, दूसरे पक्षका अतुलनीय अपराध! इस भीषण अनैक्यताको नष्ट करनेके लिये मध्यश्रेणी-संसारने क्या किया,अथवा स्वतन्त्रताके कार्य्यको किस प्रकार और अच्छी तरहसे प्रोत्साहित किया गया? सब कुछ, कुछ नहीं!

मैंने स्वतः स्पष्ट रूपमें अपनी आंखोंसे देखा कि आन्दोलनको बाल्यावस्थामें ही ऐतिहासिक सत्यताके आधार पर युद्ध अपराधका स्पष्टीकरण होना आवश्यक था।

इस तरुण आन्दोलनके अभिमतानुसार किसी भी नये आन्दोलनके लिये कार्यक्षेत्रमें शीघ्र अग्रसर होना कठिन है, जबकि विरोधी लोग शक्तिशाली हों और जनताको अपनी कुछ बातोंसे—चाहे उनमें सत्यताका लेशमात्र भी न हो—विचारोंकी दुविधामें डाल सकते हैं।

मैंने कितने ही अवसरोंपर इन बातोंका अनुभव किया है, और ऐसे समय बातोंको उचित विचारधाराकी ओर प्रवाहित करनेके लिये महान विचार-शक्तिकीआवश्यकता है। अन्तिम अवसरमें मैंने जर्मन-जातिके प्राण हैक्यूबा पत्रको दक्षिणी टीरल प्रश्नको महत्वदेतेहुए देखा जोकि जर्मन-जातिके लिये हानिकारक था। "हम क्या कर रहे हैं," इसपर विचार किये बिनाही कितने तथाकथित राष्ट्रीयतावादी मनुष्य, संस्थायें एवं दल उस निराधार अफवाहपर लोकनिन्दाके भयसे विश्वास करने लगे,जिसका प्रचार यहूदियोंने किया था,औरमूर्खतापूर्वक उस प्रणालीके विरुद्ध-संग्राममें सहायता देने लगे,जिसे हम जर्मन वर्त्तमान समयमें इस भ्रान्त संसारके भविष्योत्थानका साधन समझते हैं, जब कि यहूदी-संसार धीरे-धीरे एवं दृढ़ताके साथ हमसे लड़ रहा है, हमारे तथाकथित देशभक्त उस व्यक्तित्व और प्रणालीके विरुद्ध अपने विचार प्रगट कर रहे हैं जो उन्हें एक ही बारके संघर्ष द्वारा यहूदियों के अन्तरराष्ट्रीय विषसे, राष्ट्रीयतावादका अनुसरण करते हुए,स्वतन्त्र करनेका साहस रखते हैं। शीघ्र ही यह प्रमाणित हो गया कि हमारे विरोधी, विशेषतः जब वे हमसे वादविवाद करते थे, कुछ सीमित दलीलों द्वारा अपने भाषणोंमें सर्वदाही हमारे विरुद्ध विष-वमन किया करते थे,इसने हमें जागृत एवं ऐक्यभावपूर्ण शिक्षाका ज्ञान कराया। और वास्तवमें बात भी यहीथी। आज मुझे इस बातका अभिमान है कि मैं उनके विषैले प्रचारके प्रभावको नष्ट करनेमेंही सफल नहीं हुआ हूं, किन्तु उसके निर्माताओंको उन्हींके शब्दों द्वारा लथेड़ सका हूं। दो वर्षोंके पश्चात मैं इस धूर्त्तताका अच्छा जानकार हो गया।

जब कभी मैं बोला,मेरे लिये विवादकालमें विचारोंके स्वभाव और रूपका स्पष्टीकरण कर लेना आवश्यक था,और इसप्रकार अपने भाषण को लच्छेदार भाषामें व्यक्त करना था। वास्तवमें यह बात थी कि मेरा इरादा प्रतिपक्षीय दलीलोंको इस तरह काटना था जिससे उनका खोखलापन अच्छी तरहसे जाहिर हो जाय।

यही कारण था कि एक वक्ताकी हैसियतसे सेनामें योग्यतापूर्वक बर्सिलीज सन्धिपर भाषण देनेके पश्चात मैंने अपने विचारोंमें परिवर्त्तन कर दिया, और अब मैंने "ब्रेस्ट लिटोभस्क एवं बर्सिलीजकी शान्ति-सन्धियोंपर" भाषण देना प्रारम्भ किया। मैंने वादविवादके उठते ही अपने पहले ही भाषणसे यह प्रमाणित कर दिया कि लोग लिटोभस्ककी शान्ति-सन्धिसे परिचित न थे; किन्तु यह हमारी पार्टीके बदौलत ही हुआ कि लोग विश्व-दमनकारी संधि-अस्त्रके लज्जाजनक रहस्यको समझ सके। इसकी स्थितिको सामने रखनेके कारण ही लाखों जर्मनोंने अच्छी तरहसे समझ लिया कि ब्रेस्ट-लिटोभस्कके अपराधके फलस्वरूप ही बर्सिलीजका प्रतिफल उन्हें मिला है! और इसलिये उन्होंने बर्सिलीजके विरुद्ध संग्राम करना अनुचित समझा, और बहुत अंशोंमें यह नैतिक सत्यताका निदर्शन था। अपने भाषणमें मैं दोनों संधियोंको एक साथ रखता, हरएक विषयमें परस्पर उनकी तुलना करता और बताता कि किस तरह एक दयालुतासे भरी हुई है और उसके विरुद्ध दूसरी निर्दयताकी चरम सीमा तक पहुंच चुकी है;इसका परिणाम अत्यन्त विचारणीय था। पुनः एकबार श्रोताओंके हृदयसे झूठका साम्राज्य सत्यके तेजबलके सामने विलीन

हो गया, और उन्हें एक वास्तविक प्रकाशका अनुभव हुआ, फलतः लोग वास्तविकताको जान गये।

ये सभायें मेरे लिये लाभदायक प्रमाणित हुई और धीरे-धीरे मैं सार्वजनिक सभाओंमें बोलनेवाला एक अच्छा वक्ता हो गया अर्थात् हजारोंकी सभामें लोगोंको अपने वशमें कर लेना मेरे लिये बांये हाथ का खेल हो गया।

हमारी पहली सभा इस बातसे प्रसिद्ध हो गई कि हमारा टेबुल छोटे छोटे विभिन्न प्रकारके इश्तिहारोंसे भरा हुआ था। हमलोगोंने अपने घोषित उद्देश्योंको ही दुहराया। परिणामतः उन क्रान्तिकारी भावनाओंकी उत्पत्ति हुई, जो आध्यात्मिक दृष्टिसे ठीक हैं।

एक वक्ता अपने श्रोताओं द्वारा ही अपना पथ निश्चित कर सकता है; अपने भाषणको सत्य प्रमाणित करते हुए, उसे इस बातका ध्यान रखना पड़ेगा कि लोग उसकी दलीलोंको अच्छी तरहसे समझ रहे हैं या नहीं, और उसके शब्द इच्छानुसार प्रभाव डाल रहे हैं या नहीं; श्रोताओंकी भावभंगी द्वारा ही वह इस बातको जान सकता है। यही बात लेखक और पाठकोंके सम्बन्धमें लागू होती है। अतः वह किसी सीमित भीड़की कल्पना करता हुआ किसी भी हालतमें भाषण नहीं दे सकता, किन्तु वह साधारण तरीकोंसे बोलनेके लिये बाध्य है। यदि वह ऐसा करनेमें अयोग्य है तो वह सर्वसाधारणके ऊपर अपना प्रभाव नहीं जमा सकता, क्योंकि वैसी दशामें उसमें भेदभावका आजाना आवश्यक है, और उस भेदभावके फलस्वरूप वह जनताकी नजरोंसे गिर जाता है।

मान लीजिये कि एक वक्ताको यह प्रतीत होता है कि जनता उसकी बातोंको नहीं समझ रही है, ऐसी दशामें उसे अपनी व्याख्याको इतना तत्वपूर्ण एवं स्पष्ट करना होगा जिससे प्रत्येक व्यक्ति उसकी बातोंको समझ,ग्रहण करने योग्य हो जाय; यदि वह इस बात का अनुभव करता है कि लोग उसकी बातें नहीं समझ रहे हैं, उसे अपने विचारोंको इस प्रकार व्यक्त करना होगा जिससे कमजोरसे कमजोर दिमागवाला भी उसके भावोंको समझ सके, पुनः, जब उसे यह प्रतीत हो कि उसकी सत्य दलीलोंपर लोगोंको पूर्ण विश्वास नहीं हुआ है,उसे बारबार अपनी दलीलोंको नये-नये उदाहरणोंसे उपस्थित करना पड़ेगा और स्वयं ही जनताकी अकथित शंकाओंकी आकर्षक ढंगसे व्याख्या करनी होगी, ताकि उनका समाधान हो जाय और जनताके हृदयमें उनके प्रति किसी प्रकारकी संदिग्ध भावना न बनी रहे; और उसे तबतक अपना यह क्रम जारी रखना होगा जबतक कि वह विरोधियों की बोलती न बन्द करदे और उन्हें अपने बशमें न ले आये ।

भ्रान्त धारणाओंको, जो कि आन्तरिक ज्ञानकी अपेक्षा लोगोंकी अज्ञानता एवं भावनाओंसे परिचालित होती हैं, दूर करनेका यह तरीका कोई नया नहीं है। स्वाभाविक बुद्धिपूर्ण इस घृणाकी सीमाको गलत धारणओंकी शुद्धि करनेकी अपेक्षा, अतिक्रम करना बहुत ही कठिन है। अज्ञानता एवं गलत धारणाओंको शिक्षा द्वारा हटाया जा सकता है—किन्तु भावनाओंसे कारण उत्पन्न बाधाको दूर करना टेढ़ी खीर है और कुछ नहीं, गुप्त शक्तियां ही यहां सफलता प्राप्त

कर सकती हैं; यह एक लेखकके लिये असम्भव है, किन्तु हां, एक वक्ता कठिनता पूर्वक इसे कर सकता है ।

जिस आश्चर्यजनक शक्ति द्वारा मार्क्सवादने जनताके ऊपर अपना प्रभाव जमाया है, वह यहूदी विद्वानोंका मुंहजबानी लिखित काम नहीं है, किन्तु वक्तृता-प्रचारका प्रभाव है जिसने कई वर्षोंमें जनताको अपनी ओर आकर्षित किया है; एक हजार जर्मन-कार्यकर्त्ताओंमेंसे शायद एकसौ ही मिलेंगे जिन्हें मार्क्सकी उस पुस्तकका ज्ञान हो, जिसका अध्ययन अपनेको विद्वान कहनेवाली यहूदी-श्रेणी द्वारा हुआ था, किन्तु आन्दोलनके अन्य अनुयायी उसके विषयमें कुछ भी नहीं जानते थे। वह पुस्तक सवसाधारणको ध्यानमें रखकर नहीं लिखी गई थी,किन्तु संसार-विजयके इच्छुक यहूदियोंके लाभार्थ उसका निर्माण हुआ था,आन्दोलनका संचालन किसी दूसरे ही भिन्न तरीकेसे होता था। यह वही विषय है जो कि मार्क्सवादी और मध्य-श्रेणीके प्रेसोंमें अन्तर बताता है। आन्दोलक मार्क्सवादी प्रेस द्वारा लिखा-पढ़ा करते थे,जब कि मध्यश्रेणी प्रेसको अपने लेखकोंके कारण आन्दोलनको संचालित करनेके लिये चुना गया।

एक अज्ञानता हमें संसारमें सर्वप्रथम जर्मन इन्टेलिजेन्जिया समाचार पत्रमें देखनेको मिली कि एक वक्ताकी अपेक्षा एक लेखक अधिक प्रभावशाली माना जा सकता है। नेशनलिष्ट समाचारपत्रमें इस विषय पर लिखते हुए एक लेखकने कहा है कि किसी अच्छे वक्ताका भाषण सुननेमें जितना आनन्द आता है एवं उसका जितना प्रभाव पड़ सकता है,उतना उसके मुद्रित रूपसे नहीं। मैंने तत्सम्बन्धी युद्धकालीन

और कई लेखोंको एकत्रित किया, संयोगवश मुझे युद्ध-मन्त्री लायड जार्जके कई लेख मिले,मैंने सूक्ष्म दृष्टिसे उनकी परीक्षा की,मेरा ऐसा करनेका उद्देश्य किसी अन्तिम परिणाम पर पहुंचना था। सौभाग्य-वश मुझे सफलता प्राप्त हुई और मैंने भलीभांति देखा कि वह वक्तृ-तायें विद्वता और ज्ञानकी किस तरह तुच्छता प्रगट करती हैं। मैंने उस तरहकी कुछ वक्तृताओंका संग्रह किया, और मुझे हंसी आई कि जनतापर प्रभाव जमानेवाली उन वक्तृताओंको समझनेमें एक साधा-रण जर्मन भी असफल रहा। इस भले आदमीने अपने वक्तृताप्रसंगमें जो कुछ कहा वह श्रोताओंपर प्रभाव जमानेके लिये यथेष्ट था, और वास्तवमें एक ब्रिटिश चापलूसके लिये ऐसा करना आवश्यक भी था। साधारण दृष्टिकोणसे वेल्समैनकी वक्तृतायें एक आश्चर्यजनक कार्य-कुशलताकी परिचायक थीं, और उन्हें वास्तवमें स्पष्ट तथा प्रभाव-शाली माना जा सकता है,क्योंकि हर प्रकारसे उनका सारांश जाति-हित करना था।

उनकी तुलनामें बेथमैन हौलवेगकी बकबकको सामने रखिये, जिसकी वक्तृतायें विद्वतापूर्ण मानी जा सकती हैं, किन्तु किसी भी दशामें जातिके लिये हितकारक नहीं,उन्हें देखते हुए मनुष्यकी अयो-ग्यता प्रगट होती है।

निस्सन्देह लायडजार्जमें बेथमैन हौलवेगकी अपेक्षा यह विशेषता थी कि उसकी वक्तृताओंका तरीका ऐसा आकर्षक था कि जनतावश में हो जाती थी, और उसकी इच्छानुसार उसकी बातोंको ध्यानपूर्वक सुनती और समझती थी। वक्तृताओंकी प्राचीनता, उनको व्यक्त

करनेका ढङ्ग, उनको समझानेकी शक्ति और सीधे तथा सरल उदाहरणोंने वेल्समैनकी राजनीतिक योग्यताको प्रगट कर दिया।

सार्वजनिक सभाओंका जनतापर बहुत ही प्रभाव पड़ा करता है और वह एक नये आन्दोलनमें सम्मिलित हो, जातिसम्बन्धी विषयोंको समझने योग्य होती है, इसका प्रोत्साहनकारी एवं शक्तिकारी प्रभाव अत्यन्त लाभदायक होता है। लोग इस जादू-भरे प्रभाव के कारण जाति-हितके लिये अपने आपको समर्पित कर देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि हजारोंकी इच्छा, आकांक्षायें और शक्तियां एक स्थानपर एकत्रित होती हैं। कोई भी मनुष्य जो ऐसी सभाओंमें एकबार भी उपस्थित होता है, उसके सन्देहात्मक विचार वहांके वातावरणके प्रभावसे गायब हो जाते हैं और वह जातिका एक सदस्य हो जाता है। हमारा राष्ट्रीयतावादी आन्दोलन इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता।

—*—

सातवां अध्याय।

लाल शक्तियोंके साथ संघर्ष।

उन्नईस सौ उन्नईस बीस ई० में साथही साथ १९२१ में भी मैं तथाकथित मध्यश्रेणीकी कई सभाओंमें उपस्थित रहा। मैं मध्यश्रेणीके उन उपदेशोंके विचारोंको जानना चाहता था जो कि हमसे भिन्नथे,औरजब मैंने उनके उद्देश्योंको समझा मेरी समझमें आ गया कि मध्यश्रेणीका कितना महत्व है,'और मुझे इसपर बड़ाही आश्चर्य हुआ। मैंने डेमोक्रेटों,जर्मन नेशनलिस्टों,जर्मनपीपुल्स पार्टी और बवेरियन पीपुल्स पार्टीकी कई सभाओंका निरीक्षण किया। उस समय जो बात मेरे दिलको लगी, वह दर्शकोंकी दृढ़ एकता थी। दल अनुयायीहो ऐसी सभाओंमें प्रायःभाग लिया करते थे। वहांकिसीभी प्रकारका अनुशासन न था,और सब कुछ देखते हुए ऐसा प्रतीत होता था कि यह क्रान्तिकारी जनताकी एक सभा नहीं, किन्तु ताशके जुए खेलनेवालोंका एक जमघट है। शान्त वातावरण रखनेके लिये वक्ता अपने भरसक कुछ नहीं उठा रखते थे। उनके भाषण देनेके ढङ्गसे ऐसा जाहिर होता था कि मानों कोई आदमी समाचारपत्रका लेख पढ़ रहा हो अथवा भाषणकी उपयोगिताको न समझते हुए क्रान्तिकारी शब्दावलीको छिपा, निस्सार बक-बक हो रही है। यहां एक प्रकारकी दिल्लगी हो सकती थी,जिससे मञ्चपर उपस्थित वक्ता महो-

दयको सभ्यतापूर्वक उनकी भूलोंके लिये दण्डित किया जा सकता था। समस्त श्रोतामण्डली एक घण्टेके तीन हिस्से तक शोरगुल अथवा किसी तरह अन्य गोलमालमें व्यस्त रहा करती थी। अन्तमें सभापति एक जर्मन देशभक्तिपूर्ण गीत गाया करता था।

इस भांति सभा समाप्त हो जाती थी—अर्थात् प्रत्येक आदमी जानेमें जल्दी मचाया करता था, कोई मदिरा-पानके लिये,कोई जलपानके वास्ते और अन्य दूसरे लोग ताजो हवा खानेके लिये।

किन्तु इसके विपरीत, नेशनल सोशलिस्ट सभायें शान्तिपूर्ण होती थीं। उस समय दो सांसारिक दृष्टिकोण परस्पर संघर्षमें तल्लीन थे, और उनका निर्णय देशभक्तिके गायनोंसे नहीं,किन्तु राष्ट्रीय और जनप्रिय भावनायुक्त उमङ्गसे हुआ।

हमारी सभाओंके लिये यह आवश्यक था कि वहां पूर्ण अनुशासनकी स्थापना की जाय और सभापतिका कथन सर्वमान्य हो।

हमारी सभाओंमें भिन्नमतावलम्बी लाल झन्डेके अनुयायी भी आया करते थे। वे प्रायः ही कुछ आन्दोलकोंके साथ एक ठोस गुट्टके रूपमें हमारे बीच आते थे, और उनका यही कथन था कि "हम इसे तुम्हारे साथ आज रात्रिको फहरायेंगे".और ऐसे समयमें हमारे सभापतिकी बुद्धिमत्ता एवं हमारे सभा-भवनके निरीक्षकोंकी कार्यकुशलताके परिणामस्वरूप वे शान्त हो,हमारे बीच शामिल हो एक प्रकार का आनन्द लेने लगते थे।

बहुत समयके गम्भीर एवं ठोस विचारके पश्चात हमलोगोंने यह निश्चित किया कि हमलोगोंके पोस्टरों (एक प्रकारके बड़े इश्तिहार)

का रङ्ग लाल रहेगा, ऐसा करनेका हमारा उद्देश्य उनकी सहानुभूति प्राप्त करना था, इस प्रकार उन्हें उभाड़ना था और अपनी सभाओंमें आनेके लिये प्रेरित करना था.जिससे कि उनसे खुले तौरसे बातचीत करनेका अवसर प्राप्त हो।

तब हमारे विरोधियोंने जागृत श्रमिकवर्गके नाम इस आशयकी अपील निकाली कि वह हमारी सभाओंमें उपस्थित हो, जैसा कि हमारा दल श्रमिकवर्गको कहा करता था।

हमारी सभाओंमें समयके पौन घन्टे पूर्व ही मजदूरोंकी बहुत ज्यादा भीड़ होजाया करती थी। उनमें इतनी आत्मशक्ति होगई थी कि वे किसी भी समय आज्ञानुसार आगे बढ़नेके लिये प्रस्तुत थे। किन्तु यह सब सर्वदा ही विपरीत होता था। कुछ ऐसे लोग भी आते थे जिनके हृदयमें हमारे आन्दोलनके प्रति शत्रुता थी और वे शीघ्र ही चले जाते थे,जो हो उनका उद्देश्य किसी हालतमें अपना सहयोग नहीं देना था,किन्तु विचारात्मक उपायोंसे हमारे सिद्धान्तोंकीसत्यता की समालोचना कर, उनकी परीक्षा लेना था।

तब यह कहा गया—"श्रमिकों! नेशनलिष्ट आन्दोलकोंकी सभाओंका बहिष्कार करो"! इसी तरहकी चालबाजियां रेड प्रेसकी ओर से भी दर्शनीय थीं।

जनताको बहुत ही आश्चर्य हुआ। पुनः अकस्मात नीतियोंमें परिवर्त्तन हुआ,और कुछ समयके लिये हमलोग मानवसमाजके कट्टर शत्रुकी भांति देखे गये। यह कुछ नहीं, विरोधियोंके चालबाजीभरे हथकन्डे थे। हमारे अपराधोंको सिद्ध करनेके लिये क्रमशः कितने ही

लेख निकाले गये, और हमारे विषयमें मनगढ़न्त कितनीही कहानियां बनाई गईं। इसप्रकार हमें बदनाम करनेका कोई भी तरीका आदिसे अन्ततक नहीं छोड़ा गया। किन्तु थोड़े ही समयमें विरोधियोंको मुंहकी खानी पड़ी, और उन्हें विश्वास होगया कि इस तरहके झूठे प्रचारका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, वास्तवमें इसका यह प्रभाव पड़ा कि सर्वसाधारणका ध्यान सीधे हमारी ओर आकर्षित हुआ!

इससे हमारी सभाओंको तोड़नेकी नीति विपक्षी नेताओंकी कर्त्तव्यविहीनता एवं कायरताका प्रदर्शन करती है। प्रत्येक महत्वपूर्ण अवसरपर ये नीच सभा-भवनके बाहर खड़े हो गोलमालके परिणाम की प्रतीक्षा किया करते थे।

ऐसे अवसरोंपर हम अपनी सभाओंकी रक्षाका भार अपने ऊपर लेनेके लिये बाध्य थे, सरकारी अधिकारियों द्वारा ऐसी रक्षाकी आशा नहीं की जा सकती, इसके विपरीत अनुभव बताता है कि उनका उद्देश्य सर्वदा ही उपद्रवकारियोंका साथ देना रहा है। सरकारी अधिकारियोंका वास्तविक कार्य्य सभाको भङ्ग करना था, अर्थात उसे पूर्णतया रोकना था, वास्तवमें, हमारे विरोधियोंका सभामें आनेका उद्देश्य हमारी अग्रगतिमें बाधा प्रदान करना था।

इसप्रकार, हमने सोच लिया था कि पुलिसके संरक्षणमें होनेवाली कोई भी सभा जनताकी दृष्टिमें आयोजकोंकी मर्यादामें बट्टा लगानेवाली होती है।

हमारे अनुयायी सर्वदा ही लाल दलवालोंकी बाधाओंका सामना वीरतापूर्वक किया करते थे। अन्तमें उस दलके पन्द्रह या बीस आद-

मियोंको, जो हमारी सभाओंमें उपस्थित रहते थे,चुप होनाही पड़ता था, और जो लोग दो या तीन वार हमारी सभाओंमें इस प्रकार लांछित हो जाते थे,वे फिर कभी हमारी सभाओंमें आ, गोलमाल मचानेका नाम भी नहीं लेते थे।

यह सबलोग जानते थे कि विद्रोह हमारी जातिकी संचालक मध्य-श्रेणीके विनाशकारी उपायोंके लिये किस तरह उपयोगी और लाभदायक था। यद्यपि ऐसे बहुतेरे लोग थे जोकि अपने बलसे जर्मनजातिकी रक्षा कर सकते थे,किन्तु कोई भी आगे बढ़नेको नहीं तैयार था। किस तरह बहुधा हमारे नवयुवकोंकी आंखें चमक उठती थीं,जब मैं उनके सामने उनके ध्येयकी व्याख्या किया करता था और उन्हें विश्वास दिलाता था कि इस पृथ्वीकी योग्यता तबतक प्रमाणित नहीं हो सकती जबतक शक्तिकी उपासना न की जाय, अर्थात सन्धिदेवी तबतक विचलित नहीं हो सकती जबतक कि युद्धदेवता अपना अस्त्र न संभाल लें,और इसप्रकार शक्ति द्वारा ही शान्तियुक्त सन्धिकी सहायता और रक्षा हो सकती है। इसभांति सैनिक सेवाका भाव उनमें और स्थायी रूपमें उपस्थित प्रतीत हुआ—एक कर्त्तव्य वाध्य मृतवत सैनिकके समान नहीं,किन्तु जातिके प्रति अपनानिस्वार्थ कर्त्तव्य समझते हुएहर समय और हर जगह अपनी प्राणाहुति देनेवाले सैनिकके समान।

किस तरह वे नवयुवक हमारी सहायता करनेमें सफल हुए!

बर्रोंके झुण्डके समान वे हमारी सभाओंके उपद्रवकारियों पर संख्यामें कम होते हुए भी टूट पड़ते थे, जो हो उन्हें अपने जानकी बिलकुल परवाह न थी, उनका विचार हर तरहसे हमारे आन्दोलनके विचारोंको स्पष्ट कर हमें सहायता प्रदान करना था।

१९२० ई० के ग्रीष्मकाल तक शान्ति-व्यवस्थापक यह विभाग एक निश्चित रूप प्राप्त कर चुका था, और १९२१ ई० के शरद्काल तक इसके कई विभिन्न गिरोह बन गये, जो पुनः आगे चल छोटी छोटी श्रेणियोंमें विभक्त कर दिये गये।

ऐसा होना आवश्यक था,क्योंकि सभा करनेका हमारा कार्यक्रम उत्तरोत्तर व्यापक होता जा रहा था।

सभाओंमें शान्ति-व्यवस्था रखनेके लिये हमारे इस संगठनका उद्देश्य एक कठिन प्रश्नको हलकरना था। उस समयतक हमारे आन्दोलनका कोई सी अपना झंडा और स्मृति-चिन्ह न था। इन चिन्हों का अभाव हानिकारक ही न था, किन्तु भविष्यके दृष्टिकोणमें असह्य था, क्योंकि दलके सदस्योंको अपनी सदस्यताका बिल्कुल ध्यान न था, और भविष्यके लिये आन्तरराष्ट्रवादियोंके विरुद्ध मोर्चा लेनेके लिये आन्दोलनका कोई भी चिन्ह न होना असह्य था।

अपनी युवावस्थामें भावनाके दृष्टिकोणसे इस प्रकारके चिन्हका आध्यामिक महत्व मुझे कई समय प्रतीत हुआ। युद्धके पश्चात,बर्लिनमें रायल पैलेसके सामने होनेवाली एक मार्क्सवादी जन-सभामें मुझे उपस्थित रहनेका अवसर मिला था। उस सभाकी बाहरी शक्ति लाल झंडों,लाल फूलों और लाल इश्तिहारोंसे जानी जा सकती थी,जिसमें लगभग १२०,००० आदमी उपस्थित थे,मैंने उसी समय अनुभव किया और समझा कि रास्तेमें चलते-फिरते आदमीपर इसप्रकारके आकर्षण भरे एक विशेष रंगसें रंगे कपड़े वा कागजका कितना प्रभाव पड़ता है।

मध्यश्रेणी एक दलकी है सियतसे कोई भी सांसारिक सिद्धान्तको नहीं उपस्थित करती, और इसलिये उसका कोई झंडा भी नहीं है।

वह दल देशभक्तोंसे भरा हुआ था और वह रीचके रंगमें रंग गया।

हमारे प्राचीन साम्राज्यका काला-सफेद-लाल हमारी परिचित मध्यश्रेणी द्वारा उसके झंडेके रूपमें अपनाया गया।

यह प्रत्यक्ष है कि किसी ऐसे दलका चिन्ह, जो कि मार्क्सवादके साथ अपमानजनक सहयोग कर पराजित होसकता था,उस चिन्हकी भांति कार्य्य करनेमें सर्वथा अयोग्य था जिसका उद्देश्य मार्क्सवाद का विनाश करना था। जो हो एक अच्छा जर्मन उन प्राचीन रंगोंके प्रति प्रेम और श्रद्धा अवश्य रक्खेगा, उसे उसके गौरवका उस समय ध्यान आता है जब कि उसे याद आती है कि किस तरह अपनी युवावस्थामें उसने और अन्य देशवासियोंने उस झण्डेके नीचे रह अपना पवित्र खून पानीकी तरह बहाया है, किन्तु उस समय उसके दुःखकी सीमा नहीं रह जाती जब कि उसे जान पड़ता है कि भविष्य-संग्राममें यह झण्डा उसके पथ-प्रदर्शनमें सर्वथा अयोग्य प्रमाणित होगा।

यही कारण था कि हम नेशनल सोशलिष्टोंने यह विचार किया कि यह पुराना चिन्ह हमारे लिये उपयोगी नहीं होगा,क्योंकि हमारा उद्देश्य सीमित नहीं, व्यापक था, हमारी कदापि यह इच्छा नहीं थी कि प्राचीन साम्राज्यके नष्ट मुर्देको फिरसे उखाड़ा जाय,किन्तु हमारा विचार एक नये आदर्शवादी राष्ट्रकी सृष्टि करना था।

आज जो आन्दोलन इस उद्देश्यके लिये मार्क्सवादसे मोर्चा ले रहा है उसे नये राष्ट्रके चिन्हको अपने झंडेके रूपमें स्वीकार करना होगा।

मेरा व्यक्तिगत विचार प्राचीन रंगोंको रखनेका था। असंख्य परीक्षाओंके पश्चात मैंने एक नया स्वरूप स्थिर किया—एक झंडा जिसकी जमीन लाल हो तथा उसके चारों तरफ सफेद रङ्गका घेराहो और उसके बीचमें एक स्वस्तिक काले रङ्गका कांटा बना रहे। बहुत देरकी जांच-पड़तालके बाद मैंने झंडेके आकार तथा सफेद घेरेके बीच अनुपात और स्वस्तिक कांटेके ढङ्ग एवं घनेपनको स्थिर किया, और यह तबसे ऐसा ही चला आता है।

व्यवस्था रखनेके लिये युवकोंके लिये बाजूबन्द चिन्होंको भी वैसा ही बनाया गया—लाल, चारों तरफ सफेद घेरा और बीचमें स्वस्तिक काले रङ्गका कांटा।

यह नया झंडा सर्वप्रथम १९२० ई० के ग्रीष्मकालमें सर्वसाधारण के सामने आया।

दो वर्षके पश्चात, हमारे हजारों आदमी तूफानी सेनाके एक अंग के समान माने जाते थे, और यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि इस लड़ाके संगठनकी विजयके लिये एक माध्यम स्थिर किया जाय।

उस समय मार्क्सवादी दलोंको छोड़, म्युनिकमें कोई भी ऐसा राष्ट्रीयतावादी दल न था जो हमारी भांति सार्वजनिक प्रदर्शन कर सकता। म्युचेनर किन्डकेलरमें एक समय ५०००आदमियोंका विराट प्रादर्शन हुआ; हमारी सभाओंमें अपार भीड़ होती थी। विशेषकर सर्कस क्रोनकी अपार भीड़को हम नहीं भूल सकते।

जनवरी १९२१ ई० के अन्तमें जर्मनीकी चिन्ताका एक और कारण उपस्थित हुआ। लंडन-ऐलानके रूपमें पेरिसकी संधि होने

वाली थी, जिसके द्वारा जर्मनीको युद्ध-हानिके बदलेमें १०० मीली-यर्डस सुनहले मार्क्स (एक प्रकारका सिक्का) देने पड़े।

दिनपर दिन बीतते जाते थे और किसी भी बड़े दलने इस भयानक घटनापर ध्यान नहीं दिया, और कार्यकर्त्ताओंका संगठन भी इसके प्रतिवादमें सार्वजनिक प्रदर्शन करनेकी तिथिको स्थिर नहीं कर सका।

१ ली फरवरी, मंगलवारको मैंने अन्तिम निर्णय मांगा। मुझे बुधवारतक रुकनेके लिये कहा गया। उस दिन मैंने स्पष्ट रूपसे पूछा कि यदि सभा होगी तो कब और कहां होगी। अभी भी उत्तर असन्तोषजनक और अनिश्चित था; उसमें कहा गया था कि इसी सप्ताह के अन्दर एक दिन कार्यकर्त्ताओंका प्रदर्शन होगा।

इस समय मेरा धैर्य जाता रहा और मैंने अपने उत्तरदायित्वपर एक प्रतिवाद-सभा बुलानेका निश्चय किया। बुधवारकी दोपहरको मैंने पोस्टरोंको लिख डाला और ३ फरवरीके लिये सर्कस क्रोन भाड़े पर ले लिया।

उन दिनों मेरा यह भीषण साहस था। यह निश्चित न था कि हमलोग सभा-भवनको भर सकेंगे,और साथ ही सभाके भंग होनेका खतरा था। एक चीज निश्चित थी—एक असफलता हमें आगामी कालके लिये फेंक देती।

हमारे पास विज्ञापन करनेके लिये एक ही दिन था। दुर्भाग्यवश वृहस्पतिवारको प्रातःकाल ही वर्षा होगई,और हमारे मनमें इस बातका भय समा गया कि इस मौसिममें एक सभामें जानेकी अपेक्षा

लोग घरमें रहना अधिक पसन्द करेंगे, विशेषतः ऐसे समयमें जबकि हिंसा और हत्याकी भावना जागृत हो रही थी।

बृहस्पतिवारको मैंने दो लारियां भाड़ेपर लीं तथा उन्हें जहां तक सम्भव हो सका लाल कपड़े और पोस्टरोंसे ढकवा दिया गया और उनपर दो झण्डे लगवा दिये गये; प्रत्येकमें दलके पन्द्रह या बीस सदस्य बैठे थे; उन्हें आज सन्ध्याको होनेवाली सभाके प्रचारार्थ पर्चों वा इश्तिहारोंको बांटनेके लिये सड़कोंपर तेज रफ्तारसे घूमनेका आदेश दिया गया। यह पहला ही समय था, जबकि मार्क्सवादियोंके अलावा किसी और दलके अनुयायियोंका झण्डा लौरियों पर घुमाया गया।

जब मैंने सभा-भवनमें प्रवेश किया, मेरी प्रसन्नताका वारापार न था, जैसाकि इसके पूर्व हौफ़ हौसफेस्टसलकी सभामें मुझे प्रतीत हुआ था; किन्तु ऐसा तबतक न था जबतक कि मैंने उस भीड़को शक्तिपूर्वक चीरते हुए, मंचपर उपस्थित हो, सफलताके आनन्दको नहीं समझा। मेरे आनेके पूर्व ही सभा-भवन हजारों आदमियोंसे ठसाठस भरा हुआ था।

मेरा प्रथम विषय "भविष्य अथवा नाश" था। मैंने भाषण देना प्रारम्भ किया और मैं लगभग अढ़ाई घंटेतक बोला। डेढ़ घंटेके बाद ही मुझे अनुभव हो गया कि मुझे सभामें सफलता प्राप्त होरही है।

मध्यश्रेणीके समाचार पत्रोंने इस सभाको राष्ट्रीयतावादियोंका एक जमघट बताया; अपने स्वाभाविक व्यवहारानुसार उन्होंनेइसके आयोजकोंके विषयमें कुछ भी नहीं लिखा।

१९२१ ई० के इस प्रस्थानके पश्चात म्युनिकमें हमारी सभाओं की और अधिक प्रसिद्धि होगई। मैंने एक सप्ताहमें एकके बजाय प्रति सप्ताह दो सभाओंका आयोजन किया;वास्तवमें, मध्यग्रीष्मकाल और शरद्कालमें कभी-कभी तीन सभायें भी हो जाया करती थीं। अब सर्वदा ही हमलोग सर्कस क्रोनमें इकठ्ठा होते थे, और हमारे संतोपके लिये सभी सभायें सफल हुआ करती थीं।

इसका परिणाम आन्दोलनके सदस्योंकी संख्या-वृद्धि हुई।

स्वभावतः हमारे विरोधी इन सफलताओंके सामने शान्त नहीं होरहे थे। इसलिये उन्होंने हमारी सभाओंकी अग्रगतिको रोकनेका एक अन्तिम विप्लवी प्रयत्न किया। कुछ दिनोंके बाद उनका दुष्प्रयत्न सामने आया। हौफ्रे हौसफेस्टसलकी एक सभाको,जिसमें मैं भाषण देनेवाला था, भंग करनेका विचार किया गया। नवम्बर ४,१९२१ई० को संध्या छः और सातके बीच मुझे यह सूचना मिली कि सभा भंग की जायेगी।

एक दुर्भाग्यपूर्ण अवसरके कारण,हमलोग इसके बारेमें शीघ्र ही कुछ न समझ सके। उस दिन हमलोगोंने अपने पुराने कार्य्यालय स्टरनेकरगैसिको छोड़ दिया था, हालांकि हम पुरानेके बाहर होचुके थ किन्तु अभी भी हमलोग नयेमें नहीं थे,क्योंकि अभी भी पुरानेमें काम जारी था। इसका परिणाम यह हुआ कि सभामें व्यवस्था रखने वालोंका अभाव होगया;और कुछ नहीं,किन्तु ४६ आदमियोंका निर्बल गुट्ट हमारे पास सभामें मौजूद था, एवं वहां टेलीफोन वगैरहका भी कोई ऐसा प्रबन्ध न था जिससे एक घंटेके बीचमें काफी आदमियोंको

सभामें एक बहुत बड़ी भीड़ वीरतापूर्वक अपनेको बचाती हुई एक कोनेमें खड़ी थी। एकाएक पिस्तौलके दो कारतूस प्रवेश-द्वारकी ओरसे छोड़े गये,और वहां एक प्रकारका भीषण गोलमाल मच गया। मेरा हृदय युद्धस्मृतियोंकी इस पुनरावृत्तिसे आनन्द विभोर हो उठा। यह बताना सर्वथा असम्भव था कि किसने पिस्तौल छोड़ी, किन्तु मैं यह स्पष्ट रूपसे देख सका कि हमारे नवयुवकोंके प्रत्याक्रमणसे विरोधियोंका अन्तिम गिरोह सभा-भवनसे निकल भागा।

करीब पच्चीस मिनटमें हमलोगोंने परिस्थितिको काबूमें करलिया। हरसैन ऐसरने, जो कि उस सभाका सभापति था, घोषणा की कि "सभा जारी रहेगी, वक्ताको बोलने दिया जाय" इस प्रकार मैं भाषण देने लगा।

सभा समाप्त ही हुई थी कि अपने हाथोंको हिलातेहुए एक पुलिस लेफ्टिनेन्ट गरजता हुआ आया और बोला—सभा बन्द हो गई है, मुझे इस पर हंसी आई, वास्तवमें यह सरकारी रुआब था।

हमलोगोंने उस संन्ध्याको बहुत कुछ सीखा, और हमारे विरोधियोंको भी वह सबक नहीं भूला जो हमने उन्हें दिया था।

१९२३ ई० तक म्युचेनर पोस्टने श्रमिकवर्गके विषयमें कुछ लिखनेका साहस भी नहीं किया।

आठवां अध्याय।

शक्तिशाली ही विजयी होता है।

नागरिकोंको उस समय खुशी होती है और पुनः विश्वास हो जाता है जब वे यह सुनते हैं कि विभिन्न मजदूर दल एक ट्रेड यूनियनमें सम्मिलित होरहे हैं, और उस तत्वको प्राप्तकर चुके हैं जो उनमें परस्पर एकता स्थापित करता है तथा उसे छोड़ते हैं जो उन्हें विभिन्न दलोंमें विभाजित करता है। प्रत्येक आदमीको यह विश्वास होगया कि यूनियन एक प्रकारकी शक्ति प्राप्ति है, अर्थात छोटे छोटे दल इस रूपमें परिवर्तित हो शक्तिशाली बन गये। और अभी भी यह अधिकांश अंशोंमें गलत है।

कोई आदमी किसी सत्य बातकी घोषणा करता है, निश्चित समस्याके सुलझावके लिये अपील करता है, एक उद्देश्यको निर्धारित करता है, और अपनी इच्छाओंके अनुभवको उद्देश्य रूपमें रख एक आन्दोलन प्रारम्भ करता है। -

इस दशामें यह किस प्रकार माना जा सकता है कि एक दल अथवा एक यूनियनकी स्थापनाके उद्देश्यका कार्यक्रम स्थायी दोषोंको दूर करना है अथवा भविष्यमें चीजोंकी एक निश्चित दशाको प्राप्त करना है।

एक समय इसप्रकारके आन्दोलनमें जीवन आगया है और इसलिये यह अपनी पूर्वताके अधिकारका दावा कर सकता है। इसका प्राकृतिक रास्ता यह होगा कि जो लोग इस आन्दोलनके उद्देश्यसे सहानुभूति रखते हैं वे इसका समर्थन करेंगे और इस प्रकार इसकी शक्ति बढ़ायेंगे, जिससे संयुक्त इच्छाकी पूर्ति करनेमें उन्हें सफलता प्राप्त हो।

ऐसा क्यों नहीं है और किस प्रकार सब बातें होती हैं इसके दो कारण हैं। पहला कारण दुःखान्त विषयकी भांति वर्णित होसकता है, दूसरा दयनीय है,और उसकी नींव मानव निर्बलतापर निर्भर है।

(१) साधारतः संसारमें कोई भी मानव कार्य्य लाखों मनुष्योंके हृदयमें उपस्थित सार्वदेशिक इच्छाकी पूर्तिके लिये होता है।

किसी भी कालके महान प्रश्नोंका लाभदायक स्वाभाविक गुण उनको हल करनेमें लगे हुए हजारों मनुष्योंकी कर्मठतासे ही जाना जासकता है, और बहुत लोग तो यही कल्पना करते हैं कि विधाता ने उन्हें तथाकथित प्रश्नोंको सुलझानेके लिये ही भेजा है, और इसप्रकार शक्तियोंके इस स्वतन्त्र खेलमें जो अधिक वीर एवं शक्तिशाली होता है, वही अन्तमें समस्याको हल करनेमें कृतकार्य्य हो, विजयी कहलाता है।

इसका दुखान्त पक्ष यह है कि ये आदमी एक ही उद्देश्यके लिये विभिन्न तरीकोंसे संघर्ष करते हैं, प्रत्येक अपने अपने तरीकेपर विश्वास करता है,अपने सोचे हुए पथपर अग्रसर होनेके लिये अपनेको बाध्य समझता है, और दूसरोंको अनुचित पथगामी बताता है।

मानव वंश इसप्रकारके प्रयत्नोंसे, जिनका परिणाम दुःखजनक होता है, एक प्रकारकी शिक्षा ग्रहण करता है और भविष्यके लिये सतर्क हो जाता है।

इतिहासमें हम देखते हैं कि जो दो पथ जर्मन समस्याको हल कर सकते थे और जिनके प्रतिनिधि तथा विजेता अस्ट्रिया और प्रसिया थे—हैब्सवर्ग और होएनजौलर्न—उन्हें परस्पर कुछ सोच समझकर एकमत हो कार्य्य करना चाहिये था; और बचे हुए दूसरोंको अपनी संयुक्त शक्तिसहित एक या किसी दूसरे दलके साथ सहयोग करना चाहिये था। उस समय विजेता,जो कि सबसे योग्य था,एक संगठन के नीचे सबको एकत्रित कर एक ही पथपर अग्रसर हो सकता था; अस्ट्रियन उपायसे कभी भी जर्मन-साम्राज्यका संचालन नहीं हुआ।

अन्तमें जर्मन-एकतामें दृढ़, वह साम्राज्य, उन पचड़ोंमें पड़ गया जिन्हें लाखों जर्मन भाई-भाईकी पारस्परिक लड़ाईका भीषण चिन्ह समझते थे; क्योंकि जर्मन राजमुकुट कौनिगरैट्जके युद्धक्षेत्रमें विजित हो गया था, किन्तु पेरिसकी आसपासकी लड़ाईयोंमें नहीं, जैसा कि साधारणतः कहा जाता है। जर्मन-साम्राज्यकी नींव संयुक्त उपायोंकी संयुक्त इच्छाओंका परिणाम नहीं थी, किन्तु यह एक राष्ट्रके अधिकार-वादके लिये छिड़े युद्धका फल था, जिसमें प्रसिया विजयी घोषित हुआ था।

इसलिये हमें इस बात पर दुःखी नहीं होना चाहिये,क्योंकि कुछ इने-गिने आदमी ही उस उद्देश्यको प्राप्त करनेके लिये तत्पर हुए थे; और यह इसी प्रकार है कि हमलोग इस बातको समझते हैं कि जो

मनुष्य विजयी होता है वही सबसे अधिक बलवान और कर्मतत्पर माना जाता है।

(२) दूसरा कारण केवल दुखान्त ही नहीं है; यह दयनीय है। यह शत्रुके कथित सम्मिश्रणसे उत्पन्न होता है, यह चोरी करनेके लिये लोभयुक्त अभिमान एवं तत्परता,जो उपस्थित होती है,आश्चर्य! उसीका यह परिणाम है।

उस समय जब कि एक आन्दोलन आरम्भ होता है और अपना विशेष कार्यक्रम स्थिर करता है, मनुष्य उस उद्देश्यके लिये लड़नेका दावा करते हुए कार्यक्षेत्रमें आगे आते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे सत्यतापूर्वक आन्दोलनमें भाग लेनेके लिये इच्छुक हैं और इस-प्रकार उसकी पूर्वताके अधिकारको स्वीकार कहते हैं, किन्तु उनका प्रयोजन आन्दोलनके कार्यक्रमको चुरा, उसी आधार पर एक नये दलकी स्थापना करना होता है।

नये गिरोहों वा दलोंका अपनेको नेशनलिष्ट घोषित करते हुए १९१८-१९ ई० में संगठित होना उनके संस्थापकोंके लिये प्राकृतिक उन्नति थी। १९२० ई० में नेशनल सोशलिष्ट जर्मन वर्केर्स पार्टीको विजयी मान लिया गया। यहां कोई भी ऐसी चीज नहीं है जो इस बातको प्रमाणित कर सके कि संस्थापककी अपेक्षा दूसरे लोगोंने, जिन्होंने नये आन्दोलनकी सफलताके किये अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया था, कम त्याग किया है।

विशेषतः नम्बर्गकी जर्मन सोशलिष्ट पार्टीके जुलियस स्ट्रेचरके विषयमें ऐसी बात थी। दो दल एकही उद्देश्यको लेकर अग्रसर हुए

थे, किन्तु दोनों ही किसी भी प्रकारका काम करनेके लिये परस्पर स्वतन्त्र थे। जैसे ही स्ट्रेचरको स्पष्टतः और असंदिग्धतापूर्वक नेशनल सोशलिष्ट जर्मन वर्कर्स पार्टीकी उन्नति और शक्ति पर विश्वास हो गया, उसने जर्मन सोशलिष्ट पार्टीके लिये काम करना छोड़ दिया और अपने अनुयायियोंको हमारी पार्टीमें सम्मिलित होनेका आदेश दिया, जो कि प्रतिद्विन्दितामें विजयी हुई थी, और इसप्रकार वह और उसके साथी जनसाधारणके लिये होनेवाली लड़ाईमें भाग लेने लगे। उसका यह निर्णय वास्तवमें आदरणीय है।

हमें यह नहीं भूलना चाहिये था कि संसारमें कोई भी महान कार्य्य मेलजोलसे नहीं होता; किन्तु ऐसा व्यक्तित्व-अभिमानसे कारण ही हुआ करता है। मेलजोलसे प्राप्त की हुई सफलता, स्वभावतः प्रारम्भ से ही भविष्यके लिये असत्यताका बीज बोती है, और वास्तवमें, जो कुछ प्राप्त होता है उसका अपहरण हो जाता है। संसारका परिवर्तित महान विचार जो कि व्यक्तित्वकी शक्तिके बिना समझके बाहरकी बात है—किसी भी दशामें मेलजोलकी नीतिसे संचालित नहीं होसकता।

इसलिये हमारा राष्ट्रीयतावादी राष्ट्र राष्ट्रीय एकताके उपासक उस आन्दोलनकी इच्छा-शक्तिके अनुसार काम करेगा, जिसने बाकी सभी आन्दोलनोंको पराजित कर अपना रुतबा कायम कर लिया है।

—*—

नौवां अध्याय।

साम्यवादी कार्यकर्त्ताओंके संगठन पर विचार।

प्राचीन राष्ट्रकी शक्तिके तीन स्तम्भ थे—राष्ट्रका राजकीय रूप, शासकसंघ, और सेना। १६२८ ई० के विद्रोहने राष्ट्रका रूप बिगाड़ दिया, सेनाको असंगठित कर दिया और शासक संघको दलबन्दीके पचड़ोंमें डाल दिया और शासक संघको दलबन्दीके पचड़ोंमें डाल दिया।

फलस्वरूप राष्ट्र-सत्ताके सभी लाभदायक आधार नष्ट हो गये। राष्ट्र-सत्ता सर्वदा तीन प्रकारके तत्वोंपर निर्भय रहती है, जो कि सत्ताकी नींव पर स्थित हैं।

सत्ता वा अधिकारकी पहली लाभदायक बात जनप्रिय समर्थन है। किन्तु जो सत्ता केवल इसी नींवपर स्थित है, वह पूर्णतया कमजोर, अस्थायी और परमुखापेक्षी है। सत्ताका दूसरा तत्व प्रमाणतः उसकी शक्तिमें है। यदि जनप्रिय समर्थन और शक्ति दोनोंका संयुक्त गठन हो तो ऐक्ययुग उपस्थित हो सकता है, तथा सत्ताकी नींव और पुष्ट होजाती है, इसप्रकार उसे परम्परागत सत्ता कहा जासकता है। यदि एकबार जनप्रिय समर्थन, शक्ति और परम्परागत सत्ताका संयुक्त गठन होजाता है, उस सत्ताको अविचलननीय माना जा सकता है।

यह एक विचारणीय बात है कि जनताका गुट्ट—जिसे मैं बिचली वा मध्यश्रेणीके नामसे सम्बोधित करनेका इच्छुक हूं—कभी भी प्रमुखता नहीं प्राप्त करता; हां यह अवश्य है कि जब दो श्रेणियां-धनिक एवं श्रमिक--परस्पर लड़ती हैं, और उनमें जो विजयी होता है उसी को हरसमय हमारी यह श्रेणी आत्मसमर्पण करनेको प्रस्तुत रहती है यदि विजेता उपनिवेश प्राप्त करना चाहें, तो मध्यश्रेणी उनका पदानुसरण करेगी, यदि कोई अनुचित काम भी होजाय, तो मध्यश्रेणी कमसे कम उसे रोकनेके लिये कोई भी प्रयत्न करनेको नहीं प्रस्तुत है; क्योंकि इस श्रेणीका काम कभी भी लड़ना नहीं रहा है।

युद्धके पश्चात जो दृश्य उपस्थित हुआ वह इस प्रकार थाः—जातिकी महान मध्यश्रेणीने कर्त्तव्यबाध्य होते हुए अपना खून बहाया; श्रेष्ठ व्यक्तियोंकी श्रेणीने वीरतापूर्वक युद्धक्षेत्रमें आत्मोत्सर्गकर दिया; किन्तु सबसे निम्न श्रेणी जिसकी रक्षा पूर्णतया मूर्खताभरे नियमों वा कानूनोंसे होती थी, युद्धमें भाग लेनेके लिये प्रेरित नहीं की गई थी अर्थात् उसे युद्धकी कोई भी परवाह न थी, वह देशके धन्धोंसे पूर्णतया पृथक् थी।

हमारी जातिकी सुरक्षित इसी श्रेणीने उस समय बगावतका झंडा खड़ा कर दिया, और यह ऐसा करनेमें इसीलिये सफल हुई कि सभी श्रेष्ठ व्यक्ति उस समय युद्धमें फंसे हुये थे और इसप्रकार इसका मुकाबिला करनेवाला कोई भी नहीं बचा था।

थोड़े समयके बाद ही वे मार्क्सवादी लुटेरे अपने अधिकारके लिये जनप्रिय समर्थन प्राप्त करनेमें असमर्थ होगये। तौभी हमारी

तरुण रिपब्लिकको किसी न किसी तरह उसकी आवश्यकता थी, क्योंकि वे लोग इस बातके इच्छुक नहीं थे कि थोड़े ही समयके बाद अकस्मात् ही हमारी जातिके श्रेष्ठ तत्वोंके पुनर्गठन द्वारा उनका विनाश होजाय।

जिस तत्वने विद्रोही विचारोंको रोका और विद्रोहकालमें ही अपना सिक्का जमाया, कभी भी अपनी रक्षाके लिये सैनिकोंका आह्वान नहीं किया। क्योंकि वह तत्व जो कुछ चाहता था वह एक राष्ट्रका संगठन नहीं था, किन्तु जो कुछ उपस्थित था उसका अंग-भंग कर उसे विनष्ट करना था; इसने उसके स्वभाविक गुणोंको और भी अच्छा बना दिया। उन विद्रोहियोंका आदेश जर्मन रिपब्लिकका गठन करना वा शासन-व्यवस्थाका सुधार करना न था, किन्तु उसे लूटना था।

पुनः कुछ जर्मन कार्यक्षेत्रमें पितृभूमिकी सेवाके लिये उपस्थित दिखाई दिये, उन्होंने फिर एक बार सैनिकोंका ध्यान आकृष्ट किया, और उन्हें अपनी राईफलें और लोहेके अस्त्रोंको पुनः अपने कन्धोंपर उठा पितृभूमिके विनाशकोंका नाश करनेके लिये आदेश दिया गया। वे स्वेच्छासेवकोंके रूपमें एकत्रित हुए, और विद्रोहको दूर करनेके लिये उन्होंने अविराम परिश्रम करना प्रारम्भ किया और इसप्रकार अपनी पितृभूमिकी रक्षाकर उसकी शक्ति-वृद्धिकी ओर ध्यान दिया। उन्हें अपने कार्य्यो पर पूर्ण विश्वास था।

विद्रोहके वास्तविक संगठनकर्त्ता और उसके सञ्चालक अन्तर-राष्ट्रीय यहूदियोंने परिस्थितिको उसकी ठीक दशामें समझ लिया

था। जर्मन-जातिको बोल्शेविज्मके रक्त-दलदलमें फेंकनेका समय अभी नहीं आया था, जैसा कि रूसमें हो चुका था। प्रश्न यह था कि—इसके लिये सेना साधारणतः क्या करती? हमलोग युद्धक्षेत्रमें इसका सामना करते?

चन्द सप्ताहोंमें जर्मनीके उस विद्रोहको दबनेके लिये बाध्य किया गया, क्योंकि ऐसा न होनेसे विद्रोही जर्मन दलोंका दो या तीन हिस्सोंमें विभाजित होना आवश्यक होगया था, और इसप्रकार यहूदियोंकी चालोंका अन्त होना था। फिर एक बात और थी—यदि कोई भी सेनापति उस बातको समझ जाता तो वह उसे रोकनेके लिये अवश्य चेष्टा करता और इस प्रकार हमारे देशमें एक महान सैन्य-सृष्टि-युगका प्रारम्भ होता। यहूदी संचालक इन बातोंसे भयभीत होगये।

जो हो, विद्रोहका कारण शान्ति और व्यवस्था नहीं, किन्तु लूट-पाट और डकैतीका ही यह परिणाम था। विद्रोहकी उन्नति उपरोक्त कुकृत्योंसे नहीं हुई, और न धूर्त्तताभरे तरीकोंने ही इस कार्य्यका पथ प्रदर्शन किया।

ज्यों ज्यों हमारे राष्ट्रीयतावादी दलको क्रमशः शक्ति प्राप्त होती गई, त्यों त्यों विद्रोहका पतन होता गया।

महायुद्धके पूर्व, जबकि सामाजिक प्रजातन्त्र दल अपनेको मध्य-श्रेणीकी जनतासे परिचित कर रहा था, जो कि राष्ट्रीयताके लिये बोझस्वरूप है, उसके अच्छे अच्छे कार्यकर्त्ता उससे पृथक् हो गये। उन्होंने आगे चल स्वतन्त्र दल और स्पार्टकस दलकी स्थापना की,

जो कि बादमें विद्रोही मार्क्सवादकी तूफानी सेना कहलायी। किन्तु जब कि यह सेना तत्कालीन वातावरणसे घृणा करने लगी, विद्रोहने राष्ट्रीयताका झूठा चोगा धारण किया। सामाजिक प्रजातन्त्रवादी आन्दोलनके प्रमुख कार्य्यकर्त्ताओंकी ही यह चाल थी, फलस्वरूप स्वतन्त्र और स्पार्टकसिस्ट अलग होगये। ऐसा बिना किसी संघर्षके नहीं हुआ था। परिवर्त्तनका कारण दो कैम्पोंका एक ही स्थानपर आसपास होना था—शान्ति और व्यवस्थाका दल तथा रक्त-पिपासु दल। क्या यह प्राकृतिक न था कि मध्यश्रेणी अपने कैम्पपर शान्ति और व्यवस्था रखनेवाले दलका झंडा फहराती?

इसका परिणाम यह हुआ कि रिपब्लिकके शत्रुओंने उसकेविरुद्ध लड़ाई बन्द कर दी, और उनलोगोंको अपने वशमें करना प्रारम्भ किया जो कि अब रिपब्लिकके विरुद्ध बगावतका झण्डा खड़ा करने को प्रस्तुत थे। हमारे लिये यहां एक और खतरेसे सर्वदाके लिये निश्चिन्तीसी हो गई---प्राचीन राष्ट्रके अनुयायी हमारे नये राष्ट्रका विरोध करना छोड़, हमारा समर्थन करने लगे।

यदि हम सोचें किकिस प्रकार विद्रोह इस योग्य बना कि-प्राचीन राष्ट्रके अपराधोंसे पृथक रहते हुए, जो कि इसके कारण थे—वह सफलता प्राप्त कर सकता, हम इस परिणामपर पहुंचते हैं:—;

(१) इसका कारण हमारी कर्त्तव्यसम्बन्धी धारणाओं और कर्त्तव्यपरायणताका पतन था और

(२) उन दलोंकी कमजोरी थी जो कि हमारे राष्ट्रका संचालन करते थे।

पहलेका कारण हमारी पवित्र राष्ट्रीय शिक्षाका अभाव है। इससे स्वार्थ और नीचताकी भ्रान्त धारणाओंकी उत्पत्ति होती है। चेतनता और कर्त्तव्य-पूर्त्ति इसका परिणाम नहीं है—किन्तु यह एक राष्ट्रका नैतिक पतन है और इसप्रकार एक जातिके भावनामय एवं शारीरिक जीवनका दर्दनाक अन्त है।

विद्रोह सफल हुआ। क्योंकि हमारी जनता अथवा गवर्मेन्ट इन धारणाओंके विषयमें सभी सच्चे विचार खो बैठी, और इसप्रकार वह निर्बल तथा सिद्धान्तहीन हो गई।

'दूसरी बातको देखते हुए; मध्यश्रेणी-दल, जिसे प्राचीन राष्ट्रके अन्तर्गत एकमात्र राजनीतिक संगठन कहा जा सकता है, इस बातपर विश्वास करता था कि उसका कार्यक्रम मानसिक उपायोंके आधार पर होना आवश्यक है, क्योंकि शारीरिक उपायोंका कार्यक्रम राष्ट्रके अधीन था। किन्तु यह उस समय निष्प्राण होगया जबकि एक राजनीतिक प्रतिद्वन्दीने राष्ट्र-दृष्टिकोणकी उपेक्षा की, और निर्भीकतापूर्वक इस बातकी घोषणा करना आरम्भ किया कि इसका अर्थ यदि कुछ हो सकता था, तो वह शक्ति द्वारा अपने राजनीतिक प्रभावको नष्ट करना था।

मध्यश्रेणी दलोंका राजनीतिक कार्यक्रम भूतकालीन विचारों पर स्थित था, क्योंकि नवीन राष्ट्रके विचारोंसे वे सहमत न थे। जो हो उनका; उद्देश्य हर हालतमें सभी सम्भव उपायों द्वारा नवीन दशाओंके अनुसार कुछ सुविधायें प्राप्त करना था। किन्तु उनका एक मात्र अस्त्र पूर्ववत कोरी बकबक करना ही था।

जो सङ्गठन मार्क्सवादका विरोध करनेका बल और साहस रखते थे, वे सर्वप्रथम स्वेच्छासेवकवाहिनी बने, बादमें आत्म-निर्भर संगठनोंके रूपमें, और अन्तमें परम्परागतोंके अनुयायी अथवा लीकके फकीर प्रतीत हुए।

उन दिनों मार्क्सवादकी सफलताका कारण राजनीतिक दृढ़ता और निर्दयी शक्तिकी दुरङ्गी चालें ही थीं। राष्ट्रीय जर्मनीको जिस बातने वरबाद किया वह कुछ नहीं, निर्दयी शक्तिके राजनीतिक आकांक्षायुक्त दृढ़ सहयोगका अभाव था।

चाहे किसी भी तरह की आकांक्षायें राष्ट्रीय दलोंके पास क्यों न थीं, तथापि वे सड़कों पर लड़ाई कर उन्हें नहीं प्राप्त कर सकते थे।

रक्षण दलोंके पास सभी शक्तियां थीं; वे सड़कोंके अच्छे जानकार थे, किन्तु राजनीतिक विचार अथवा उद्देश्योंसे हीन होनेके कारण राष्ट्रीय जर्मनी उनकी शक्तिसे लाभ न उठा सका।

यह यहूदी ही थे जो अपने प्रेसों द्वारा रक्षण संस्थाओंके अराजनीतिक वातावरण को उपस्थित करनेवाली धारणाओंके प्रचारमें आशातीत सफलता प्राप्त कर सके, जिस तरहको राजनीतिमें वे सर्वदा ही मानसिक संघर्ष पर जोर दिया करते थे परम्परागत कथाओंके आधार पर क्रान्तिकारी सेनाके निर्माण करनेका कोई भी अवसर नहीं मिल सकता था। वास्तवमें कहावती अधिकार कभी भी स्थायी नहीं होता। प्राचीन साम्राज्याका पतन, उसके वैभवके स्मृति-चिन्होंके विनाशने परम्परागत वातावरणका अन्त कर दिया, इसका परिणाम राष्ट्र-सत्ताके लिये महान आघातकारी हुआ।

यहाँतक कि राष्ट्र-सत्ताका द्वितीय स्तम्भ—शक्ति—भी उपस्थित नहीं रह गया! विद्रोहके साथ सफलता प्राप्त करनेके विचारोंके कारण, सैन्य-अधिकारी संगठित राष्ट्र-शक्ति अथवा सेनाके रूपमें उलट-पुलट करनेके लिये विवश किये गये; इतना ही नहीं, वे सेनाको विद्रोहकी लड़नेवाली शक्ति बनानेके लिये कृतज्ञ बनाये गये थे।

ऐसे कठिन समयमें राष्ट्रके कर्णधार सेनाका सहयोग किसी भी दशामें नहीं प्राप्त कर सकते थे, क्योंकि उनदिनों सैनिकोंके विचारोंमें एक प्रकारका अनूठा परिवर्तन हो चुका था। इसप्रकार, राष्ट्र-सत्ताकी रक्षाके आधारका अपहरण होगया, और विद्रोहका जनप्रिय समर्थन प्राप्त कर, अपनी नयी सत्ता जमानेका सुअवसर प्राप्त हुआ।

प्रत्येक जातिको तीन श्रेणियोंमें विभाजित किया जा सकता है—सर्वप्रथम एक ओर जातिके श्रेष्ठ मनुष्य, जो कि प्रत्येक गुणके विचारसे अच्छे होते हैं, और विशेषतः अपने सत्साहस और आत्म-त्यागकी तत्परताके लिये प्रसिद्ध हैं; दूसरी ओर मानवताके नामपर धब्बा लगाने वाले नीच एवं स्वार्थी मनुष्य हैं। मध्यमें, दो छोरोंके बीच, सुविधावादी तृतीय श्रेणी है, जिसमें भली या बुरी किसी भी तरहकी भावनायें नहीं है।

लड़नेवाली शक्तियोंके बीच नवीन और महान विचारोंका अभाव सर्वदा ही हानिकारक प्रमाणित करता है। पशुतापूर्ण होते हुए भी अस्त्र-व्यवहारका दृढ़ विश्वास इस बातको प्रमाणित करता है कि क्रांतिकारी चीजोंकी व्यवस्था संसारमें अवश्य विजय प्राप्त करेगी, और क्रांतिकारी विचार ही संसारमें मान्य होंगे।

एक आन्दोलन जो कि ऐसे उच्च उद्देश्यों और आदर्शोंके लिये लड़नेमें असफल होता है किसी भी दशामें अन्ततक नहीं लड़ेगा।

नवीन विचारोंको उपस्थित करने पर ही फ्रांसकी राज्यक्रांतिको महान सफलता मिली थी। यही बात रूसके विद्रोह पर लागू होती है, और फैसिस्टवादने भी पुनरुत्थानके नये विचारोंको जनताके सामने उपस्थित कर उसे अपनी ओर आकर्षित किया और इसप्रकार जनिके लिये एक सुखकर परिणाम सोच निकाला।

जब रीचका गठन हुआ, मार्क्सवादने उस सत्ताका सहयोग प्राप्त करनेके लिये क्रमशः आवश्यक शक्तिका संचय कर लिया, और तार्किक परिणामको विचारते हुए अपने खतरनाक राष्ट्रीयतावादी रक्षम संस्थाओंपर आघात करना आरम्भ किया; उनके कथनानुसार वे सभी संस्थायें व्यर्थ थीं।

हमारी नेशनल सोशलिष्ट जर्मन वर्कर्स पार्टीकी स्थापना एक ऐसे अन्दोलनका चिन्ह थी जिसका उद्देश्य मध्यश्रेणी-दलकी भांति अतीतके विचारोंका प्रचार करना न था; किन्तु वर्त्तमान निर्जीव राष्ट्रके स्थान पर एक सजीव राष्ट्रीय राष्ट्रकी संस्थापना करना था। अपने नवीन सिद्धान्तके महत्वकी सत्यतापर विश्वास करते हुए, नवीन अन्दोलन विचार करता है कि इस उद्देश्यकी प्राप्तिके लिये कोई भी त्याग बड़ा नहीं है।

विश्व-इतिहासके गम्भीरावलोकनसे पता चलता है कि एक नये सांसारिक सिद्धान्त पर स्थित एक भयोत्पादक कालको नियमित राष्ट्र-सत्ता द्वारा किसी भी तरह नहीं हटाया जा सकता, किन्तु इसके

कारण एक भिन्न सांसारिक सिद्धान्तको, जो कि दृढ़ और शक्ति-शाली है, स्थान प्राप्त होता है। हो सकता है कि राष्ट्रके सरकारी पदों पर आसीन कुछ लोगोंको यह बात खटके, किन्तु चीजोंकी सत्यता के विषयमें ऐसी कोई भी बात नहीं है।

राष्ट्रपर मार्क्सवादका अधिकार हो गया है। यह देखते हुए बिना कुछ सोचे-समझे ही मार्क्सवादने ९ वीं नवम्बर, १९१८ को राष्ट्रको अपने आगे झुकानेकी चेष्टा की; इसके विपरीत, मध्यश्रेणीके लोगोंने जो कि उस समय मंत्रियोंके पद पर आसीन थे, मार्क्सवादी कार्य-कर्त्ताओंके विरुद्ध जानेकी आवश्यकता नहीं समझी.क्योंकि वे दिखाना चाहते थे कि उनकी सहानुभूति मार्क्सवाद और उसके कार्यकर्त्ता-ओंसे है।

मैं पहले ही बता चुका हूं कि किस प्रकार हमारे तरुण आन्दो-लनने व्यवहारिक स्वार्थोंके लिये एक ऐसा गुट्ट बनाना जिसका काम हमारी सभाओंकी रक्षा करना था, क्रमशः इसने शान्ति-व्यव-स्थापक सेनाका रूप धारण करना प्रारम्भ किया और थोड़े ही दिनों में यह एक दृढ़ संगठन हो गया।

आरम्भमें इस गुट्टका एकमात्र कर्त्तव्य सभाओंकी रक्षा करना। इसका प्रारम्भिक कार्य्य सीमित कर दिया गया जिससे इसे सभायें करनेमें किसी प्रकारकी अड़चन न हो, क्योंकि हमारे विरोधी सर्वदा ही हमारी सभाओंका विरोध किया करते थे। इसने इस गुट्टके आद-मियोंको केवल आक्रमण करना ही सिखाया था, इसलिये नहीं जैसा कि बेवकूफ जर्मन राष्ट्रीय केन्द्रोंमें कहा जाता था कि उनके जीवनका

आदर्श मृत जीवनकी रक्षा करना था, किन्तु, इसलिये कि वे समझते थे कि अपने आदर्शोंकी रक्षा आक्रमण-नीतिसे ही हो सकती है; और वास्तवमें विश्व इतिहासके लिये यह कोई नवीन बात नहीं है कि महापुरुषोंने सर्वदा ही आक्रमण-नीतिसे ही सफलता प्राप्त की है। उनका उद्देश्य हिंसा न था; किन्तु उनमी इच्छा थी कि हिंसा पीड़ित व्यक्तियोंकी रक्षा की जाय। वे इस बातको भलीभांति समझते थे कि ऐसे राष्ट्रकी शरण लेना एकदम व्यर्थ है जो जातिकी रक्षा नहीं कर रहा है, किन्तु वे इसे अपना कर्त्तव्य समझते थे कि जाति और राष्ट्रके नाशकोंके विरुद्ध राष्ट्रकी रक्षा की जाय।

यह तूफानी सेना आन्दोलनके अन्य विभागोंमेंसे एक थी, अन्य, विभागोंमें प्रचार, प्रेस, वैज्ञानिक विभाग इत्यादि प्रमुख थे।

तूफानी सेनाके गठनके साथ ही साथ हमारा विचार उच्च शारीरिक शिक्षा की उन्नति करना था औ इसप्रकार राष्ट्रीयतावादी-समाजवादके विचारोंकी रक्षा करना था।

नेशनल सोशलिष्ट जर्मन वर्कर्स पार्टीकी इस तूफानी सेनाको तथाकथित रक्षण संस्थाका रूप देनेका मैं कट्टर विरोधी था; इसका कारण इसप्रकार है:—

प्रत्येक व्यवहारिक विषयके कारण किसी भी जातिको रक्षा गुप्त रक्षण-संस्थाओं द्वारा नहीं हो सकती, जबतक कि राष्ट्रकी समस्त शक्तियां सहयोग न दें। किसी सीमित स्वार्थके लिये सैन्य-मूल्ययुक्त अनुशासनात्मक संगठकनका निर्माण करना सर्वथा असम्भव है। इसमें आदेश-पालनके लिये बाध्य करनेवाली दण्ड-प्रथाके सह-

योगका अभाव है। १९१९ ई० के शरद्‌कालमें एक स्वेच्छासेवक-वाहिनीका गठन करना सम्भव था,क्योंकि अधिकांश लोग युद्धक्षेत्रमें लड़े हुये थे और उन्हे सैनिक शिक्षा मिली हुई थी। आजकलके रक्षण संगठनोंमें इस भावका महान अभाव है।

सभी आपदाओंके होते हुए भी, इस भावको ग्रहण कर, कुछ संस्थायें जर्मनोंकी एक सीमित संख्याको आदमी बना सकती थीं, जिनकी भावनायें सच्ची होती और जो शारीरिक तथा सैनिक शिक्षा में निपुण होते; किन्तु एक ऐसे राष्ट्रमें, जिसका उद्देश्य ऐसी शक्तिकी सृष्टि करना नहीं था, यह सर्वथा असम्भव है, क्योंकि ऐसा होनेसे राष्ट्रके विनाश-पथ-प्रदर्शक नेताओंकी स्वार्थ-सिद्धि नहीं हो सकती।

यही बात आजकल देखी जाती है। क्या एक गवर्मेन्टके लिये यह हास्यास्पद विषय नहीं है कि वह साढ़े आठ लाख मनुष्योंका बलिदान करवा, उनसे किसी भी प्रकारका लाभ उठाये विना, सार्वदेशिक घृणाके नाम पर होनेवाले उनके अमूल्य बलिदानके साथ सहानुभूति प्रगट करनेके लिये केवल दस हजार व्यक्तियोंको सैनिक शिक्षा देती है ? क्या इस बातकी आशा की जा सकती है :कि सैनिकोंको ऐसे नियमकी रक्षाके लिये शिक्षा दी जायेगी जो अपने गौरवान्वित सैनिकों के नामपर कलङ्कका टीका लगाता है,उनके प्राप्त सम्मानों और स्मृति चिन्होंको फाड़नेके लिये विवश करता है, उनके झण्डेको पैरों तले कुचलता है, और उनके स्तुत्य कार्य्योंको घृणाकी दृष्टिसे देखता है ? क्या इस राष्ट्र-नियमने कभी भी प्राचीन सेनाकी प्रतिष्ठा करनेका प्रयत्न किया है,अथवा उनलोगोंसे प्रतिफल लेनेकी चेष्टाकी है जिन्होंने

इसे गालियां दी हैं और इसकेविनाशकेलिये प्रयत्न किया है?नहीं कभी भी नहीं। इसके विपरीत,विनाशक आज राष्ट्रके उच्च पदोंपर आसीन देखे जा सकते हैं, इसपर भी लिपजिगमें कहा जाता है कि—"शक्ति शाली जो कुछ करता है वह उचित है"। चूंकि आजकल विद्रोहके उद्भावकोंके हाथमें शक्ति है, और पुनः वह विद्रोह देशके प्रति धोखेबाजी प्रगट करता है,जिसे जर्मन-इतिहासका सबसे नीच कर्म कहा जा सकता है, इसलिये कोई भी ऐसा कारण नहीं है कि इसप्रकारकी नीच शक्तिकी वृद्धि तरुण सेना द्वारा हो। विचारयुक्त प्रत्येक कारण इससे विपरीत है।

यदि राष्ट्रने जैसा कि आजकल है, शिक्षित रक्षण विभागोंकी प्रणालीको स्वीकार किया होता, वह किसी भी दशामें देशके बाहर राष्ट्रीय स्वार्थोंकी रक्षा नहीं कर सकता था;किन्तु वह जातिके अत्याचारियोंकी रक्षा करनेमें समर्थ हो सकता था, जिन्होंने सर्वदाही जातिको धोखा देनेकी चेष्टा की थी।

इसी कारणवश हमारी इस सेनाको सैनिक संगठनकी तरह सुविधा नहीं दी गई थी। हमारी इस सेनाका एकमात्र काम नेशनल सोशलिष्ट आन्दोलनकी रक्षा करना तथा उसका प्रचार करना था, और इसका कार्य्य तथाकथित रक्षण-संस्थाओंसे सर्वथा भिन्न था।

इसे गुप्त संगठन नहीं कहा जा सकता। गुप्त संगठनोंके उद्देश्य अवैधानिक ही हो सकते हैं।

उस समय हमारी आवश्यकता क्या थी, और अब क्या है—हमें कमअक्ल बिगड़े दिमाग सौ दो सौ षड़यन्त्रकारियोंकी जरूरत नहीं

थी ओर न है, किन्तु हमारे सांसारिक सिद्धान्तके लिये अति भक्ति-पूर्ण लाखों लड़ाके ही हमारी सहायता कर सकते थे और कर सकते हैं। कोई भी कार्य्या, चाहे वह कैसा ही क्यों न हो, अनियमित गुप्त सभाओं द्वारा नहीं होना चाहिये, किन्तु सरेआम डंकेकी चोटपर उसे कर दिखाना ही मर्दानगी है, आन्दोलनका रास्ता छुरेबाजी, पिस्तौल या विप द्वारा साफ नहीं हो सकता, किन्तु चलते-फिरते लोगों पर प्रभाव जमानेसे ही सफलता मिल सकती है। हमे मार्क्स-वाद्का विनाश करना है, जिससे, भविष्यमें राष्ट्रीयतावादी समाजवाद के हाथमें जनताका शासन आजाय, और भविष्यमें ऐसा ही होने जा रहा है।

गुप्त संगठनोंसे एक और खतरा था, उनमें रहकर सदस्य प्रायः ही कर्त्तव्यकी महानताको समझनेमें भूल करते थे, और इस बातकी कल्पना करनेके लिये वाध्य थे कि राष्ट्रीय विपयको खून-खराबीसे ही सफलता मिल सकती है! ऐसे विचारको ऐतिहासिक महत्व मिल सकता है, विशेपतः ऐसे देश जहां कि एक जाति एक अत्याचारी द्वारा सतायी गयी हो।

१६१६ और १६२०के बीचमें यह खतरा था कि गुप्त संगठनोंके सदस्य ऐतिहासिक उदाहरणों द्वारा प्रेरित हो और जातिके दुर्भाग्यको देखते हुये, देशके विनाशकोंसे प्रतिफल लेनेका पयत्न कर सकते थे, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि वे इसके द्वारा अपनी जातिके सब दुःखों का अन्त कर देंगे। ये सब प्रयत्न पवित्र मूर्खताके परिचायक थे, क्योंकि मार्क्सवादी विजय किसी प्रतिभाशाली व्यक्तित्वपूर्ण नेताके कारण

नहीं हुई थी, किन्तु इसका कारण मध्यश्रेणी-संसारकी अयोग्यता और भीरुता थी।

यदि, उस समय, तूफानी सेना सैनिक-संगठन नहीं कही जासकती और न इसे गुप्त संस्था ही माना जा सकता तो इसे निम्नलिखित सिद्धान्तोंके आधार पर चलना होगा।

(१) इसकी शिक्षा सैनिक सिद्धान्तोंके आधार पर न हो,दलकी भलाईके दृष्टिकोणसे होगी। इसे देखते हुये इसके सदस्योंको शरीरसे तन्दुरुस्त बनाना हीं पड़ेगा, तन्दुरुस्तीको कवायद पर निर्भर न कर, खेल-कूदको शिक्षाके अनुकूल बनाना होगा। मैंने निशानेबाजीकी सामान्य शिक्षाकी अपेक्षा घूंसेबाजी और जुजुत्सुको विशेष महत्वपूर्ण तथा अच्छा समझा है।

(२) तूफानी सेनाको गुप्तताका स्वभाव धारण करनेसे रोकते हुए केवल इसकी पोशाकमें ही नवीनता नहीं रखनी होगी, किन्तु इसके पथका इसप्रकार निर्धारण करना होगा जिससे आन्दोलनको लाभ पहुंचे और जो संसारमें विदित हो। इसे गुप्त उपायोंसे काम नहीं लेना होगा।

(३) वेशभूषा और साजोसामानके विषयमें तूफानी सेना प्राचीन सेनाकी नकल न करेगी, किन्तु इसका चुनाव इसप्रकारका होगा जिससे उपस्थित कर्त्तव्यमें यह हमारे प्रगतिशील आन्दोलनको सहायता पहुंचा सके।

तूफानी सेनाकी पिछली उन्नतिके लिये निम्नलिखित तीन घटनायें अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हुईं।

(१) १९२२ ई० के गत ग्रीष्मकालमें रिपब्लिककी रक्षाके लिये बने नियमके विरुद्ध म्युनिकके कौनिग्सप्लैट्ज नामक स्थानमें सभी देशभक्त संस्थाओंका एक विराट सार्वजनिक प्रदर्शन हुआ। दलका जुलूस, जिसमें नेशनल सोशलिष्ट आन्दोलनने भाग लिया था, म्युनिककी छः सहयोगी संस्थाओं द्वारा सञ्चालित हुआ था और उसमें राजनीतिक दलकी अनेकों श्रेणियां भी सम्मिलित थीं। मुझे भी एक वक्ताकी हैसियतसे साठ हजार मनुष्योंकी उस सभामें भाषण देनेका सम्मान प्राप्त हुआ था। प्रबन्ध-कार्य्योंमें अपूर्व सफलता प्राप्त हुई थी। क्योंकि,लाल दलवालोंकी धमकी की परवाह न कर;राष्ट्रीय म्युनिकने इस बातको प्रमाणित कर दिया था कि आम सड़कपर कवायद करना कोई बड़ी बात नहीं है।

(२) १९२२ ई० के अक्टूबरमें कोबर्गके ऊपर आक्रमण किया गया। कुछ राष्ट्रीयतावादी संस्थाओंने कोबर्गमें "जर्मन दिवस मनाने का निश्चय किया। उसमें भाग लेनेके लिये मुझे आमन्त्रित किया गया, और साथ ही साथ मुझसे प्रार्थना भी की गई कि मैं अपने इष्ट-मित्रों सहित वहां उपस्थित रहूं। मैंने तूफानी सेनाके आठ सौ चुने आदमियोंको अपने साथ लिया और उस छोटे शहरको जो कि बवेरियाका एक हिस्सा होगया था, स्पेशल ट्रेनसे रवाना हुआ।

कोबर्गके स्टेशनपर "जर्मन-दिवस" के आयोजकोंका एक प्रतिनिधि-दल हमलोगोंसे मिला और उसने इस बातकी घोषणा की कि स्थानीय ट्रेडयूनियनों—स्वतन्त्र दल और कम्युनिष्ट दल—की आज्ञानुसार हमलोग अपना झंडा फहराते हुए तथा अपना बाजा बजाते

हुए शहरमें प्रवेश नहीं कर सकते, और साथ ही साथ हमलोग कवायद करते हुए नहीं चल सकते। मैंने इन लज्जाजनक शर्त्तोंको ठुकरा दिया, और उस दिवसके आयोजकोंको अपने विचारोंको समझानेमें मैं जरा भी असफल नहीं रहा,मुझे ऐसे लोगोंसे सौदा करनेपर बड़ा ही आश्चर्य हुआ और मैंने घोषित किया कि हमारी तूफानी सेना अपना झंडा फहराती और बाजा बजाती हुई शहरमें प्रवेश करेगी।

स्टेशनपर होहल्ला मचानेवाली हजारोंकी भीड़से हमारी मुलाकात हुई। जर्मन रिपब्लिकके संस्थापकोंने हमें "हत्याकारी" "डकैत" "गिरहकट" "अपराधी" इत्यादि नामोंसे सम्बोधित करना आरम्भ किया। तरुण तूफानी सेनाने यहां भी पूर्ण व्यवस्था की। हमलोगोंने शहरके केन्द्रस्थित हौफ्रहौसकेलरके कोर्टकी ओर प्रस्थान किया। भीड़ हमारा अनुसरण न करे इसलिये पुलिसने कोर्टके फाटकोंको बन्द कर दिया। चूंकि यह असह्य था; मैंने मांग पेश की कि पुलिस को फाटकोंको खोलना ही पड़ेगा। बहुत देरकी हिचकिचाहटके बाद पुलिस हमारे कथनानुसार काम करनेके लिये वाध्य हुई। हमलोग जिस रास्तेसे आये थे फिर उसी रास्तेसे वापिस लौट; अपने निर्धारित स्थानके लिये चल पड़े; और वहां हमें एक बहुत बड़ी भीड़का सामना करना पड़ा। सच्चे साम्यवादके प्रतिनिधियोंने हमपर पत्थर फेंकना प्रारम्भ किया। हमारा धैर्य जाता रहा, हमलोगोंने दायें और बायें दोनों ही तरफ मारना आरम्भ किया, और पन्द्रह ही मिनट के पश्चात कोई भी लाल दलवाला सड़क पर नजर नहीं आया।

रात्रिको भयानक दुर्घटनायें घटीं । तूफानी सेनाके नेता उन राष्ट्री-यतावादी समाजवादियोंके पास आये, जिनपर बुरी तरहसे आक्रमण हुआ था और जिनकी दशा अत्यन्त शोचनीय होरही थी। थोड़े ही कामने शत्रु के ऊपर विजय प्राप्त की। दूसरे दिनसे ही लाल दलका भय, जिससे कौवर्ग गत वर्षोंसे पीड़ित था, छूमन्तर होगया।

दूसरे दिन हमलोगोंने अपने सभा-स्थानके लिये प्रस्थान किया जहा कि दस हजार आदमियोंका विराट प्रदर्शन होनेवाला था। जब हमलोग वहां पहुंचे,हमलोगोंने दस हजारके बजाय कुछ सौ मनुष्योंको ही उपस्थित पाया। वहां पर उपस्थित रेड दलवालोंने, जो हमें अभी तक नहीं जान सके थे, झगड़ा-फसाद मचानेका प्रयत्न किया, किन्तु शीघ्र ही उनकी इच्छाका अन्त होगया। यह प्रत्यक्ष होरहा था कि वहांकी जनता धीरे-धीरे हमलोगोंके साथ हिलती-मिलती जा रही थी, उसमें साहसकी मात्रा बहुत अधिक अंशोंमें आ गई थी,और सायङ्काल जब हमलोग वहांसे विदा हुए तो एक बहुत बड़ी भीडने हमारा स्वागत किया।

कौवर्गके हमारे अनुभवने इस बातको प्रमाणित कर दिया कि तूफानी सेनाको एक विशेष वेषभूषाकी कितनी आवश्यकता थी,केवल सैन्य-शक्तिको दृढ़ करनेके लिये नहीं, किन्तु असफलता और दूषित वातावरणको दूर करनेके लिये। उस समय तक बाजूबन्द चिन्होंका ही महत्व था, किन्तु अब टोपीके विषयमें भी वही बात होगई।

हमलोगोंने उन स्थानोंमें जाकर सभा करनेके महत्वको भली-भांति समझा, जहां लाल दल वालोंका आतङ्क छाया हुआ था, ऐसा

करनेका एकमात्र परिणाम लाल दलवालोंके प्रभावको नष्टकर, सभाओंके लिये स्वतन्त्रता प्राप्त करना था।

(३) १९२३ ई० की मार्च को एक ऐसी घटना घटी जिसने मुझे आन्दोलनकी गतिमें परिवर्तन करनेके लिये वाध्य किया।

जिस वर्षमें रूरको फ्रेञ्च लोगोंने अधिकृत किया उसी वर्ष तूफानी सेनाके उन्नतिके महत्वपूर्णकालका प्रारम्भ हुआ।

रूरके अधिकारने, जिसे हम कोई आश्चर्य नहीं मानते थे, हमें शिक्षा दी कि हमलोग अपनी आत्मसमर्पणवाली लज्जाजनक भीरु नीतिको बन्द करदें, अर्थात् रक्षण-संस्थाओंका अब कुछ निश्चित काम रह गया। यह बात बिल्कुल उचित थी कि हमारी तूफानी सेना, जिसमें स्वस्थ नवयुवक थे, राष्ट्र-सेनामें भाग लेनेसे बंचित न रहे। १९२३ ई० के शारद और ग्रीष्मकालके बीच ही इसे सैनिक संगठन का रूप देदिया गया। इसीके कारण उस वर्षकी पिछली उन्नतियां हुईं, जिनका हमारे आन्दोलनसे घनिष्ठ सम्बन्ध था।

१९२३ ई० के अन्तमें कुछ ऐसी घटनायें देखनेमें आईं, जिन्होंने तूफानी सेनाके इस परिवर्तनको घृणाकी दृष्टिसे देखा, जो कि वास्तवमें आन्दोलनके लिये हानिकारक प्रमाणित होरहा था। जो हो, उस समय इन घटनाओंने पुनर्गठनके विचारको और भी सम्भव बना दिया और हमलोग अपनी गतिको परिवर्तित करनेके लिये वाध्य किये गये।

१९२५ ई०में नेशनल सोशलिष्ट जर्मन वर्कर्स पार्टीकी पुनस्थापना हुई, और इसे अपनी तूफानी सेनाका पुनर्गठन आरम्भमें कथित

सिद्धान्तोंके अनुसार करना पड़ा। इसे पुनः अपने मूल सिद्धान्त पर लौटना पड़ा, और अपनी तूफानी सेनाको आन्दोलनके सांसारिक सिद्धान्तकी रक्षा करने और शक्ति बढ़ानेके लिये नियुक्त करना पड़ा।

इसे तूफानी सेनाको गुप्त सङ्गठनका रूप नहीं देना होगा, इसे राष्ट्रीयतावादी समाजवाद एवं राष्ट्रीय विचारोंकी रक्षाके लिये कमसे कम १००,००० आदमियोंको प्रस्तुत करना ही पड़ेगा।

—*—

दसवां अध्याय ।

संघवाद्का पाखण्ड ।

शीतकाल १६१६ ई० और साथ ही साथ १६२० ई० के शरद्काल एवं ग्रीष्मकालमें हमारे नौजवान दलको एक ऐसे प्रश्नके प्रति अपना एक रुख अख्तियार करना पड़ा जो कि युद्धकालमें अत्यन्त महत्वपूर्ण था। पूर्वके एक अध्यायमें मैंने जर्मनी के विनाशका भय दिखानेवाले कुछ चिन्होंका संक्षिप्त विवरण दिया है, और इसी बीच मैंने इङ्गलिश और फ्रेञ्च प्रचार-प्रणालीका अच्छा दिग्दर्शन कराया है, जिसके द्वारा उत्तर और दक्षिण जर्मनीके बीच फूट डालनेकी चेष्टा की गयी थी। १६१५ ई० की शरद्कालीन इश्तिहारों वा लेखोंके प्रचारकी प्रणाली ही युद्धका एकमात्र कारण थी। १६१८ ई० तक लज्जापूर्वक एवं शैतानियत भरे उपायोंसे इसकी उन्नति होती रही। इसमें मानव नीचताकी पराकाष्ठा होगई थी और इस आन्दोलनके फलोंने शीघ्र ही अपना वास्तविक रूप धारण कर लिया। गवर्मेन्ट और सेना (विशेषतः बवेरियन सेना) के नेताओंको ही इसके लिये अच्छी तरहसे लानत-मलामत दी जा सकती है; वे अपनी अन्धता एवं मूर्खताके कारण, अपने दृढ़ विश्वासानुसार ऐसी नीचताके विरुद्ध कुछ भी न कर सके और इसलिये वे कलङ्कित होनेसे किसीभी दशामें

नहीं बच सकते। कुछ भी नहीं किया गया। इसके विपरीत कुछ लोगों ने तो इसे बिना दुःखके ही देखा, और कुछ तो अपनी मूर्खतापूर्वक विचारधाराके कारण यहां तक कल्पना कर बैठे कि इस तरहका प्रचार जर्मन-जातिकी एकताको दृढ़ करेगा, और संघकी (फेडरेशन) शक्ति बढ़ानेमें सहायता करेगा। इतिहासमें ऐसी दुष्टताभरी लापर-वाहीके बदलेमें कठोर दण्ड ही दिया गया है। इससे उत्पन्न प्रसियाकी दुर्बलताने ही समस्त जर्मनीके ऊपर आक्रमण किया। इसने विनाश की सामग्री उपस्थित कर दी, जिसने केवल जर्मनीको ही तबाह नहीं किया, किन्तु अन्य राष्ट्रोंको भी महान क्षति पहुंचायी। शहरसे, जिसमें प्रसियाके प्रति झूठा घृणा भाव बुरी तरहसे उत्पन्न किया गया था, शासकवर्गके प्रति विद्वेष भावकी सृष्टि की गई थी और यहींसे विद्रोहकी विकराल ज्वाला धधक उठी।

शत्रु-प्रचार ही प्रसियाविरोधी विचारोंके लिये उत्तरदायी था, ऐसा सोचना महान भूल होता। हमारे युद्ध-संगठनकर्त्ताओंकी अवि-श्वसनीय युद्ध-प्रणाली, जिसने बर्लिनको केन्द्र रख समस्त साम्राज्यका पागलपन भरे तरीकेसे गठन किया, प्रसियनविरोधी विचारोंके लिये एकमात्र कारण थी।

उस समय यहूदी इस बातको समझनेके लिये नहीं प्रस्तुत थे कि लूटपाटकी चढ़ाईका, जिसे वह युद्ध-संस्थाओंके चोगेमें जर्मन-जाति के विरुद्ध संगठित कर रहे थे, विरोध होना आवश्यक है। जबतक कि यह उनके गलेमें न अटक जाती तबतक उन्हें किसी भी प्रकारका भय करनेकी आवश्यकता न थी। इसप्रकार उन्हें यह प्रतीत हुआ कि

क्रोधित और निराश जनताको उभाड़नेके लिये इससे बढ़कर और कोई भी तरीका नहीं हो सकता था, क्योंकि विद्वेष-ज्वालाको प्रज्ज्वलित कर वे अपनी मनमानी करना चाहते थे।

तब विद्रोहका आगमन हुआ।

अन्तरराष्ट्रीय यहूदी, कर्ट एसनरने बवेरियाको प्रसियाके विरुद्ध उभाड़ा। रीचके अवशेषके विरुद्ध छिड़े ही आन्दोलनका सञ्चालन बवेरियन दृष्टिकोणसे नहीं हो रहा था, किन्तु यहूदियोंका ही उसमें खासा हाथ था। इस मनुष्यने बवेरियन जनताकी अरुचियों और बवेरियाको भिन्न करनेका एक सहज उपाय सोच निकाला। रीच, जो कि पुनः विनाश-पथकी ओर अग्रसर हुई थी, बोल्शेविज्मका शिकार बन सकती थी।

प्रसियन युद्धवादका सैन्यविरोधी एवं प्रसियनविरोधी तत्वोंपर विजय प्राप्त करना और इसप्रकार वर्गवादी रिपब्लिकका अन्त होना, यह सब बोल्शेविस्ट आन्दोलकोंकी चालें थीं, जिनसे उन्हें महान लाभ हुआ। जबकि बवेरियन असेम्बलीके चुनाव-कालमें कर्ट एसनरके म्युनिकमें १०,००० समर्थक भी नहीं थे और वर्गवादी (कम्यूनिष्ट) दलके ३,००० ही अनुयायी थे, वर्गवादी रिपब्लिकके विनाशके पश्चात दोनों दल आपसमें मिल गये और उनकी संख्या १००,००० तक पहुंच गई।

मैं सोचता हूं कि मैंने प्रसियन विरोधी उस कालके विरुद्ध मोर्चा लेनेसे बढ़कर और कोई भी बदनाम काम अपनी जिन्दगी भरमें नहीं किया। वर्गवादी कालके म्युनिकमें सार्वजनिक सभाओंसे अवशिष्ट

जर्मनीके विरुद्ध, विशेषतः प्रसियाके लिये, इतने घृणित भाव थे कि यदि कोई उत्तरीय प्रदेशवासी जर्मन वहां जाता था, तो उसे अपनी जान हथेली पर रखनी पड़ती थी। उन प्रदेशनोंमें "प्रसियाका बहिष्कार करो", "प्रसियाका नाश हो", "प्रसियाके विरुद्ध युद्ध छेड़ो" इत्यादि नारे लगाये जाते थे; जर्मन रीचस्टैगमें बभेरियाके राजस्वार्थोंकी रक्षा करनेवाले एक मनुष्यने इस बातकी भावना उत्पन्न की कि—"एक प्रसियनकी हैसियतसे सड़ने वा गलनेकी अपेक्षा एक बभेरियनकी तरह युद्धमें मरना श्रेयस्कर है।"

जिस युद्धमें मैं सम्मिलित हुआ था, सर्वप्रथम अपने बलपर और तत्पश्चात अपने साथियोंके समर्थन पर, वह अभी भी जारी था, और मैं अपने तरुण आन्दोलनके कर्त्तव्यको समझता हुआ ऐसा कह भी सकता था। आज हम अपनेको योग्य समझते हुए कहनेका अभिमान रखते है कि अपने बभेरियाके अनुयायियों पर पूर्णतया निर्भर रहते हुए, हम मूर्खता और धूर्त्तताके उस सन्मिश्रणका अन्त करनेके लिये उत्तरदायी थे।

निस्सन्देह, यह प्रत्यक्ष है कि प्रसियाके विरुद्ध जो आन्दोलन छिड़ा था उसका संघसे कोई भी सम्बन्ध न था। सङ्घसम्बन्धी कार्यतत्परता उस समय व्यर्थ प्रमाणित होती है जब उसका उद्देश्य परस्पर फूट डालना होता है। एक सच्चा सङ्घवादी, जिसके लिये बिस्मार्क की साम्राज्यविषयिक धारणा केवल कोरी लोकोक्ति ही नहीं है, ठीक उसी समयमें प्रसियन राष्ट्रके हिस्सोंको पृथक करनेको प्रस्तुत नहीं हो सकता था, जिनकी सृष्टि और सङ्गठन बिस्मार्क द्वारा हुआ था;

और न वह प्रत्यक्ष रूपसे उस प्रकारकी पृथक् करनेवाली आकांक्षाओंका समर्थन ही कर सकता था। यह और भी अविश्वसनीय होजाता है, क्योंकि तथाकथित संघवादियों द्वारा प्रसियास्थित तत्वके विरुद्ध युद्ध छेड़ा गया था, जिसका सम्बन्ध नवम्बरकी प्रजातन्त्रीय सरकारसे कुछ न कुछ अंशोंमें अवश्य सोचा जा सकता है। उनका दोषारोपण एवं आक्रमण वेमर विधानके जन्मदाताओंके प्रति न था, जिसका समर्थन अधिकांश दक्षिण प्रदेशवासी जर्मन तथा यहूदी करते थे, किन्तु अनुदारदली प्राचीन प्रसियाके प्रतिनिधियोंके विरुद्ध ही, जो कि वेमर विधानके विरोधी थे, उनके आक्रमण हुआ करते थे। हमें इस बातपर आश्चर्य करनेकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती कि वे लोग यहूदियोंके अधिकारमें हाथ न डालनेके लिये बहुत ही सतर्क थे, और शायद यही इस जटिल समस्याको सुलझानेका एकमात्र रास्ता है। यहूदियोंका उद्देश्य जर्मनीके राष्ट्रीय तत्वोंको परस्पर एकके विरुद्ध उभाड़ना था और इसप्रकार अनुदार बवेरियाको अनुदार प्रसियासे भिड़ना था। अन्तमें वे सफल हुए।

१९१८ ई० के शीतकालमें पारस्परिक विरोधी वातावरणने जर्मनीमें अपना अड्डा जमाना आरम्भ किया। यहूदियोंने अपना पुराना तरीका अख्तियार किया। आश्चर्यजनक तत्परताके साथ उन्होंने एक जनप्रिय आन्दोलन आरम्भ किया और पुनः भेदभाव उत्पन्न करनेका एक नवीन उपाय सोच निकाला। अन्यदेशी प्रश्नको इस तरहसे रक्खा गया कि लोगोंका ध्यान उसके द्वारा आकर्षित कर लिया गया, और इसप्रकार यहूदी-आक्रमणका पथ सुलभ और

सीधा होगया। जिन मनुष्योंने इस प्रश्नसे हमारी जातिको पीड़ित किया है वे इसकी बुराईको किसी भी हालतमें नहीं सुधार सकते, जिसे जातिके प्रति विरुद्ध आचरण कहा जा सकता है। निस्सन्देह यहूदियोंको अपने उद्देश्यमें सफलता मिली है,उन्हें कैथोलिक्सों और प्रोटैस्टैन्टोंके पारस्परिक झगड़ेको देख अवश्य आनन्द प्राप्त हुआ है, आर्य्य मानवताका और क्रिश्चियन धर्मका शत्रु यहूदीसमाज अपनी सफलता पर मन ही मन हंस रहा है। क्यों न हंसे, यह हमारी ही मूर्खताका फल है।

दोनों ही चर्च ऐक्य अस्तित्वके विनाशको, जो इस पृथ्वीपर ईश्वरप्रदत्त सज्जनताका एक पुरस्कार है, घृणायुक्त आंखोंसे देख रहे हैं। जो हो, संसारका भविष्य आर्य्य मानवता पर निर्भर है, चाहे प्रोटैस्टैन्ट इसमें सहायक हों अथवा कैथोलिक्स सफलता पूर्वक इसका अनुसरण करें। और आज भी दो मत परस्पर लड़ रहे हैं, आर्य्य मानवताके नाशकके विरुद्ध नहीं, किन्तु परस्पर एक दूसरेका नाश करनेके लिये।

जर्मनीमें पादरियों अथवा अन्यदेशियोंके विरुद्ध किसी भी तरह का संघर्ष आदेशनीय नहीं था, क्योंकि प्रोटस्टेन्ट इसमें अवश्य भाग लेते, हां, कैथोलिक शताब्दियोंके लिये यह सम्भव हो सकता था। दूसरे देशोंमें कैथोलिक्स आक्रमणोंके विरुद्ध अपने धार्मिक नेताओंके सामने जो राजनीतिक रक्षण-शक्ति रखते, वह जर्मनीमें तुरन्त ही कैथोलिकवादके विरुद्ध प्रोटैस्टैन्टवादके आक्रमणका रूप धारण कर लेता।

अवशिष्ट विषय स्वयं ही सब कुछ बतायेंगे। १९२४ ई० में जिन मनुष्योंने पादरियोंके अधिकारके विरुद्ध संघर्ष करना ही राष्ट्रीयतावादी आन्दोलनका उद्देश्य बताया, वे पादरियोंको अधिकारसे वंचित करनेमें असफल रहे, किन्तु उन्हें राष्ट्रीयतावादी आन्दोलनोंका नाश करनेमें सफलता मिली। मैं यहां अपनी ओरसे एक चेतावनी देता हूं कि हमारे राष्ट्रीयतावादी आन्दोलनके तरुण मस्तिष्कको इस बातकी कल्पना नहीं करनी चाहिये कि यह ऐसे प्रत्येक कामको कर सकता है, जिसे एक बिस्मार्क भी नहीं कर सका। हमारे इस राष्ट्रीयतावादी समाजवादी आन्दोलनके कर्णधारोंका यह कर्तव्य होगा कि वे तथाकथित संघर्षमें प्रवृत होनेसे हमारे आन्दोलनको रोकें,और उन सभी प्रचारों पर कड़ा नियन्त्रण रक्खें जो उस उद्देश्यका समर्थन करते हैं। वास्तवमें,१९२३ई०के शरदकालमें हमलोगोंने इस विषयमेंअपूर्व सफलता प्राप्त की। अब हमारी जातिके उत्साही प्रोटैस्टैन्ट और उत्साही कैथोलिक किसी भी धार्मिक विश्वासके लिये बिना वादविवाद किये हुए परस्पर एकमत हो सकते थे।

अमेरिकाके राष्ट्रोंने कोई एकता स्थापित नहीं की, किन्तु यह एकता ही है जिसने इतने राष्ट्रोंका निर्माण किया। विभिन्न राष्ट्रोंके व्यापक अधिकार राष्ट्रोंकी एकताके लाभदायक स्वभावको नहीं प्रगट करते, किन्तु ये राष्ट्रोंके क्षेत्रफलके साथ समानता प्रगट करते हैं, और साथहीसाथ एक महादेशके विस्तारका भी ध्यान रखते हैं। इसप्रकार अमेरिकन एकताके राष्ट्रोंके विषयमें बोलते हुए, कोई भी उन्हें राष्ट्र-सत्तायुक्त नहीं कह सकता, किन्तु विधान द्वारा निश्चित अधिकारों

का उपयोग करनेवाले राष्ट्रकी भांति अवश्य मान सकता है। किन्तु हमारा विचार इससे सर्वथा भिन्न है।

जो हो, जर्मनीमें सभी राष्ट्र प्रधान राष्ट्रोंकी गिनतीमें थे, और उनके संयुक्त गठनको ही साम्राज्य कहा जाता था। किन्तु साम्राज्यका गठन सभी राष्ट्रोंकी स्वतन्त्र इच्छा एवं समान सहयोगसे नहीं हुआ था,बल्कि इसका कारण सभोंके ऊपर प्रसियाकी प्रभुता थी। जर्मन-राष्ट्रोंके आकारमें महान अन्तर होना अमेरिकन एकताके साथ उनकी तुलनामें बाधा उपस्थित करता है। इतना ही नहीं, छोटे और बड़े का आकारमें भिन्न होना, साम्राज्य-निर्माणमें समान समान भाग लेनेकी अयोग्यता प्रगट करता है। यह किसी भी दशामें नहीं कहा जा सकता कि अधिकांश राष्ट्र वास्तविक सत्ताका उपभोग करते हैं।

राष्ट्रोंने साम्राज्य निर्माणके लिये सत्ताके सभी अधिकारोंको छोड़ दिया था, किन्तु उन्होंने ऐसा अपनी इच्छानुसार नहीं किया था। अधिकांश अंशोंमें वे या तो अस्थायी थे, अथवा प्रसियाकी श्रेष्ठप्रभाव शक्तिके सन्मुख उन्हें दबना पड़ा। बिस्मार्कके सिद्धान्तानुसार छोटे राष्ट्रोंसे जो कुछ लिया जाय उसे राष्ट्रको देना नहीं है, किन्तु उन छोटे राष्ट्रोंसे उस चीजकी मांग पेश करना है जिसकी साम्राज्यको आवश्यकता है। किन्तु बिस्मार्कके ऊपर दृढ़ विश्वास रखते हुए यह कहना कि बिस्मार्कके निर्णयानुसार राष्ट्र-सत्ताके सभी अधिकारोंको प्राप्त कर रहा था, जिन्हें उसे सर्वदाके लिये प्राप्त कर लेना था; इसके विपरीत, उसका अर्थ समय पर न प्राप्त होनेवाली बातको भविष्यके ऊपर छोड़ देना था। और वास्तवमें, छोटे छोटे राष्ट्रोंके आधारपर

रीचकी शक्ति धीरे-धीरे बढ़ रही थीं। समयकी गतिने बिस्मार्ककी आशानुसार सब कुछ प्राप्त कर लिया।

जर्मन-विनाश और राष्ट्रके राजकीय जीर्ण-शीर्ण रूपने इन उन्नतियोंकी ओर आवश्यकतासे अधिक ध्यान दिया।

यही बात रीचके संघवादी रूपके लिये हानिकारक प्रमाणित हुई, शान्ति सन्धिको स्वीकारकर रीचपर एक भीषण आघात किया गया।

यह प्राकृतिक और प्रत्यक्ष था कि देशोंने अपने आर्थिक शासनको खो दिया और उसे रीचके ऊपर ही छोड़ दिया, किन्तु ऐसा तभी हुआ था जबकि रीचकी युद्धमें पराजय हो गई थी, और उसने अर्थिक धन्धोंको अपने कर्त्तव्य रूपमें अपना लिया था, जिनकी अब राष्ट्रोंसे तो आशा नहीं की जा सकती थी। पुनः जब रीचने रेलवे और पोस्टल विभागको अपने हाथमें लिया, तो यह निश्चित सा हो गया कि शन्ति सन्धिकी पूर्त्तिकर जातिको गुलाम बनानेके लिये राष्ट्रका परतन्त्रीकरण हो रहा हैं।

बिस्मार्कका साम्राज्य स्वतन्त्र और असीमित था। वह फिजूल खर्चोंके बोझसे नहीं लदा हुआ था, जैसा कि आजकलका जर्मनी प्रतीत हो रहा है। उसका खर्च महत्वपूर्ण चन्द घरेलू विषयोंतक ही सीमित था। इसलिये वह धनकी प्रभुताके बिना ही कार्य-सञ्चालनमें योग्य था और प्रान्तों द्वारा मिले हुए धनसे उसका भलीभांति निर्वाह हो जाता था; और स्वभावतः बात यह थी कि राष्ट्रोंका सत्ता-अधिकार नहीं छीना गया था और उन्हें साम्राज्यके सञ्चालनार्थ बहुत कम धन देना पड़ता था. वे साम्राज्यको जो कुछ भी देते थे उसके

लिये उन्हें सन्तोष था। किन्तु यह कहना सर्वदा मिथ्या और असत्य प्रचार होगा कि जो कुछ भी असन्तुष्ट वातावरण उपस्थित था वह राष्ट्रकी आर्थिक कठिनाइयोंको लेकर ही उत्पन्न हुआ और उसके लिये साम्राज्य ही उत्तरदायी था। नहीं, यह किसी भी दशामें सत्य नहीं था। साम्राज्यके विचारसे सत्ता-अधिकारके अपहरणके कारण आनन्दमें बाधा नहीं पड़ी थी, किन्तु यह रीचके दयनीय पथका परिणाम था जिसके द्वारा जर्मन-जातिका प्रतिनिधित्व होता था।

इसप्रकार आजकल कई कारणोंसे अपनी आत्मरक्षाके लिये रीच राष्ट्रोंके सत्ता-अधिकारोंको संक्षिप्त बनानेके लिये बाध्य है, केवल साधारण भौतिक दृष्टिकोणसे ही नहीं, किन्तु सिद्धान्तके आधार पर भी ऐसा होना आवश्यक है। यह देखते हुए प्रत्यक्ष है कि रीच अपने नागरिकोंका बचा हुआ खून आर्थिक नीति द्वारा चूस रही है, और यह उनके अधिकारोंको बलपूर्वक छीननेमें लगी रहेगी, जबतक कि इसे विद्रोहकी ज्वाला धधकती हुई न दिखाई देगी।

इसलिये हम राष्ट्रीयतावादी समाजवादियोंको निम्नलिखित आधार पूर्ण सिद्धान्तको स्वीकार करना पड़ा है:—

एक शक्तिशाली राष्ट्रीय रीच ही, जो व्यापक दृष्टिकोणसे नागरिकोंके स्वार्थोंका ध्यान रक्खे और उनकी रक्षा करे, हमें स्वतन्त्रता प्रदान करने योग्य हो सकती है; उस समय इसे राष्ट्रकी दृढ़ताके लिये चिन्ता करनेकी कोई भी आवश्यकता नहीं है। दूसरी ओर, एक शक्तिशाली राष्ट्रीय गवर्मेन्ट महान कार्य्योंके लिये उत्तरदायित्व ग्रहण कर, साम्राज्यके विचारको दुर्बल बनाये बिना ही मनुष्यों और राष्ट्रों

को स्वतन्त्रता प्रदान कर सकती है,यदि प्रत्येक नागरिक यह विचार रखता है कि ये प्रयत्न जातिकी महानताके लिये ही किये जा रहे हैं।

यह एक माननीय बात है कि संसारके सभी राष्ट्र घरेलू मामलोंमें परस्पर एकता स्थापित करने जा रहे हैं, और जर्मनी भी इस बातमें किसीसे पीछे नहीं रहेगा।

एकताका कोई भी प्रयत्न चाहे कितना ही प्राकृतिक क्यों न हो, विशेषतः व्यवहारिक विषयोंमें,यहां नेशनल सोशलिष्टोंका यह कर्त्तव्य होगा कि वे आजकल रीचमें इस उन्नतिके विरुद्ध एक शक्तिशाली विरोधी वातावरण उपस्थित करें,यदि इन प्रयत्नोंका प्रयोजन विनाश-कारी परराष्ट्र-नीतिको सम्भव बनाना है। इसी कारणसे आजकलकी रीच अपने अधिकारमें रेलवे, पोस्टल विभाग, अन्य आर्थिक विभाग इत्यादिको अपने हाथमें रखना चाहती है, हालांकि यह उच्च राष्ट्रीय नितिके विरुद्ध है, किन्तु असीम नियमोंकी पूर्तिके लिये हम नेशनल सोशलिष्ट इस नीतिके विरुद्ध सभी सम्भव उपायों द्वारा बाधा प्रदान करेंगे।

इस प्रकारके केन्द्रीकरणका विरोध करनेका दूसरा कारण यह है कि यहूदी पजातन्त्रवादी रीच, जो कि जर्मन-जातिके लिये श्राप स्वरूप होगई है, राष्ट्रोंकी आपत्तियोंको दुर्बल-करनेका उपाय खोज रही है, जिससे इन्हें पूर्णतया अमहत्वपूर्ण कह कर दबा दिया जाय, क्योंकि इन आपत्तियोंपर युग-भावोंका कोई भी पभाव नहीं पड़ा है।

हमारा दृष्टिकोण सर्वदा राष्ट्रीय नीतिके उच्च विचारों द्वारा निर्धा-रित रहा और यह कभी भी संकीर्ण विचारोंपर स्थित नहीं रहेगा।

यह अन्तिम अवेक्षण तबतक आवश्यक था जबतक कि हम नेशनल सोशलिष्ट इस बातको अस्वीकार करनेकी कल्पना न करते कि रीचको अधिकार हैं कि वह राष्ट्रोंकी अपेक्षा सत्ता-अधिकारोंका अधिक उपभोग करे। यहां अधिकारके सम्बन्धमें किसी भी प्रकारका प्रश्न नहीं उठना चाहिये और न उठ ही सकता था। क्योंकि हमारे लिये राष्ट्र स्वयं ही एक रूप है; जब कि जो कुछ इसके अन्तर्गत है वही लाभदायक है, उदाहरणार्थ जाति,जनता—यह स्पष्ट है कि प्रत्येक चीजको जाति-स्वार्थोंकी पूर्तिके लिये नियुक्त करना ही पड़ेगा, और, विशेषतः हमलोग किसी भी राष्ट्रको राष्ट्रकी हैसियतसे जाति और रीचके (जो जातिका प्रतिनिधित्व करती है) अन्तर्गत स्वतन्त्र राजनीतिक सत्ताका उपयोग करनेकी आज्ञा नहीं दे सकते। साम्राज्यके राष्ट्रोंको अपना विधान बनानेका अधिकार देनेके पापको रोकना ही पड़ेगा। जबतक ऐसी दशा रहेगी, विदेशी हमारी रीचके स्थायीपनमें सन्देह प्रगट करते रहेंगे,और उसीके अनुसार वे अपना कार्य्य करेंगे।

भविष्यमें सांस्कृतिक विषयोंमें साम्राज्यसे राष्ट्रोंका विशेष महत्व रहेगा। जिस राजाने बवेरियाकी प्रसिद्धिके लिये प्रयत्न किया वह जर्मनविरोधी भावनाओंका विशेषज्ञ नहीं था, किन्तु वह उनमेंसे एक था जिनकी सहानुभूति लुडविग प्रथमकी भांति जर्मनीके साथ सर्वदा ही रही है।

सेनाको राष्ट्रोंके प्रभावोंसे परे रखना ही होगा। आगामी नेशनल सोशलिष्ट राष्ट्र भूतकालकी तरह सेनाको ऐसे काममें न लगायेगा जो उसके लिये उपयुक्त न हो और इसप्रकार एक भूलसे अपनी

रक्षा करनेमें समर्थ होगा। जर्मन-सेनाका उद्देश्य किसी दलविशेषके प्रति पूर्णानुराग नहीं रखना होगा, किन्तु समस्त जर्मनोंको पारस्परिक एकताका पाठ पढ़ाना होगा। जो कुछ जातिके जीवनमें भेदभाव उपस्थित करता है, सेनाको उसे एक सूत्रमें आबद्ध करनेका प्रयत्न करना होगा और उसे जर्मन जातिके बीच उपयुक्त पदासीन करना पड़ेगा। इसे नवयुवकोंको इसप्रकारकी शिक्षा देनी होगी जिससे वे सीमाओंको अपना घर न समझें, किन्तु अपनी पितृभूमिके प्रति हृदयमें श्रद्धाभाव बनाये रक्खें; क्योंकि यह वही प्रिय वस्तु है जिसकी उन्हें एक दिन रक्षा करनी ही पड़ेगी। इसलिये, किसी नवयुवक जर्मनको घरमें बैठने देना, महान मूर्खता होगी, किन्तु यह बहुत ही अच्छा होगा यदि उसे सैनिक सेवा करनेके लिये प्रेरित किया जाय। यह आजकल और भी अधिक लाभदायक है, क्योंकि नवयुवक जर्मन अब पूर्ववत् किसी भी तरहके व्यर्थ पचड़ोमें नहीं पड़ते।

राष्ट्रीयतावादी समाजवादके सिद्धान्त संघस्थित एक ही राष्ट्रके स्वार्थोंकी रक्षा नहीं करते, किन्तु जर्मन-जातिका नेतृत्व करते हैं। ये जातीय जीवनके लिये अत्यन्त लाभदायक हैं और हमारे जीवनका नवीन रूप बनाने योग्य हैं; इसलिये ये उन सीमाओंको अतिक्रमण करनेका अधिकार रखते हैं, जिन्हें हमने छोड़ दिया था और जो आज हमारी राजनीतिक उन्नतिके लिये आवश्यक हैं।

—*—

ग्याहरवां अध्याय।

प्रचार और संगठन।

प्रचार कार्य्य को संगठनकी अपेक्षा अधिक अग्रसर होना पड़ेगा, और उन सभी मानव पदार्थों पर विजय प्राप्त करनी होगी जिनके अनुसार संगठनोंका कार्य्य करना है। मैं सर्वदा ही उतावले और पांडित्यदर्शी संगठनोंका कट्टर शत्रु रहा हूं, क्योंकि ये सर्वदा ही व्यर्थ परिणाम पर पहुंचते हैं।

इसी कारणसे एक विचारको किसी एक केन्द्रसे प्रचार द्वारा घोषित करना होगा और तब एकत्रित जनतामें से खूब जांच-पड़तालके पश्चात नेताओंकी परीक्षा कर उनका चुनाव करना होगा। ऐसा प्रायः ही देखनेमें आयेगा कि जो मनुष्य प्रारम्भमें ही प्रत्यक्ष योग्यता नहीं प्रदर्शित करते वे आगे चल नेता नही बन सकते।

इस बातकी कल्पना करना कि सैद्धान्तिक बुद्धिका आधिक्य और गुणोंका व्यर्थ अभिमान नेतृत्वके लिये आवश्यक है, हमारी एक बहुत बड़ी भूल है। किन्तु वस्तुतः इसका विपरीत ही सही है।

एक महान सिद्धान्त-प्रवर्तक एक बड़ा नेता नहीं हो सकता। एक आन्दोलक ही उन गुणोंसे सम्पन्न होसकता है—किन्तु उनके लिये यह एक दुःखदायक सम्वादके समान होगा जिनका काम एक प्रश्नको केवल

वैज्ञानिक तरीकेसे ही हल करता है; एक आन्दोलक जो अपने विचारोंको जनताके सामने भलीभांति व्यक्त कर सकता है वह एक आत्मतत्वज्ञ भी हो सकता है, यद्यपि वह जनसमुदायका एक नेता है। वह एक नेताकी हैसियतसे एक अवसरप्राप्त सिद्धान्त-प्रवर्तककी अपेक्षा अच्छा है, जो कि मानवसमाजके विषयमें कुछ भी नहीं जानता। योग्यता पूर्वक जनताका संचालन करना ही नेतृत्वकी परिभाषा है। नेतृत्वका योग्यता और विचारोत्पादक प्रतिभासे कोई भी सम्पर्क नहीं है। किन्तु एक ही मनुष्यमें सिद्धान्त-पूवर्तक, संगठनकर्त्ता और नेता तीनोंका ही गुण बड़ी कठिनतासे पाया जाता है; इन्हीं तीन गुणोंका संयुक्त गठन महानताका परिचायक है।

मैं पहले ही अपने उस ध्यानका वर्णन कर चुका हूं जिसे मैंने आन्दोलनके प्रारम्भिक दिनोंमें प्रचारकी ओर दिया था। इसका कार्य्य नये लोगोंको आन्दोलनके सिद्धान्तोंसे परिचित करना था, और इसप्रकार किसी भावी संगठनके लिये प्राथमिक तत्वोंका निर्माण करना था। व्यवहारानुसार प्रचारके उद्देश्य संगठनके उद्देश्यसे कहीं बढ़चढ़कर हैं।

जो कुछ कार्य्य प्रचारको करना है उसका अर्थ यही है कि किसी निश्चित विचारकी ओर अनुयायियोंको आकर्षित किया जाय, जब कि संगठनका कार्य्य अच्छे अनुयायियोंको दलका कार्यकुशल सदस्य बनाना है। प्रचारका यह कर्त्तव्य नहीं है कि वह अपने अनुयायियोंकी बुद्धिमत्ता, योग्यता, स्वभाव अथवा मानसिकताकी परीक्षा करे, किन्तु यह संगठनका कर्त्तव्य है कि वह जनतामें से सतर्कता-

पूर्वक ऐसे योग्य व्यक्तिका चुनाव करे जिसमें उपरोक्त सभी गुण हों और जो आन्दोलनकी अग्रगतिमें सहायक हो।

प्रचारका पहला कर्त्तव्य आगामी संगठनके लिये लोगोंपर विजय प्राप्त करना है; अर्थात् संगठनको प्रचार द्वारा ही कार्य्यकर्त्ताओंकी प्राप्ति हो सकती है। प्रचारका दूसरा कार्य्य किसी नये सिद्धान्त द्वारा स्थित दशाओंमें उलट-पुलट करना है,अर्थात् संगठनका कार्य्य शक्तिके लिये लड़ना है, और इसप्रकार इसके द्वारा सिद्धान्तके लिये अन्तिम विजय प्राप्त करना है।

संगठनके प्रमुख कर्त्तव्योंमें एक यह भी है कि वह इस बातका ध्यान रक्खे कि आन्दोलनकी सदस्यतामें किसी प्रकारके भेदभावकी सृष्टि न हो जिससे प्रायः दलबन्दी हुआ करती है, और इस प्रकार आन्दोलनकी निर्बलताको दूर किया जा सकता है, साथ ही साथ आक्रमण-शक्तिका अभाव नहीं होना चाहिये, किन्तु सर्वदा ही इसकी पुनरावृत्तिकी जानी चाहिये। सदस्यताकी भी कोई सीमा होनी चाहिये; क्योंकि बुद्धिमत्ता एवं वीरता तभीतक एक मानव समाजमें रहती हैं; जबतक कि कोई संगठन अपनी सीमाके अन्तर्गत रहता है; इसके विपरीत, सीमोल्लंघनका परिणाम आन्दोलनके भविष्यके लिये दुर्बलताकी उत्पत्ति करता है।

इसलिये यह लाभदायक होगा यदि कोई आन्दोलन जो कि सफलता प्राप्त करनेको अग्रसर हो रहा है, अपनी सदस्यताकी सीमा रखता हुआ सदस्य संख्याको विशेष रूपमें न बढ़ावे, और इसप्रकार अपनेको सतर्क बनाता हुआ, अच्छी तरहसे जांच-पड़ताल करता

हुआ, अपने संगठनको बढ़ानेका उपाय सोचे। इसी उपाय द्वारा वह अपनी जड़को दृढ़ और स्वस्थ रखनेमें समर्थ हो सकता है। उसे इस बातका ध्यान रखना होगा कि वही जड़ आन्दोलन पर अपना शासन जमाये रहे, अर्थात् अपने उस प्रचारका स्पष्टीकरण करना होगा जो सार्वदेशिक स्वीकृतिके लिये अग्रसर हो रहा है, और साथही साथ अपने आदेशोंको समझानेके लिये सभी प्रकारके साधनोंकी व्यवस्था करनी होगी।

दलकी ओरसे प्रचारके व्यवस्थापकी हैसियतसे मैंने आन्दोलन के भविष्यकी महानताके लिये ही प्रयत्न नहीं किया, किन्तु मैंने उन उग्रवादी सिद्धान्तोंका पदानुसरण किया जिनके द्वारा संगठनको श्रेष्ठ-तत्वोंकी पूर्तिकी प्राप्ति हुई। दुर्बल और बुजदिलोंको आन्दोलनसे दूर भगानेमें इसे आशातीत सफलता मिली थी, और यह इसीका परिणाम था कि हमारे आन्दोलनकी जड़में दुर्बल तत्वोंको प्रवेश करनेका अवसर नहीं प्राप्त हुआ। यह हमारे लिये अत्यन्त लाभदा-दायक प्रमाणित हुआ।

१६२१ ई० के मध्यतक इस महत्वपूर्ण कार्य्य-तत्परताने अच्छा प्रभाव डाला, और इसका परिणाम आन्दोलनके लिये लाभप्रद ही हुआ। किन्तु उसी वर्षके ग्रीष्मकालमें अनेकों घटनाओंने इस बातको प्रत्यक्ष कर दिया कि संगठन प्रचारकी सामनतामें असफल हो रहा है, जिसकी दिनोंदिन सफलता प्रत्यक्ष रूपमें प्रतीत होरही थी।

१६२०-२१ में आन्दोलनके अधिकारमें एक कमेटी आई, जिसका चुनाव असेम्बलीके सदस्यों द्वारा हुआ था। इस कमेटीने

उसी पार्लियामेन्टरी सिद्धान्तको स्वीकार किया हुआ था जिसके विरुद्ध हमारा आन्दोलन डट कर मोर्चा ले रहा था।

मैंने इस मूर्खताको स्वीकार करनेसे इन्कार कर दिया, और थोड़े ही समयके बाद मैं उस कमेटीकी सभाओंमें उपस्थित रहने लगा। मैंने अपने प्रचारको अपनी कार्य्य-पूर्त्तिके लिये लगाया, और इस प्रकार प्रचारका अन्त हो गया; मैंने इस विषयमें किसीसे भी बात करना स्वीकार नहीं किया। इसीप्रकार मैंने अन्य दूसरोंके विभाग-कार्य्योंमें हस्तक्षेप करना छोड़ दिया।

ज्योंही नये नियम स्वीकार किये गये और मुझे दलका सभापति निर्वाचित किया गया, मैंने आवश्यक अधिकारोंको अपने हाथमें कर, उस मूर्खताका शीघ्र ही अन्त कर दिया। पूर्ण उत्तरदायित्वके सिद्धान्त द्वारा कमेटीके निर्णय पुनः मेरे सामने रक्खे गये। सभापति ही आन्दोलनके समस्त शासनके लिये उत्तरदायी है।

यह सिद्धान्त क्रमशः आन्दोलनके आन्तरिक विचारोंमें प्राकृतिक सा होगया, कमसे कम जहांतक दलके शासनका इससे सम्बन्ध था।

कमेटियोंको दोषरहित रखनेका सबसे अच्छा उपाय उन्हें वास्तविक कार्य्योंके लिये नियुक्त कर देना है, क्योंकि ऐसा हो जानेसे वे व्यर्थके पचड़ोंमें न पड़ेंगी। यह बात देख कोई भी हंस सकता था कि कामके समय पर सदस्य चुपचाप भाग भी सकते थे, और किसी का खोजनेपर भी पता नहीं मिल सकता था! इसने मुझे अपनी महान संस्था रीचस्टैगका ध्यान दिलाया। यदि उन्हें वास्तविक कार्यके लिये नियुक्त किया जाय तो वे कितनी जल्दी अपनी जिम्मेदारीसे

हट सकते हैं, यह बात विचारणीय है। यदि प्रत्येक सदस्यको अपने किये हुए कार्यका उत्तरदायित्व दिया जाय, तो मेरी समझमें यह कोई बुरी बात नहीं। किन्तु यहां तो कोरी बकबकसे प्रयोजन है, वास्तविक कामसे नहीं।

दिसम्बर १९२० ई० में हमलोगोंके हाथमें वौल्कस्चर बिओ-बैचर नामक समाचारपत्र आगया। यह समाचारपत्र; जैसा कि इसका नाम बताता है, जनसाधारणके लाभार्थ निकाला गया था, शीघ्र ही नेशनल सोशलिष्ट जर्मन वर्कर्स पार्टीकी एक आवाज होगया। सर्व-प्रथम सप्ताहमें दो बार इसका प्रकाशन होता था, किन्तु १९२३ ई० के प्रारम्भसे यह एक दैनिक-पत्र होगया, और अगस्तमें इसका आकार प्रकार पहलेकी अपेक्षा और भी वृहत् कर दिया गया।

वौल्कस्चर बिजोबैचरकी आवज जनताकी आवाज थी, और इसमें सार्वजनिक संस्थाओंकी दुर्बलताकी अच्छी तरहसे पोल खोली जाती थी। यद्यपि इसमें छपे लेख बहुत ही अच्छे होते थे, किन्तु व्या-पारिक दृष्टिकोणसे इसका प्रबन्ध असम्भव था। इसका आन्तरिक छिपा विचार यह था कि इसका सञ्चालन जनताके चन्दे द्वारा हो; इसका उद्देश्य किसी भी दशामें अपने दूसरे सहयोगियोंसे प्रति-द्वन्दिता करना न था, और साथ ही साथ इसका विचार किसी व्यक्ति या दल विशेषसे आर्थिक सहायता पा उसके इशारों पर नहीं चलना था।

मुझे उस समय बहुत ही दुःख हुआ जबकि मैंने इन खतरनाक परिस्थितियोंमें परिवर्त्तन करनेका निश्चय किया, जिन्हें मैंने शीघ्र

हीं समझा था। १९१४ ई० में, युद्धमें मेरी मैक्स ऐमनसे मित्रता हुई, जो कि अब दलका व्यापार-संचालक है। १९२१ ई० के ग्रीष्म-कालमें संयोगवश मेरी अपने उस मित्रसे मुलाकात हो गई और मैंने उसे आन्दोलनका व्यापार-प्रबन्धक बननेको कहा। बहुत देरकी हिचकिचाहटके बाद—क्योंकि उसे हमारी शर्त्तें स्वीकार थीं—वह सहमत हो गया, किन्तु उसने एक शर्त्त रक्खी कि वह अयोग्य कमेटियोंके इशारों पर नहीं चलेगा, वह केवल एक व्यक्ति की ही प्रधानता मानेगा, और उसीके कथनानुसार काम करेगा।

वास्तविक बात तो यह थी कि पत्रके स्टाफमें कुछ ऐसे आदमी सम्मिलित कर लिये गये थे जोकि कुछ समय पूर्व अमेरियन पीपुल्स पार्टीके सदस्य भी रह चुके थे, किन्तु उनके कार्य्योंसे ऐसा प्रतीत होता था कि वे योग्य हैं। इस परीक्षाका परिणाम शीघ्र ही सफल हुआ। एक मनुष्यकी सत्यता एवं निर्भीकताने ही हमारे आन्दोलनके सेवकोंके हृदय पर विजय प्राप्त कर ली, जसा कि इसके पहले कभी भी देखनेमें नहीं आया था। बादमें वे सब सच्चे नेशनल सोशलिष्ट हो गये,शब्दोंके रूपमें ही नहीं,और उन्होंने अपने अपने जागृत तथा ठोस कामसे, जिसे उन्होंने आन्दोलनके लिये किया था, इस बातकी सत्यताको प्रमाणित कर दिया।

दो वर्षके बीचमें ही मैंने अपने विचारोंको सहयोगके सिद्धान्त की ओर खींचा और आजकल, जहांतक प्रधान नेतृत्व का सम्बन्ध है, ये अपनेको प्राकृतिक समाधान कहनेका दावा कर सकते हैं।

इस प्रणालीकी प्रत्यक्ष सफलता नवम्बर ६, १६२३ ई० को देखने को मिली। चार वर्ष पूर्व, जब मैंने आन्दोलनमें प्रवेश किया था, एक भी रबरकी मोहर न थी। ६ वीं नवम्बर १६२३ ई० को दल तोड़ दिया गया और उसकी सम्पत्ति जब्त कर ली गई। उन सभी चीजोंका मूल्य लगभग १७०,००० स्वर्ण मार्क्स था।

—:o:—

बारहवां अध्याय।

ट्रेड यूनियनका प्रश्न।

आन्दोलनकी १९२२ ई०की अग्रगतिने एक प्रश्नके विषयमें, जो कि उस समय स्पष्ट था, अपना रुख निश्चित करने के लिये वाध्य किया।

अपने फुर्तीले और सरल तरीकोंके अध्ययनके प्रयत्नोंमें जिनके द्वारा हम जनताके हृदयमें प्रवेश कर सकते थे, हमें एक आपत्ति दिखाई दी कि कोई भी कार्यकर्त्ता तबतक हमलोगोंका साथ नहीं दे सकता जबतक कि उसके आर्थिक और व्यापारिक स्वार्थोंका भिन्न मतानुयायियोंसे सम्बन्ध हो और उसका राजनीतिक संगठन उन-लोगोंके हाथमें हो।

मैं पहले ही ट्रेड यूनियनोंके उद्देश्यों और स्वभाव और साथ ही साथ उनकी आवश्यकताओं पर भी लिख चुका हूं। मैंने अपने विचारानुसार यह कहा था कि जबतक राष्ट्र-प्रयत्नों द्वारा अथवा शिक्षाके किसी नवीन आदर्श द्वारा एक मालिकका नौकरके प्रति रुख नहीं बदला, तबतक नौकरके पास अपने स्वार्थोंकी रक्षा करनेके लिये एक दलके गठनमें सम्मिलित होनेके अतिरिक्त और कोई भी चारा न था। मैंने यह भी कहा था कि ऐसा रक्षण कार्य्य

एक राष्ट्रीय जातिके लिये आघातकारी है यदि,इसके कारणोंसे,सामाजिक अन्याय, जातीय जीवनपर भीषण आघात करता रहता, और हम उस निन्दनीय कार्य्यकी गतिमें बाधा देनेमें असफल होते। इतना ही नहीं, मैंने और भी कहा कि ट्रेड यूनियनोंकी तभीतक आवश्यकता है जबतक कि मालिक सामाजिक नियमोंका उल्लंघन करते हैं, और मानवताके तात्विक अधिकारोंकी उपेक्षा कर अपनी धांधली चलाना चाहते हैं।

वर्त्तमान परिस्थितिमें, मुझे विश्वास है कि ट्रेड यूनियनोंकी परमावश्यकता है। वास्तवमें, ये जातिके आर्थिक जीवनके लिये महत्वपूर्ण संस्थायें हैं।

नेशनल सोशलिष्ट आन्दोलन, जिसका उद्देश्य जनताके लिये नेशनल सोशलिष्ट राष्ट्रका निर्माण करना है, निस्सन्देह इस बातको स्वीकार कर सकता है कि तथाकथित राष्ट्रकी प्रत्येक संस्थाका हमारे आन्दोलनसे सम्बन्धित रहना आवश्यक है। इस बातकी कल्पना करना कि शक्तिको स्वयं हस्तगत करना किसी निश्चित पुनर्गठनको सुसम्पन्न कर देना है, जिसका प्रारम्भ उद्देश्यहीन हो, और जिसकी सहायता मनुष्योंके ऐसे गुट्ट द्वारा न हो, जो कुछ समय पूर्व वीरताके भावों द्वारा शिक्षित बनाये गये हों, हमारी महान भूल होगी। यहां भी यह सिद्धान्त अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होता है कि स्वरूपकी अपेक्षा भावका अधिक प्रभाव पड़ा करता है, जिसका निर्माण बहुत शीघ्र ही किया जा सकता है। अच्छे भाव ही मनुष्यमात्रके हृदयपर अपना प्रभाव जमा,स्वरूपके निर्माणमें सहायक होते हैं।

इसप्रकार कोई भी अपने मतानुसार अकस्मात ही किसी नये विधानका प्रस्ताव नहीं कर सकता था, और इसे राजाज्ञा द्वारा उपस्थित करनेकी आशा नहीं रख सकता था। इसके लिये चेष्टा अवश्य हो सकती थी, किन्तु परिणाम पश्चातजीवी नहीं बन सकता था, और निस्सन्देह बिना कुछ कहे-सुने इसे एक हालही के जन्मे हुए बच्चोकी भांति ही माना जायगा। मुझे वेमर विधानके मूलका भलीभांति स्मरण है, और जर्मन-जातिके लिये एक नये विधानका निर्माण करना तथा एक सर्वप्रिय पताकाका आविष्कार करना, दोनों ही प्रश्नोंका गत अर्द्ध शताब्दीसे जातिसे किसी भी प्रकारका सम्बन्ध नहीं है।

नेशनल सोशलिष्ट आन्दोलन ऐसे सभी अनुभवोंकी उपेक्षा करेगा, यह एक ऐसे संगठनका पदानुसरण करेगा जो जनहितके लिये बहुत समयसे कर्मशील है। अतः नेशनल सोशलिष्ट आन्दोलन अपने निजी ट्रेड यूनियन संगठनकी आवश्यकताके अनुभवको अवश्य समझेगा।

नेशनल सोशलिष्ट ट्रेड यूनियनका कैसा रूप होगा? हमारा कर्त्तव्य क्या है, और इसके उद्देश्य क्या होंगे?

यह श्रेणी-युद्धका एक अस्त्र नहीं, किन्तु श्रमिकोंका प्रतिनिधित्व और उनकी रक्षाका एक उपाय है। नेशनल सोशलिष्ट राष्ट्रके राजनीतिक दृष्टिकोणमें किसी भी प्रकारका श्रेणी-भेदभाव नहीं है, किन्तु वह अपने नागरिकोंके समान अधिकारों और उसी तरह समान नियमों, और साथ ही साथ अपने प्रजाके उचित अधिकारोंकी रक्षा करना ही अपना एकमात्र कर्तव्य समझता है। हमारे इस राष्ट्रकी कदापि यह इच्छा नहीं है कि नागरिकोंको किसी प्रकारका कष्ट हो।

ट्रेड यूनियन प्रणालीका प्राथमिक कर्त्तव्य श्रेणियोंके किसी भी युद्धमें लडना नहीं है, किन्तु मार्क्सवादने इसे अपने श्रेणी युद्धका एक अस्त्र बनाया। मार्क्सवादने आर्थिक अस्त्रकी सृष्टि की, जिसे अन्तर-राष्ट्रीय यहूदी राष्ट्रोंके स्वतन्त्र आर्थिक आधार और तत्वको नष्ट करने के लिये नियुक्त करते हैं, जिससे कि उनके राष्ट्रीय उद्योगधन्धे और व्यापारका अन्त होजाय; इसका उद्देश्य स्वतन्त्र जातियोंको यहूदियों के धनका गुलाम बनाना है, जो राष्ट्रकी सीमाके विषयमें कुछ भी नहीं जानते।

नेशनल सोशलिष्ट ट्रेड यूनियनके हाथमें हड़तालका अस्त्र जाति की उत्पत्तिको नष्ट करनेका साधन नहीं,किन्तु उन सभी अपराधोंके विरुद्ध लड़,जो अपने असामाजिक स्वभावके कारण जातिके व्यापार में और जीवनमें बाधा पहुंचाते हैं, जातीय उत्थानमें सहायता प्रदान करनेका एकमात्र उपाय है।

नेशनल सोशलिष्ट कार्यकर्त्ताको इस बातका ध्यान रखना होगा कि जातिकी समृद्धि ही उसका भौतिक सुख है।

नेशनल सोशलिष्ट मालिकको इस बातसे सतर्क रहना होगा कि उसके श्रमिकोंका सन्तोष और सुख उसके व्यापारिक साहसकी उन्नति एवं अस्तित्वके लिये अत्यन्त लाभदायक है।

अन्य दूसरी ट्रेड यूनियनके साथ ही साथ नेशनल सोशलिष्ट ट्रेड यूनियनकी स्थापना करना कोई भी अर्थ नहीं रखता। क्योंकि हमारी ट्रेड यूनियनको अपने आदर्शवादी कार्य्यके परिणामसे इस बातको प्रमाणित कर देना होगा कि जातिको इसीके समान उद्देश्यों-

वाली किसी दूसरी समकालीन संस्थाकी आवश्यकता नहीं है और साथ ही साथ इसे इस बातकी घोषणा कर देना होगी कि इसका अस्तित्व लाभदायक है। समान उद्देश्योंवाली किसी भी संस्थासे संधि नहीं हो सकती, यहां इसे अपने एकमात्र अधिकारका दावा रखना पड़ेगा।

बहुत सी दलीलें ऐसी थीं और अभी भी हैं, जो इस बातकी आवश्यकता प्रगट करती हैं कि हमें एक निजी ट्रेड यूनियनकी परमावश्यकता है।

मैंने सर्वदा ही ऐसे अनुभवोंपर विचार करनेसे अस्वीकार किया है जो आरम्भसे ही असफल होते हैं। मैं इस बातको अपराध समझता हूं कि दीन श्रमिकोंसे, जो कठिनतापूर्वक अपना पेट भरते हैं, किसी संस्थाको सदस्यताका चन्दा लिया जाय।

१९२२ ई० में इन्हीं विचारोंके आधार पर हमलोगोंने अपना कार्य्यक्रम बनाया। लोग इसे अच्छी तरहसे जानते थे, तथापि उन्होंने ट्रेड यूनियनोंकी स्थापना की। किन्तु शीघ्र ही वैसी सभी संस्थायें लापता होगईं। इसप्रकार अन्तमें सभी संस्थाओंको हमारे कथनानुसार चलना पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि हमने न आत्मकपट ही किया और न दूसरोंको ठगा ही।

—*—

तेरहवां अध्याय।

युद्धके पश्चात जर्मनीकी मित्रता-नीति।

परराष्ट्र नीतिके सम्बन्धमें रीचकी व्यर्थता, और मित्रता सम्बन्धी नीतिमें उचित सिद्धान्तोंका अनुसरण करनेमें इसकी असफलता, विद्रोहके पश्चात प्रचलित ही नहीं रही, किन्तु साथ ही साथ उसका स्वरूप भी भ्रष्ट होता गया। यदि युद्धके पूर्व राजनीतिमें विचारोंकी गड़बड़ीको परराष्ट्र कार्य्योंमें राष्ट्र नेतृत्वकी बुराईका परिणाम कहा जा सकता है, तो दूसरी ओर, युद्धके पश्चात यह एक महत्वपूर्ण आकांक्षा थी जिसका महान अभाव प्रतीत होरहा था। यह प्रत्यक्ष था कि जिस दलने विद्रोह द्वारा अपने विनाशकारी उद्देश्योंकी प्राप्ति की थी वह किसी भी दशामें मित्रता-नीतिसे अपना सम्बन्ध नहीं रख सकता था, जिसका उद्देश्य स्वतन्त्र जर्मन-राष्ट्रका पुनर्गठन करना था।

जबतक कि नेशनल सोशलिष्ट जर्मन वर्कर्स पार्टीका रूप छोटा रहा और इसे अधिक प्रसिद्धि प्राप्त नहीं हुई थी, इसके अनुयायियोंकी दृष्टिमें परराष्ट्र नीतिका बिल्कुल ही महत्व न था। और, वास्तवमें, हमारे स्वाधीनता-संग्रामके लिये एक लाभदायक बात यह हुई है कि विनाशके सभी कारणोंको हटा दिया गया है, और साथ ही साथ उन

स्वार्थियोंके अस्तित्वका मूलोच्छेद कर दिया गया है जो इससे लाभ उठा रहे हैं।

इसी समयसे छोटी और अमहत्वपूर्ण इस संस्थाने अपने सुधार वातावरणको व्यापक बनाया, और एक महान संस्थाके महत्वको प्राप्त कर, परराष्ट्र राजनीतिकी उन्नतिकी ओर आवश्यक ध्यान देना आरम्भ किया। हमें उन सिद्धान्तोंका निर्णय करना था, जो कि हमारे तत्वयुक्त विचारोंके विरुद्ध नहीं थे, किन्तु वास्तवमें उन्हींके परिचायक थे।

इस प्रश्नका विचार करनेके लिये हमारे समक्ष उपस्थित लाभ-दायक और आधारपूर्ण विचार यही है कि परराष्ट्रनीति स्वार्थ-साधन का एक उपाय है। किन्तु यह स्वार्थ हमारे स्वातन्त्र्य विचारोंको प्रोत्साहित करता है। परराष्ट्र राजनीतिमें निम्नलिखित विचारके अतिरिक्त और किसी भी सुझाव पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है—किन्तु एक बात विचारणीय है कि—क्या यह वर्त्तमान या भविष्यमें हमारी जातिकी सहायता करेगा ?

इतनाही नहीं, हमें इस बातका विचार करना है कि अपनी भूमिको पुनः प्राप्त करनेका प्रश्न, जिसे एक जाति और राष्ट्र दोनों ही खो चुके हैं, मातृभूमिकी राजनीतिक शक्ति और स्वतन्त्रताको प्राप्त करनेका प्राथमिक उपाय है, साथ ही साथ ऐसी दशामें खोई हुई भूमिका स्वार्थ मातृभूमिकी स्वतन्त्रताके सामने उपेक्षनीय है। किसी वंश या साम्राज्य के प्रान्तोंके अत्याचारितों औरपीड़ितोंकी मुक्तिका अत्याचरित जनता की किसी इच्छासे सम्बन्ध नहीं है, किन्तु शक्तिके उस बचे हुए भागसे

है जिसे पितृभूमिकी सम्पत्ति माना जासकता है और जिसपर एक समय प्रत्येक जर्मनका समान अधिकार था।

उग्र प्रतिवादोंके कारण पीड़ित स्थानोंको एक सर्वप्रिय रीचकी सत्ताके नीचे नहीं लाया गया है, किन्तु यह शक्तियोंके ही संयुक्त गठनका प्रताप है।

किसी भी जातिके नेताओंका यह कर्त्तव्य है कि वे घरेलू नीतिको मद्देनजर रखते हुए, उस शक्तिको धोखा दें; अपनी परराष्ट्र-नीतिमें उन्हें यह अवश्य देखना होगा कि धोखेबाजी होगई है, और उन्हें ऐसे आदमियोंको खोजना होगा जो अस्त्रको तैयार करें।

पूर्वके अध्यायोंमें ही मैं युद्धके पूर्वकी मित्रता-नीति और उसकी अयोग्यताका वर्णन कर चुका हूं। उस समय योरुपमें एक दृढ़ भूमि-नीतिके स्थान पर उपनिवेश एवं व्यापारकी नीतिको अच्छा समझा गया और उसे ही स्वीकार किया गया। यह एक बुरी सूझ थी, क्योंकि अस्त्र उठाये बिना ही देशोंपर अधिकार जमानेकी नीति व्यर्थ हो हुई। इस प्रयत्नका परिणाम यह हुआ कि एक एक सीढ़ी ऊपर न चढ़, एक ही बारमें ऊपर पहुंचनेकी इच्छा करते हुई, हमें नीचे गिरना पड़ा, जैसा कि प्रायः हुआ करता है, और साम्राज्यके उस बुरे नेतृत्वके प्रतिफलमें जर्मनीको विनाशकारी महायुद्धमें जुझना पड़ा। योरुपमें नये देशोंपर अधिकार जमाते हुए, हम उचित पथका अनुसरण कर अपने साम्राज्यको शक्ति बढ़ा सकते थे और इसप्रकार समूचा महा-देश हमारे प्रभुत्वको बिना किसी हिचकिचाहटके स्वीकार कर सकता था।

किन्तु इसके स्थान पर हमारी प्रजातन्त्रीय पार्लियामेंटके सदस्यों ने, जिन्हें मूर्खताका जन्मदाता भी कहा जासकता है, रक्षासम्बन्धी किसी भी प्रकारकी नियमित योजनापर विचार करनेसे इन्कार कर दिया; इतना ही नहीं, उन्होंने योरुप महादेशमें भूमि-प्राप्तिके विचार की उपेक्षा की, और उपनिवेश एवं व्यापारसम्बन्धी नीतिको स्वीकार कर उन्होंने इङ्गलैंडसे मित्रता करनेके विचारको (जो उस समय सम्भव था) त्याग दिया; ठीक इसी समय उन्होंने रूससे सहयोग प्राप्त करनेकी उपेक्षा की—जो कि एक तार्किक पथ था। अन्तमें, उनकी करनीने जर्मनीको विश्वव्यापी महायुद्धमें उतरनेके लिये विवश किया, और इसी महायुद्धमें हैब्सवर्ग घरानेका सर्वनाश होगया।

ब्रिटिश नीतिकी ऐतिहासिक प्रवृत्ति,जिसका दूसरा रूप जर्मनीमें प्रसियन सेनाकी परम्परागत कथाको कहा जा सकता था, एक ऐसा उदाहरण थी जिसे साम्राज्ञी एलिजाबेथने उपस्थित किया था और जिसका उद्देश्य किसी भी योरोपियन शक्तिको महानता प्राप्त करनेमें बाधा प्रदान करना,और यदि आवश्यक हो तो सैनिक आक्रमण द्वारा उसकी शक्तिको क्षीण करना था। ग्रेटब्रिटेन द्वारा स्वार्थ-पूर्तिके लिये नियुक्त इस उपायने सर्वदा परिस्थिति और कर्त्तव्यको देखते हुए ही कार्य्य किया है;किन्तु इसकी इच्छा और विचार सर्वदा एक ही जैसे रहे हैं। सुदूर उत्तर अमेरिकाकी राजनीतिक स्वाधीनता ने, समयकी गतिके साथ ही साथ,योरुप महादेशके सहयोगको अपने महान प्रयत्नों द्वारा प्राप्त कर लिया। इसप्रकार, जब स्पेन और नीदरलैण्ड महान शक्तियोंकी गिनतीमें नहीं रहे, ब्रिटिश राष्ट्रकी समस्त शक्तियां उन्नति-

पथंगामी फ्रांसकी ओर दौड़ीं, और जबतक कि नैपोलियनकी प्रभुत्व-दर्शी सैनिक शक्तियोंका सवदाके लिये पतन नहीं होगया, जिसका कि इङ्गलैंडको महान भय था, तबतक ब्रिटेनने दम नहीं लिया।

जर्मनीके प्रति ब्रिटिश शासन-नीतिका परिवर्तन एक धीमा तरीका था, क्योंकि जर्मनी अपनी राष्ट्रीय एकताके अभावके कारण, इङ्गलैंडको किसी भी प्रकारकी धमकी नहीं दे सकता था।

जो हो १८७०-७१ ई० तक, इङ्गलैंडका अपना वही पुराना रुख रहा। ब्रिटेनके दुर्भाग्यवश, अमेरिकाका अर्थसंसारका महत्व, साथही साथ एक शक्तिकी हैसियतसे रूसकी उन्नतिके प्रति ब्रिटिश हिचकिचाहटोंको जर्मनीने लाभ रूपमें परिवर्तित नहीं होने दिया, क्योंकि जर्मनीको यह भलीभांति विदित हो चुका था कि ब्रिटिश शासन-नीतिकी ऐतिहासिक प्रवृति बहुत ही दृढ़ होचुकी है।

ब्रिटेन जानता था कि व्यापारमें जर्मनीका बहुत प्रभाव है—और इसलिये राजनीतिमें उसका सामना करना टेढ़ी खीर है—क्योंकि अपने अपार उद्योगीकरणके कारण जर्मनी ब्रिटेनके लिये हौआ सा बन गया था। "शान्तिपूर्ण उपायोंसे" संसारपर विजय प्राप्त करना, जिसे हमारा अधिकारीवर्ग अपनी बुद्धिमत्ता की सीमा समझता था, केवल ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंकी चालें थीं जिनके द्वारा वे ब्रिटिश बाधा-शक्तिका संगठन करना चाहते थे। इस बाधाने एक पूर्ण संगठित आक्रमणका रूप धारण किया और उस शासन-नीतिपर अपना प्रभाव जमाया जिसका उद्देश्य विश्वमें शान्ति स्थापना नहीं, किन्तु ब्रिटिश आकाक्षाओंकी पूर्ति करना था। इङ्गलैंडने उन्हीं राष्ट्रोंसे मित्रता

की जिनकी सैनिक शक्तिका सभी राष्ट्र लोहा मानते थे और इसनें उन्हीं मित्र राष्ट्रोंको अपने प्रबल विरोधियोंसे भिड़ाया, जिससे शक्तियोंका विनाश हो, और इसप्रकार अपनी नीतिमें सफलता प्राप्त की। ब्रिटिश दृष्टिकोणसे यह कोई अबुद्धिमत्ता नहीं है, क्योंकि आज कल किसी युद्धको वीरताके माध्यम द्वारा संगठित करनेकी आवश्यकता नहीं; किन्तु परिस्थितिकी अनुकूलताको देखकर ही काम किया जाता है। नीतिका कर्त्तव्य है कि वह इस बातका ध्यान रक्खे कि जाति वीरतापूर्ण उपायोंसे युद्ध न करे, किन्तु व्यवहारिक तरीकोंसे ही काम लिया जाय। तब जो कुछ भी किया जायगा वही उचित होगा, और यदि इसके विपरीत कुछ भी होगा तो वह एक अक्षम्य अपराध या कर्त्तव्य-उपेक्षा मानी जायेगी।

जब जर्मनीमें विद्रोह हुआ जर्मनीकी सभी सांसारिक आकांक्षाओंका भय जाता रहा, जहांतक कि ब्रिटिश शासन-नीतिका इससे सम्बन्ध था। जर्मनी योरुपके मानचित्रसे निकाल दिया जाय, ब्रिटिश स्वार्थोंकी पूर्तिका यह पथ नहीं था। इसके विपरीत, नवम्बर १९१९ई० के भयपूर्ण विनाशने ब्रिटिश नीतिको तत्कालीन नवीन परिस्थितिसे सामना करनेके लिये बाध्य किया, जिसे शीघ्रही सम्भव मानते हुए पहिचान लिया गया—जर्मनीका विनाश हुआ, और फ्रांस योरुप महादेशका सबसे शक्तिशाली राजनीतिक राष्ट्र मान लिया गया। योरुप महादेशसे जर्मनीकी महानताका नष्ट होना इङ्गलैंडके शत्रुओंके लिये ही लाभदायक प्रमाणित हो सकता था। तथापि नवम्बर, १९१८ई० और ग्रीष्मकाल १९१९ई० तक ब्रिटिश नीतिमें किसी भी प्रकारका

परिवर्तन नहीं किया गया, क्योंकि इस युद्धके बीचमें ही जनता अपनी भावना-शक्तियोंको खो बैठी जैसा कि इसके पूर्व कभी भी नहीं देखनेमें आया था।

इतना ही नहीं, फ्रांसकी शक्तिकी महानतामें बाधा देनेके उद्देश्यसे इंगलैंडके पास यही एक सम्भव नीति थी कि वह फ्रांसके पराधिकार के लोभमें हिस्सेदार बने। वास्तवमें ब्रिटेन की उस इच्छाकी पूर्ति नहीं हुई जिसे ध्यानमें रख वह युद्धमें प्रवृत हुआ था। हां, शक्तिके अनुपातसे अधिक एक योरोपियन राष्ट्रकी उन्नतिमें किसी भी प्रकारकी बाधा नहीं दी गई और न उसके लिये महादेशी राष्ट्र-प्रणालीका ध्यान ही रक्खा गया, और वास्तवमें उसकी नींव ठोस होगई थी।

आज फ्रांसकी स्थिति अनुपम हो है। सैनिक दृष्टिकोणसे आज वह अग्रगण्य है और इस महादेशमें कोई भी उसका शत्रु नहीं है, इटली और स्पेनके विरुद्ध उसके सामान्त प्रदेश सुरक्षित हैं, जर्मनीके विरुद्ध अपनी सेना द्वारा रक्षित है, जो कि संसारमें अधिक शक्तिशाली है, और हमारी पितृभूमिकी अशक्तताके कारण उसके समुद्र तटीय प्रदेश उस सेनाके बलपर अपनी रक्षा करनेमें समर्थ हैं, जो कि ब्रिटिश साम्राज्यकी जलसेनासे अधिक शक्तिशाली बनने जारही है।

ग्रेट ब्रिटेनकी स्थायी इच्छा योरुपके राष्ट्रोंकी शक्तियोंको इसप्रकार सीमित बनाये रखना है, जिससे संसारपर ब्रिटिश शासनका प्रभाव जमा रहे।

फ्रांसकी स्थायी आकांक्षा जर्मनीको एक ठोस शक्तिशाली राष्ट्र बननेसे रोकना है, जिससे जर्मनीमें एक ऐसी राष्ट्र-प्रणाली बनायी

जा सके कि जर्मनी छोटे-छोटे राष्ट्रोंमें विभाजित होजाय,और उनकी शक्ति एक दूसरेसे कम या अधिक रहे और उनमें एकतापूर्ण नेतृत्व का अभाव सर्वदा ही बना रहे। उसकी यह इच्छा थी कि वह राइन नदीका बायां किनारा अपने अधिकारमें कर ले और वहां अपनी सेनाका केन्द्र बना, योरुपमें अपनी प्रभुताका विस्तार करे।

किन्तु फ्रेञ्च नीतिका अन्तिम उद्देश्य ब्रिटिश शासन-नीतिकी प्रवृत्तियोंके लिये खतरनाक और असह्य था।

कोई भी ऐसा बृटिश अमेरिकन या इटालियन नहीं है जिसे जर्मन-हितकारी कहा जा सकता था। प्रत्येक अंग्रेज,एक राजकर्मचारीकी हैसियतसे,सर्वप्रिय एक ब्रिटिश है;और यही बात एक अमेरिकनके लिये है। और कोई भी इटालियन ऐसा नहीं था जो इटालियन हितसम्बन्धी नीतिके अतिरिक्त किसी दूसरी नीतिका समर्थन करता। इसलिए, कोई भी, जो विदेशी जातियोंसे मित्रता स्थापित करना चाहता है,और दूसरे देशके राजनीतिज्ञोंसे जर्मन-हितकी आशा रखता है,वह एक गदहा है अथवा एक धोखेबाज राजनीतिज्ञ है।

इङ्गलैण्ड नहीं चाहता था कि जर्मनी संसारका एक शक्तिशाली राष्ट्र बने; फ्रांस यह नहीं चाहता था कि जर्मनी कभी भी शक्तिशाली बने—एक अत्यन्त लाभदायक अन्तर! जो हो, हमलोग संसारमें शक्तिशाली कहलानेके लिये नहीं लड़ रहे हैं, किन्तु हमें अपनी पितृ-भूमि, अपनी राष्ट्रीय एकता,और अपने बच्चोंकी रोजाना रोटीके लिये लड़ना है। इस दृष्टिकोणसे ऐसे दोही राष्ट्र हैं जो हमारे मित्र हो सकते हैं—इटली और ग्रेट ब्रिटेन।

ग्रेट ब्रिटेन एक ऐसे फ्रांसको नहीं चाहता जिसकी सैनिकशक्ति योरुपके दूसरे राष्ट्रों द्वारा अनियन्त्रित हो, ब्रिटिश स्वार्थोंका नाश करने के लिये किसी नीतिको स्वीकार कर सकती थी, फ्रांसकी सैनिक-शक्तिकी प्रधानता ग्रेट ब्रिटेनके विश्वव्यापी साम्राज्यके वक्षःस्थलपर बुरी तरहसे चांप रखती है।

इटली इस बातको सहन नहीं कर सकता कि योरुपमें फ्रांसकी शक्ति और बढ़े। इटलीकी भविष्योन्नति सर्वदा ही मेडिटेरियन जल-वायुवाली भूमिपर निर्भर रहेगी। उसका युद्धमें प्रवृत होनेका उद्देश्य, फ्रांसको सहयोग देना न था, किन्तु एड्रियाटिकस्थित अपने घृणित शत्रुओंको भीषण दन्ड देना था। फ्रांसकी किसी भी शक्तिकी वृद्धि का अर्थ ही इटलीके भविष्यमें बाधायें प्रदान करना है, और इटली इस बातके धोखेमें कभी भी नहीं आ सकता कि राष्ट्रीय सम्बन्ध शत्रुताको दूर कर देगा।

शान्त और सतर्क विचारोंसे पता चलता है कि ये ही ऐसे दो राष्ट्र हैं, ग्रेट ब्रिटेन और इटली, जिनके अत्यन्त आवश्यक प्राकृतिक स्वार्थ जर्मन-जातिके अस्तित्वकी लाभदायक दशाके विरोधमें बहुत ही कम हैं, और वास्तवमें, बहुत कुछ अंशोंमें यह बात बिल्कुल सही है।

जर्मनी और भी अधिक अपमानित हो इसमें ब्रिटिश नीतिका बहुत ही कम स्वार्थ है, किन्तु इसप्रकारकी उन्नति अन्तरराष्ट्रीय धनके मालिक यहूदियोंके लिये अत्यन्त लाभदायक है। वृटिश राष्ट्रकी भलाईके स्वार्थोंके विरुद्ध होते हुए भी, धनके गुलाम यहूदी जर्मनीका

आर्थिक पतन ही नहीं देखना चाहते हैं, किन्तु उनके ध्यानमें इसकी राजनीतिक गुलामीका होना भी आवश्यक है। इसलिये जर्मनी-विनाशके लिये सबसे बड़े आंदोलक यहूदी ही हैं।

यहूदियोंकी विचारधारा बिल्कुल स्पष्ट है। यह जर्मनीको बोल्शेविस्ट बनानेका एक उपाय है, जर्मन राष्ट्रीय बुद्धिमत्ताको लूटनेका एक ढङ्ग है, और इसप्रकार यहूदियोंके धनके पैरोंतले जर्मन श्रमशक्तियोंको कुचलना है, जिससे यहूदियोंके संसार-विजयके उद्देश्यको प्रारम्भिक सफलता मिले।

इङ्गलैण्डमें, जैसा कि इटलीमें है, ठोस राजनीतिज्ञता एवं यहूदी संसारकी धन सम्बन्धी मांगोंके बीच विचारोंका केन्द्रोपसरण प्रत्यक्ष है, और यह प्रायः स्पष्ट ही है।

ऐसा फ्रांसमें ही था कि स्टाक एक्सचजकी इच्छाओं जैसा कि यहूदियों द्वारा कहा गया था, और उस जातिके राजनीतिज्ञोंके बीच जो कि स्वभावतः लालची हैं, समझौता हो गया।

निस्सन्देह नेशनल सोशलिष्ट आन्दोलनके अनुयायियोंके लिये इस बातकी कल्पना करना कि ब्रिटेन भविष्यमें हमारा मित्र होसकता है, सहज नहीं है। किन्तु साथ ही साथ ऐसा सम्भवभी होसकता है। हमारे यहूदी प्रेसोंने ब्रिटेनके विरुद्ध घृणा-प्रचार करनेमें बार-बार सफलता प्राप्त की, और बहुतेरे बेवकूफ जर्मनोंने बिना कुछ सोचे-समझे ही यहूदियोंकी बातोंपर विश्वास कर लिया, और उन्होंने जलसेनाके पुनर्गठनके लिये बकबक करना आरम्भ किया, हमारे उपनिवशोंके हरणका विरोध किया, तथा यह सुझाव पेश किया कि

हमें उन्हें पुनः प्राप्त करना चाहिए। इस प्रकार, उन्होंने बदमाश यहूदियोंको इङ्गलैण्ड विरोधी प्रचारसे लाभ उठानेका सुअवसर दिया। हमारे मूर्ख मध्यश्रेणिक राजनीतिज्ञोंको यह विदित होना चाहिये था कि हमें जिसके लिए अभी लड़ना है वह "सामुद्रिक शक्ति" नहीं है। युद्धके पूर्व भी अपनी योरोपीय शक्तिको बिना समझे बूझे ही ऐसे उद्देश्यके लिये लगाना महान मूर्खता थी। इस तरहकी इच्छा उन मूर्खताओंमें से एक है जिन्हें राजनीतिमें अपराधोंके नामसे सम्बोधित किया जाता है।

मैं एक प्रिय वस्तुका वर्णन करूंगा जिसपर हाल ही के कुछ वर्षोंमें यहूदियोंने अपनी विशेष चातुरीसे अधिकार जमा लिया है— दक्षिणी टीरल।

हां, दक्षिणी टीरल!

मैंइस बातको बता देना चाहता हूं कि मै उनमेंसे एक था जोकि, उस समय जबकि दक्षिणी टीरलके भाग्यका निर्णय हो चुका था— अर्थात् अगस्त १९१४ से, नवम्बर १९१८ ई० तक—उस जगह गये थे जहांकि व्यवहारतः सेना द्वारा उसकी रक्षाका प्रयत्न किया गया था। मैं उस समय लड़ा, इसलिये नहीं कि दक्षिणी टीरलका अपहरण हो जाय,किन्तु इसलिये कि पितृभूमिके हितके लिये वह सुरक्षित रहे। दक्षिणी टीरलका भाग्य स्वभावतः झूठी और बेसिर-पैरकी वक्तृतायें देनेवाले म्युनिकके पार्लियामेंटेरियनोंके ऊपर निर्भर नहीं था, किन्तु युद्धमें लड़नेवाले हमारे रणबांकुरे ही इसके लिये कुछ कर सकते थे। इन्हीं पार्लियामेंटेरियनोंने उस युद्धक्षेत्रका नाश किया जिसने दक्षिणी

टीरलके साथ विश्वासघात किया, और साथ ही साथ अन्य सभी जर्मन जिलोंके लिये एक खतरनाक परिस्थिति कर दी।

इसका सबसे भद्दा भाग तो यह है कि बकवादी स्वयं इस बात पर विश्वास नहीं करतेकि केवल प्रतिवादियोंसेही किसी वस्तुको प्राप्ति हो सकती है। वे स्वयं इस बातको समझते हैं कि उनके पथ कितने निराशाजनक और हानिकारक हैं। वे इसे केवल इसीलिये करते हैं कि उस समय दक्षिणी टीरलकी रक्षा करनेकी अपेक्षा अब उसकी पुनः प्राप्तिके लिये बकबक करना बहुत ही सरल है। प्रत्येक मनुष्य अपना काम करता है,एक दिन वह था जब हमलोगोंने उसकी रक्षाके लिये अपना पवित्र खून बहाया था,और आज एक दिन वह है जब कि ये शरारती अपनी कोरी बकबकसे ही उसे प्राप्त करना चाहते हैं।

यदि जर्मन-जाति योरुपको भयभीत करनेवाली लूटमारको रोकना चाहती है तो उसे गत महायुद्धकी भूलोंका शिकार नहीं बनना पड़ेगा, और ईश्वर तथा विश्वके शत्रुओंकी सृष्टि नहीं करनी होगी, किन्तु इसे अपने विरोधियोंको मुंहतोड़ जवाब देनेके लिये शक्तिका सञ्चय करना होगा। यदि जर्मनी इस प्रकार कार्य्यमें अग्रसर होता है, तो आगामी सन्तानें हमारी चिन्ताओं और आवश्यकताओंको समझेंगी, और हमारे तीक्ष्ण विचारोंको उस समय और भी अधिक स्वीकार करेंगी जब उनके गौरवमय परिणामोंका उन्हें आनन्द प्राप्त होगा।

हैब्सबर्ग राष्ट्रके मृत शरीरके साथ मित्रता-सन्धि करनेके विचार ने ही जर्मनीका विनाश किया। आज भी अति भक्तिपूर्ण भावनायें

परराष्ट्र नीतिकी सम्भवताओं द्वारा हमारे अभ्युत्थानमें बाधा प्रदान करनेको प्रस्तुत हैं।

हमारी गवर्मेन्टोंने हमारी इस जातिमें पुनः स्वाभिमानपूर्ण स्वातन्त्र्य भावनाओंको भरनेका क्या प्रयत्न किया ?

१९१९ ई० में जर्मन-जाति पर शान्ति-सन्धिका बोझ लादा गया,और इस बातकी आशा की गई कि अत्याचारका वह रूप जर्मनीकी मुक्तिमें सहायता प्रदान करेगा। कभी कभी ऐसा होता है कि शान्ति-सन्धियां एक जातिके लिये विपत्तियोंको उपस्थित करती हैं और इस प्रकार उस जातिके अभ्युत्थानका प्रथम आह्वान होता है।

वर्सिलीजकी सन्धि द्वारा क्या किया जा सकता था !

इसका प्रत्येक विषय जातिके मस्तिष्कों और अनुभवों द्वारा जलाया जा सकता था,जबतक कि साठ लाख स्त्री-पुरुषोंके विचारोंमें साधारण घृणा और लज्जा दावानलका रूप नहीं धारण कर लेती,उस ज्वालामें जलती हुई जनतामेंसे अस्त्रोंकी उत्पत्ति हो सकती थी,और भीषण आवाज उठ सकती थी कि—हमलोग भी अन्य दूसरोंकी भांति शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित किये जांय !

प्रत्येक प्राप्त सुअवसरका दुरुपयोग हुआ, और कुछ भी नहीं किया गया। कौन इस बातपर आश्चर्य करनेका साहस रक्खेगा कि हमारी जाति वैसी नहीं हैं जैसा कि उसे होना चाहिये था, और जैसा कि हो सकती थी ?

एक जाति—जो कि हमारी दशामें हो—किसी भी दशामें मित्रता-सन्धियोंके लिये उपयुक्त नहीं समझी जायेगी जबतक कि गवर्मेन्ट

और जनताका पारस्परिक सहयोग न हो और दोनों ही स्वतन्त्रता की रक्षा और घोषणा करनेको प्रस्तुत न हों।

नवीन जलसेनाके लिये चिल्लाहट,हमारे उपनिवेशोंकी पुनर्स्थापना इत्यादि, प्रत्यक्षतः कोरी बातें हैं, क्योंकि इनमें व्यवहारिक सम्भवता का लेशमात्र भी नहीं है,शान्त विचारों द्वारा हम इसे शीघ्रही समझ सकते हैं। जो प्रतिवाद करते हैं, वे अपनी शक्तिको व्यर्थ प्रदर्शनोंमें ईश्वर और संसारके विरुद्ध लगा रहे हैं,और वे—“जो कुछ भी करो सोच-समझकर करो”—इस प्रथम सिद्धान्तको भूलते हैं जोकि सफलताके लिए अत्यन्त लाभदायक है। दस या पांच राष्ट्रोंके विरुद्ध चिल्लाते हुए,हम अपनी राष्ट्रीय इच्छा और शारीरिक दृढ़ताकी समस्त शक्तिको लगा एक शत्रुके हृदयको दहलानेके लिये प्रस्तुत नहीं हैं,और हमलोग लज्जाजनक मित्रता-नीति द्वारा शक्ति प्राप्त करनेके उपायोंकी सम्भवताकी उपेक्षा करते हैं।

ऐसा वहीं है जहां कि नेशनल सोशलिष्ट आन्दोलनका उद्देश्य मान्य है। नह हमारी जनताको दु ख-सहनकी शिक्षा देगा और उस गुणकी ओर ध्यान देगा जिसमें महानता है,और कभी भी इस बात को नहीं भूलेगा कि हमारी लड़ाईका उद्देश्य केवल अपनी जातिकी रक्षा करना है,और यदि हमारा कोई शत्रु है,तो वह वही शक्ति है जो हमारे अस्तित्वका अपहरण कर,हमें परतन्त्र बनाना चाहती है।

इतना ही नहीं, जर्मन-जातिके पास तबतक संसारकी नीतिके विरुद्ध शिकायत करनेका नैतिक अधिकार नहीं है जबतक कि वह अपने देशके धोखेबाजोंको उनके अपराधोंके लिये दण्डित न करे।

यह चिन्तनीय विषय है कि जो जातिके सच्चे स्वार्थोंको उप-स्थित करते हैं, जिनसे एक मित्रता-नीति सम्भव हो सकती है, क्या वे स्वतन्त्र राष्ट्रीय राष्ट्रोंके शत्रुके विरुद्ध अपने विचार बनाये रखनेमें सफल होंगे ?

यहूदियोंकी तीन शक्तियोंके विरुद्ध फैसिस्ट इटलीकी लड़ाई—अविवेकतः शायद,यद्यपि मैं स्वतः उसपर विश्वास नहीं करता—इस बातका अच्छा प्रमाण है कि जहरीले कीड़ोंको,जिन्होंने उपरोक्त राष्ट्र को डुबानेके लिए कुछ भी उठा नहीं रक्खा था, नष्ट करनेके लिये ही एकमात्र उपाय था; यद्यपि इसमें कठिनाइयोंका सामना करना आव-श्यक था। गुप्त संस्थायें अवैध घोशित कर दी गई हैं, स्वतन्त्र एवं सुपर नेशनल प्रेसोंपर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है, और अन्तरराष्ट्रीय मार्क्सवादका नाश कर दिया गया है।

यहांतक कि इङ्गलैण्डमें भी ब्रिटिश राष्ट्रके स्वार्थोंके प्रतिनिधियों और यहूदी नेतृत्वके इच्छुकोंके बीच महान संघर्ष हो रहा है।

युद्धके पश्चात, एक समय, यह प्रत्यक्ष प्रतीत होता था कि किस तरह परस्पर-विरोधी इन शक्तियोंके बीच ब्रिटिश राष्ट्र नेतृत्वके लिए छीना-झपटी हुई,और दूसरी ओर जापानकी समस्याको लेकर प्रेसों में भीषण वादविवाद छिड़ा। यद्यपि युद्ध समाप्त हो चुका था, तथापि अमेरिका और जापानका पुराना पारस्परिक विद्वेष पुनः उपस्थित होता प्रतीत हुआ। सम्बन्धकी विचारधारा अन्तरराष्ट्रीय आर्थिकनीति तथा राजनीतिमें अमेरिकन यूनियनकी द्वेष-चिन्ताको किसी भी तरह नहीं हटा सकतीं थी। यह समझने योग्य है कि एक समय आया

जब कि ब्रिटेनको अपने मित्र राष्ट्रोंकी शरण लेनी पड़ी,और उसे यह प्रतीत हुआ कि एक क्षण आयेगा जब कि शब्द इस प्रकार न होगा कि "ग्रेट ब्रिटेन समुद्र-विजयी है" किन्तु कहा जायगा कि "अमेरिका महासागरका विजेता है।"

यह एक ब्रिटिश स्वार्थ कहीं है किन्तु सर्वप्रथम एक यहूदी स्वार्थ है कि जर्मनीका नाश हो, जैसा कि आजकल जापानका विनाश ब्रिटिश स्वार्थोंकी अपेक्षा आकांक्षित यहूदी-विश्व-साम्राज्यके स्वार्थों के लिये कहीं अधिक लाभप्रद है। जब कि इङ्गलैंड अपने आपको संसारकी एक दृढ़ शक्ति बनानेमें लगा हुआ है,यहूदी अपनी विजयकी योजना बनानेमें तल्लीन हैं।

यहूदियोंको यह बात भलीभांति विदित है कि हजारों वर्षके आदर-सन्मानके फलस्वरूप वे इस बातके योग्य हो गये हैं कि वे योरुपकी जनताको पतनोन्मुख कर सकते हैं और उसे वंशहीन वर्ण सङ्करोंकी भांति बना सकते हैं, किन्तु वे ऐसा एसियास्थित जापान जैसे राष्ट्रमें भी नहीं कर सकते थे, फिर योरोपियन राष्ट्रोंके विषयमें तो पूछना ही क्या है।

इसीलिये आज यहूदी लोगोंको जापानके विरुद्ध भड़का रहे हैं, जैसा कि जर्मनीके साथ वे करते हैं,जबकि ब्रिटिश राजनीति जापानियोंसे मित्रता करनेकी चेष्टा कर रही है,इसी समय इङ्गलैंडके यहूदी प्रेस जापानके विरुद्ध लड़ाईका आह्वान कर रहे हैं और इस बातकी घोषणा करते हुए कि युद्ध होना अनिवार्य है,इसप्रकारकी आवाज उठा रहे हैं कि "जापानी युद्धवाद और साम्राज्यवादका नाश हो।"

इस प्रकार इङ्गलैंडके लिये यहूदी लुटेरोंके समान हैं, और वहां भी यहूदियोंकी संसार-विजयकी धमकीके विरुद्ध शीघ्र ही संघर्ष आरम्भ किया जायगा।

हमारे नेशनल सोशलिष्ट आन्दोलनको इस बातका ध्यान रखना होगा कि हमारे अपने देशमें सब लोग उस मृतवत् शत्रुसे परिचित हो गये हैं, और उसके विरुद्ध संग्राम करना अन्य जातियोंके लिये कम अन्धेरे युगमें प्रकाश द्वारा उजेला करनेके समान हो सकता है, और इससे आर्य्य मानवताको अपने जीवन-संग्राममें सहायता मिल सकती है।

—*—

चौदहवां अध्याय।

पूर्वीय नीतिका निर्धारण।

हमारा तथाकथित शिक्षित समाज बड़े ही भद्दे तरीकेसे हमारी परराष्ट्र नीतिको वास्तविक राष्ट्रीय स्वार्थोंसे वंचित कर रहा था, जिससे कि उनके अतिभक्तिपूर्ण स्वार्थसिद्धान्तोंकी पूर्त्ति हो सके, और मैंने अपनेको इस बातका कृतज्ञ समझा कि तबसे मैं अपने अनुयायियोंके बीच परराष्ट्र नीतिके विषयमें बहुत ही सतर्कता-पूर्वक बोलने लगा, विशेषत: मैं रूसके प्रति अपने सम्बन्धकी व्याख्या किया करता था, क्योंकि उस प्रश्नसे सबको परिचित कराना आवश्यक था।

किसी भी राष्ट्रीय राष्ट्रकी परराष्ट्र नीतिका यह कर्त्तव्य होता है कि वह जातिकी संख्या एवं उसकी वृद्धि और उसकी भूमि एवं गुणके बीच प्राकृतिक एवं स्वस्थ अनुपात रखते हुए, उस वंशके अस्तित्वकी रक्षा करे जो राष्ट्रशब्दको सार्थक बनाये रखनेकी योग्यता रखता है। और कुछ नहीं अधिक भूमि-अधिकार ही एक जातिकी अस्तित्व-स्वतन्त्रता बनाये रखनेमें समर्थ हो सकता है। इस उपायसे जर्मन जाति ही अपनेको विश्व-शक्ति घोषित करते हुये, अपनी रक्षा कर सकती है। लगभग दो हजार वर्षोंसे हमारे राष्ट्रीय स्वार्थ परराष्ट्र नीतिको समझनेमेंसफल रहे हैं,और इसीलिये विश्व-इतिहासमें उनका

नाम स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित है। हम स्वयं ही इस बातकी गवाही दे सकते हैं। १९१४ ई०से १९१९ ई० तक होनेवाला जातियोंका संघर्ष और कुछ नहीं, केवल जर्मन-जातिका अस्तित्व-संग्राम था, और आगे चल जिसे विश्वव्यापी युद्धका रूप दे दिया गया।

सम्भवतः उस समय जर्मन-जाति एक अपूर्व विश्वशक्ति थी। मैंने "सम्भवतः" शब्दका इसलिये प्रयोग किया है कि वास्तवमें उस समय हमारी जाति विश्वशक्ति कहाने योग्य नहीं थी। यदि जर्मन-जाति उपरोक्त कथित अनुपातकी रक्षा कर सकती, तो जर्मनीको एक विश्व-शक्ति माना जा सकता था, और या तो युद्ध नहीं ही होता अथवा हम विजयी होनेका गौरव प्राप्त करते।

आज जर्मनी एक विश्व-शक्ति नहीं है। एक पवित्र भूमिसम्बन्धी दृष्टिकोणसे, जर्मन जातिको रीचका क्षेत्रफल विश्वके तथाकथित अन्य राष्ट्रोंके क्षेत्रफलके सामने कुछ भी नहीं है। यहां इंगलैंडका उदाहरण उपस्थित नहीं किया जा सकता, क्योंकि ब्रिटिश मातृभूमि ब्रिटिश विश्व-साम्रायकी महान राजधानी है, जोकि चतुर्थांश भूमिपर अपना अधिकार रखती है। किन्तु हमें अमेरियन यूनियन, तब रूस और चीन जैसे बृहत्काय राष्ट्रोंको देखना होगा, जिनका क्षेत्रफल महान है, और कुछ तो इतने विस्तृत हैं कि उनका क्षेत्रफल जर्मन-साम्राज्य से दसगुना है। फ्रांसकी गिनती भी इन्हीं राष्ट्रोंमें की जायेगी। वह अपने महान साम्राज्यके विभिन्न वर्णवाले लोगोंसे अपनी सैन्यसंख्या की वृद्धि कर रहा है। यदि फ्रांस वैसा ही करता रहा जैसा कि वह गत तीन सौ वर्षोंसे कर रहा है, तो वह राइनसे कैन्गो तकको

भूमिपर अधिकार जमा लेगा और उस भूमिमें धीरे-धीरे एक ऐसे वंशकी वृद्धि होती जायेगी जो वर्णसङ्करोंकी उत्पत्तिमें सहायक होरहा है। यहीं फ्रेंच उपनिवेश-नीतिसे जर्मनी भिन्न होता है,क्योंकि जर्मनी वर्णसङ्करोंकी उत्पत्तिको नहीं देख सकता।

हमलोगोंने जर्मन-वंश द्वारा अधिकृत भूमिकी न कभी वृद्धि की और न कभी हमलोगोंने काले खूनको उपस्थित कर अपराध तुल्य जघन्य कार्य ही किया है। जर्मन पूर्व अफ्रीकाके असकारी नामक स्थानमें इस ओर कुछ झुकाव हुआ था, किन्तु वैसा करनेका वास्तविक प्रयोजन उपनिवेशकी रक्षा करना था।

विश्वके अन्य महान राष्ट्रोंकी तुलनामें हमलोगोंने सभी प्रकारके आनन्दोंका उपभोग करना छोड़ दिया है, और इसका फल परराष्ट्र नीतिमें हमारा विनाशकारी पथ है, जिसमें उन सभी परम्परागत अच्छे गुणोंका पूर्ण अभाव है, जिनके द्वारा परराष्ट्र नीतिका पथ निर्धारित किया जाता है,और इस प्रकार हमारे सभी दृढ़ स्वाभाविक गुणोंका अपहरण हो रहा है,इतने पर भी बेशर्म राष्ट्र-निर्माणका दावा करते हैं।

नेशनल सोशलिष्ट आन्दोलन इन सभी बातोंका इलाज करेगा, और यह हमारी जनता एवं क्षेत्रफलके बीचके अनतुपातको दूर करनेका प्रयत्न करेगा, क्योंकि हमारे सुधार तथा राजनीतिक आधारका यही एकमात्र उपाय है, और इस प्रकार हमारे विगत इतिहास एवं हमारी वर्त्तमान आशारहित अयोग्यतामें समानता लानेकी चेष्टा की जायेगी।

जर्मन-नीतिके महान कार्य्योंमें प्रसियन राष्ट्रका निर्माण भी एक महत्वपूर्ण कार्य था, और उसके बीच राष्ट्र-विचारोंका प्रचार करने की चेष्टा भी की गई थी। साथ ही साथ जर्मन-सेनाका संगठन भी आधुनिक आवश्यकताओंकी पूर्त्तिके लिये अद्वितीय गठन-प्रणालीका परिचायक था। आत्मरक्षाके स्थान पर कर्त्तव्य रूपमें राष्ट्रीयताकी रक्षा करनेका विचार उसी राष्ट्रके निर्माण और उसके द्वारा उपस्थित किये गये नये सिद्धान्तोंसे उत्पन्न हुआ था। उस घटनाके महत्वके सम्बन्धमें अत्युक्ति करना असम्भव है। जर्मन-जाति, जो व्यक्तिवादके आधिक्यसे पतनोन्मुख हो रही थी, प्रसियन सैन्यवादके तत्वावधानमें अनुशासनके महत्वको समझ गई और इसीके द्वारा उसे अपने खोये हुए संगठनको प्राप्त करनेका पुनः अवसर प्राप्त हुआ। सैनिक शिक्षाके उपायसे, हमलोगोंने एक जातिकी हैसियतके अपने लिये उन सभी गुणोंको पुनः प्राप्त किया, जिनकी दूसरी जातियोंको एकताके पदानुसरणमें सर्वदा ही आवश्यकता रही है। इसलिए सैनिक सेवाको अनिवार्य न रखनेका विचार—जिसका दूसरे अन्य राष्ट्रोंसे कोई भी सम्बन्ध नहीं बताया जा सकता है—हमारे लिये एक दुर्भाग्यकी बात है। दस जर्मन वंशोंको अनुशासन और सैनिक शिक्षा न दी जाती, और उन्हें अनैक्यताका पाठ पढ़ाया जाता, तो यह निश्चित था कि हमारी जाति स्वतन्त्र अस्तित्वके मूलत्वको खो देती। जर्मन और जर्मनीका भाव विदेशी जातियोंकी सभ्यताओंका शिकार बन जाता, और हमारा मूलत्व अन्धकारमें विलीन हो गया होता।

वर्त्तमान समयमें और भविष्यमें हमारी जातिके कार्यक्रमके तरीके

के लिये यह बहुत ही महत्वपूर्ण है कि हमारी जातिकी वास्तविक राजनीतिक सफलताओं एवं लाभहीन उद्देश्योंकी जिनके लिये हमारी जातिका खून व्यर्थ ही बहाया गया था स्पष्टतः तुलनात्मक व्याख्या की जाय और उन्हें एक दूसरेसे भिन्न रक्खा जाय। हमारा नेशनल सोशलिष्ट आन्दोलन मध्यश्रेणी—संसारकी वर्त्तमानकालीन कृत्रिम देशभक्तिका कभी भी समर्थन नहीं करेगा। विशेषतः हमारे लिये यह खतरनाक है कि हमलोग अपनेको उनके समान माने जिन्होंने युद्धके पूर्व उन्नतिका नाम भी नहीं लिया था। हमारा एकमात्र कर्त्तव्य अपने देशकी आबादीके अनुसार भूमि प्राप्त करना है।

१९१४ ई०की सीमान्तोंके परिवर्तनकी मांग राजनीतिक दृष्टि से महान मूर्खता थी तथापि जो इसे ही अपने राजनीतिक कार्य्योंका पथ बताते हैं, और इसप्रकार काम करते हुए मित्रता वा एकताका स्वप्न देखते हैं, वे हमारे प्राकृतिक उन्नति-मार्गमें बाधक है। यही एक व्याख्या है कि क्यों, एक विश्व-संघर्षके आठ वर्ष पश्चात जिसमें कि विजातीय इच्छासे सभी राष्ट्रोंने भाग लिया था, विजयी संयुक्त दल अपना ठोस निर्माण करनेमें लगा हुआ है।

उन सभी राष्ट्रोंने जर्मनीके विनाशसे लाभ उठाया। हमारी शक्ति से भयभीत सभी महान राष्ट्र हमारी कमजोरीको जान गये। उन्होंने विचार किया कि, यदि हमारे साम्राज्यका बंटवारा हो सकता है,तो यह हमारे भविष्योत्थानमें बाधा प्रदान करनेमें उन्हें सहायता देगा। हमारी जातिकी शक्तिका भय और एक आशंकित धारणा ही हमारे शत्रु राष्ट्रोंको भयभीत बना सकती थी।

वियेनाके कांग्रेस अधिवेशनके समयसे हमारे बीच परिवर्तन हो रहा है। राजकुमार और उनकी पत्नियां प्रान्तोंके राज्यके लिये लालायित नहीं है, किन्तु अब दयाहीन अन्तरराष्ट्रीय यहूदियोंसे हमारी लड़ाई हो रही है।

१९१४ ई० की सीमायें जर्मनीके भविष्योत्थानसे किसी भी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रखतीं। भूतकालमें उन्होंने किसी भी प्रकारसे हमारी रक्षा नहीं की, और इनसे न भविष्य ही की आशा की जा सकती थी। ये जर्मन-जातिको आन्तरिक दृढ़ता नहीं प्रदान कर सकती थीं, और न इनके किये कुछ हो ही सकता था;सैनिक विचारोंके दृष्टि-कोणसे न ये सन्तोषप्रद ही होसकती थीं और न इनसे किसी तरहका लाभ ही हो सकता था;इतना ही नहीं,ये हमारी वर्तमान परिस्थितिको दूसरी विश्वशक्तियोंके मुकाबलेमें उन्नत नहीं बना सकती थीं।

केवल एक ही बात निश्चित थी। १९१४ ई० की सीमाओंकी स्थापनाका कोई भी प्रयत्न, हमारी जातिके खूनको दूषित करनेका एक साधन होता, और तबतक यही क्रम जारी रहता जबतक कि जातिके भविष्य और जीवन-निर्माणके लिये नाममात्रको भी एक कार्यकर्त्ता नहीं बचता। इसके विपरीत, उस कोरी सफलताका व्यर्थ जादू हमें अपने सुदूर कर्त्तव्यका ध्यान करनेके लिये प्रेरित करता, क्योंकि इसके द्वारा हमारे "राष्ट्रीय सम्मानकी" रक्षा होती और हमारे उन्नत पथका दरवाजा पुनः खुला प्रतीत होता। हम नेशनल सोशलिष्टोंका यह कर्त्तव्य है कि हम परराष्ट्र नीतिमें अपने उद्देश्यों पर दृढ़तापूर्वक अड़े रहें और इसप्रकार जर्मन-जातिको इसके द्वारा प्राप्त होनेवाली भूमिका स्मरण दिलाते रहे।

कोई भी जाति एक गज भूमि स्वर्गसे लेकर नहीं आई है। सीमाओं का निर्माण और परिवर्तन करना मानव प्रतिनिधियोंके हाथकी बात है इस बातका सम्मान करनेका कोई भी कारण नहीं है कि एक जाति बुरे ढंगसे भूमिपर अधिकार जमानेमें सफल होती है। इससे केवल विजेताकी शक्तिका पता चलता है और उनकी दुर्बलता प्रगट होती है जो उसे अपने हाथोंसे खो देते हैं। यही शक्ति अपना अधिकार जमानेका आदेश देती है।

फ्रांसके साथ सन्धि करनेकी बातको कितना ही अच्छा हम क्यों न समझें,यह उस समय व्यर्थ प्रमाणित होगा जबकि इसके लिये हमें अपनी परराष्ट्र नीतिका त्याग करना पड़ेगा। इसमें तभी तत्व हो सकता है जब कि यह हमारी जनताके लिये योरुपमें रहनेका स्थान दे। उपनिवेशोंको प्राप्त करनेसे हमारी यह समस्या नहीं हल हो सकेगी,किन्तु आबादीके लिये प्राप्त भूमि ही,जो कि नये बासिन्दों को रहनेके लिये सभी प्रकारकी सुविधायें दे सकती है,हमें चिन्ताओं से मुक्त कर सकती है।

हम नेशनल सोशलिष्टोंने गत महायुद्धसे अपनी परराष्ट्र नीतिके विषयमें अपनी धारणाको निश्चित कर लिया है। हमलोग इससमय वहांपर हैं जहां हमारे पूर्वज छः सौ वर्ष पूर्व थे। हम जर्मन-धाराको दक्षिण और पश्चिमकी ओर प्रवाहित होनेसे रोकते हैं, और पूर्वकी ओर अपनी आंखें फेर रहे हैं। हमलोगोंनेयुद्धके पूर्ववाली जो व्यापार एवं उपनिवेशकी नीति थी उसका अन्त कर दिया है, और हम भविष्यकी भूमि-नीतिका पदानुसरण कर रहे हैं।

भाग्य भी हमारा पथ निर्देशक बनता प्रतीत होताहै। जब भाग्यने रूसको बोल्शेविज्मके भरोसे छोड़ दिया,रूसकी जनता उन शिक्षित व्यक्तियोंसे वंचित होगई जिन्होंने एक समय उसके राष्ट्र-अस्तित्वका निर्माण और शिक्षा की थी। यह माना जा सकता है कि अब रूसमें जर्मन-तत्व नहीं रह गया है। उसके स्थान पर यहूदियोंने अपना कब्जा जमा लिया है। रसियनोंको अपनी शक्तिसे यहूदियोंको वहांसे हटानेमें जितनी कठिनता होगी, यहूदियोंको भी उतने बड़े साम्राज्य का कुछ कालतक शासन करनेमें उतनी ही कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा। उनका स्वभाव संगठनकर्त्ताओंकी भांति नहीं है,किन्तु उनका काम सर्वदा ही फूट डालना रहा है। यह महान साम्राज्य एक दिन अवश्य विनष्ट होगा।

१६२०-२१ ई० के लगभग ही हमारा दल अन्य देशोंके मुक्ति-वादी आन्दोलनोंसे सम्बन्ध रखने लगा। यह "पीड़ित जातियोंकी संस्थाके" रूपमें था। उपरोक्त आन्दोलनोंमें बाल्कन राष्ट्रों, मिश्र और भारतवर्षके प्रतिनिधि ही थे, और ये मुझे "आगे नाथ न पाछे पगहा"की लोकोक्ति चरितार्थ करनेवाले बकबकिये ही मालूम पड़े। किन्तु बहुत कम ही ऐसे जर्मन थे, विशेषतः राष्ट्रीयतावादी या नेश-नल सोशलिष्टोंमें, जो कि पूर्वीय बकबकियोंसे सहानुभूति रखते थे और इस बातकी कल्पना करते थे कि कोई भी भारतीय या मिश्री छात्र जो जर्मनीमें आता था वही भारतवर्ष या मिश्रका सच्चा प्रति निधि था। उन्होंने कभी भी जांच करनेका कष्ट नहीं उठाया,और न उन्होंने कभी यही विचार किया कि ये लोग ऐसे हैं जिनके पीछे

और आगे कुछ भी नहीं है और न इनके पास किसी भी तरहका अधिकार है, इसलिये ऐसे लोगोंसे सम्बन्ध रखना व्यर्थ था और अपना समय नष्ट करनेका एक साधन था।

१९२०-२१ ई०में नेशनलिष्ट केन्द्रोंमें जो शैतानियत भरी और उपेक्षनीय आशायें की गई थीं उनका मुझे भलीभांति स्मरण है। यह कल्पना की गई थी कि भारतवर्षमें इङ्गलैण्डका विनाश होनेवाला है। एसियाके कुछ डींग मारनेवालोंने (वे भारतीय स्वतन्त्रताके लिये लड़नेवाले हो सकते थे)जो योरुपमें चारों ओर दौड़धूप रहे थे,लोगोंके हृदयमें आधारयुक्त कारणोंसे इस बातका विश्वास दिलानेकी चेष्टा की कि, ब्रिटिश साम्राज्यका भारतवर्षसे तख्ता उलटनेही वाला है। किंतु उनकी इच्छाओंकी पूर्त्ति न हो सकी, और वे असफल रहे।

इस बातकी कल्पना करना कि ब्रिटिश विश्व-साम्राज्यमें भारतवर्षका महत्व सम्माननीय नहीं है,हमारी बड़ी नादानी है। महायुद्धसे शिक्षा न लेना और ऐंग्लो-सैक्सन स्वभावको न समझना जबकि जनता इस बातकी कल्पना करती है कि इंगलैंड भारतवर्षको स्वतन्त्रता दे सकता था, हमारी नादानीका प्रत्यक्ष रूप है। यह इस बातको प्रमाणित करता है कि जर्मनी उन तरीकोंसे अनभिज्ञ है जिनसे ब्रिटेन भारतवर्षके साम्राज्यका शासन करता है। इङ्गलैंड तबतक भारतवर्षको अपने हाथोंसे नहीं खो सकता जबतक कि वह अपने शासनयन्त्रमें वंशीय गड़बड़ीको स्थान न दे अथवा किसी शक्तिशाली शत्रुकी तलवार द्वारा उसे छोड़नेके लिये बाध्य न किया जाय। भारतीय उत्थान कभी भी सफल नहीं होंगे। हम जर्मन इस बातको

भलीभांति जानते हैं कि इंगलैंडको शक्ति द्वारा किसी कामके लिये वाध्य करना कितना कठिन है। इसके अलावा, मैं एक जर्मनकी हैसियतसे बोलता हुआ, कह सकता हूं कि किसी अन्य जातिकी अपेक्षा भारतवर्षमें ब्रिटिश अत्याचारको बहुत जल्दी ही देखता, यदि वास्तवमें भारतवर्ष अत्याचारित होता।

इसीतरह मिश्रमें ब्रिटिश प्रभावके विरुद्ध जातीय उत्थान निराधार था शान्तिके अवसरों पर यह बहुत ही खराब बात थी। आस्ट्रिया और टर्कीकी मित्रताओंसे कुछ भी आनन्द नहीं उठाया जा सकता था। एक अवसरपर जबकि संसारकी उद्योगशील एवं पराक्रमी शक्तियां एक स्थान पर एकत्रित हो रही थीं, हमने दुर्बलोंको एकत्रित कर एक गुट्ट बनाया, और दुर्बल होते हुए भी हम विश्वके एक कर्मतत्पर गुट्टसे मोर्चा लेनेके लिये अग्रसर हुए, इस भूलके लिये परराष्ट्र नीतिमें जर्मनीको अपार क्षति उठानी पड़ी।

एक राष्ट्रीयतावादीकी हैसियतसे, वंशके सिद्धान्तसे मानवताकी कल्पना करते हुए, मैं इस बातको नहीं मान सकता कि एक जातिके भाग्यको तथाकथित पीड़ित जातियोंके साथ बांध दिया जाय, क्योंकि मैं जानता हूं कि वंशके ध्यानसे यह कितनी बुरी बात है।

वर्त्तमान रूसके शासकोंकी यह इच्छा नहीं है कि वे चिरकालतक किसी सन्धिकी रक्षा करते रहें।

हमे इस बातको नहीं भूलना होगा कि बोल्शेविस्टोंका खून पवित्र नहीं है, अर्थात, परिस्थिति द्वारा समर्थित होनेका कारण, उन्होंने एक महान राष्ट्रपर अपना अधिकार जमा लिया है, और

उन्होंने उन्मादके कारण अपने लाखों बुद्धिमान देशवासियोंको नाराज कर दिया है, और आज एक अत्याचारी नियम द्वारा ये देशका संचालन कर रहे है। हमें नहीं भूलना होगा कि उनमेंसे बहुतेरे वर्ण-सङ्करी निर्दयता और असत्यपूर्ण चातुरीके उपासक हैं, और इस-बातके इच्छुक हैं कि समस्त संसार उनके अत्याचारी शासनके नीचे शरण ले। हमें नहीं भूलना होगा कि अन्तरराष्ट्रीय यहूदी जो कि रूसके ऊपर अत्याचार ढा रहे हैं, जर्मनीको मित्रकी दृष्टिसे नहीं किन्तु एक पतनोन्मुख दृष्टिसे देखते हैं।

जर्मनी रूसके लिये एक भय प्रतीत होता है। यहूदी रूसके बाद ज़र्मनीमें ही बोल्शेविज्म फैलानेकी चेष्टा कर रहे थे। किसी भी तरुण विचारवाले आन्दोलनको हमारी जातिको पुनः एकवार उन्नति पथपर पहुंचनेकी आवश्यकता थी, और इसप्रकार अन्तर राष्ट्रीय विषसे इसकी रक्षा करनी थी, और इसके रक्त-मिश्रणके प्रवाहको रोकना था, जिससे कि जातिकी शक्तियां पुनः स्वतन्त्रता प्राप्त कर स्वातन्त्र्य विचारोंकी रक्षामें सफल हो सकें। यदि यही हमारा उद्देश्य है,तो यहां उस शक्तिकी महान मूर्खता प्रगट होती है जिसका उद्देश्य भविष्यमें हमारी गतिविधिमें बाधा प्रदान करना है।

मित्रता-नीतिके सम्बन्धमें प्राचीन जर्मन-साम्राज्यने जो एक विशेष पाप किया है वह यह है कि उसने इधर-उधर न भटक कर क्रमशः सभी मित्रराष्ट्रोंसे अपना सम्बन्ध तोड़ लिया,और हर प्रका-रसे शान्ति-रक्षा न कर अपनी दुर्बलताका प्रदर्शन किया। एक बात ऐसी भी है जिसके लिये इसे बुरा नहीं कहा जा सकता—इसने रूसके साथ कभी भी अच्छा सम्बन्ध स्थापित करनेकी चेष्टा नहीं की।

मैं इस बातको निर्भीकता पूर्वक स्वीकार करता हूं कि मैं इस बातको अच्छा समझता था कि यदि जर्मनी अपनी उपनिवेश नीति और जलसेनाको त्याग,रूसके आक्रमणके विरुद्ध अपनी रक्षाके लिये इंगलैंडसे मिल जाता।

मै पैन-स्लैभिष्ट रूस द्वारा जर्मनीको दी गयी धमकियोंको नहीं भूला हूं, मैं उस क्रमानुगत व्यवहारिक आन्दोलनको नहीं भूला हूं, जिसका एकमात्र उद्देश्य जर्मनीको सताना था, मैं रूसके जनमतके स्वभावको नहीं भूल सकता,जिसने युद्धके पूर्व हमारीजाति और साम्राज्यपर घृणोत्पादक आक्रमण किया था,और न मैं रसियन प्रेसको भूल सकता था, जो हमारी अपेक्षा सर्वदा ही फ्रांसका अधिक पक्ष लिया करता था।

महान शक्तियोंका वर्त्तमान गठन हमलोगोंके लिये विचार करने और अपनी जनताको स्वप्न-देशसे सत्यकी ओर लानेके वास्ते एक अन्तिम चेतावनी है, और प्राचीन रीचके पुनरुत्थानका एक अन्तिम सुअवसर है।

यदि नेशनल सोशलिष्ट आन्दोलन सभी भ्रमजालको दूर भगाता है और अपने नेतापर विश्वास करता है, तब १९१८ ई० की विपत्ति जातिके भविष्यके लिये आशीर्वाद स्वरूप हो सकती है। हमलोग इंगलैण्डके समान अधिकार पा,चुप हो सकते हैं,कुछ नहीं तो जितना रूस या फ्रांसके पास है उसीके समान भूमिसे हमारीतुष्टि हो सकतीहै

इंगलैंड और इटलीके साथ सन्धि करनेका परिणाम रूसकी सन्धिसे सर्वथा ही विपरीत होता। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि

इन दोनों देशोंसे बिगाड़ होनेपर भी युद्धका कोई भी भय नहीं है। एक ऐसा राष्ट्र भी था जो कि सन्धिके विरुद्ध एक रुख अख्तियार कर सकता था, वह फ्रांस ही था, किन्तु उसकी परिस्थिति ऐसी न थी कि वह ऐसा करता। नयी ऐंग्लो-जर्मन-इटालियन मित्रता-सन्धि परिस्थितिको काबूमें रख सकती थी, और फ्रांसको अपने चालोंसे बाज आना पड़ता। साथ ही साथ वह नयी सन्धि दोनो ही राष्ट्रोंके लिये लाभदायक होती।

निस्सन्देह इसप्रकारकी सन्धि होनेमें कठिनाइयां उपस्थित होतीं, जैसा कि पूर्व अध्यायमें मै कह चुका हूं। किन्तु क्या इसे सरल करनेका कोई उपाय था? जहां कि राजा एडवर्डने स्वभावतः परस्पर विरोधी स्वार्थोंके विरुद्ध सफलता प्राप्त की, हम अवश्य सफलता प्राप्त करेंगे, यदि इस प्रकारकी उन्नतिकी आवश्यकताका ज्ञान हमें अपने कार्य्यक्रमको स्थिर और दृढ़ करनेका आदेश देता है।

निस्सन्देह,हमलोग अपने वंशके शत्रुओंकी चालोंका नाश कर देंगे। हम नेशनल सोशलिष्ट इस बातको अवश्य समझ लेंगे यदि हम अपने हृदयके आन्तरिक दृढ़ विश्वास की,जो कि लाभदायक है घोषणा करें। हमें जनमतको सहनेके लिये कठोर बनना पड़ेगा,जिसके सृष्टिकर्त्ता जर्मन-भावोंका नाश करनेवाले यहूदी हैं। आजकल हम नदी की चट्टानके समान हैं, कुछ वर्षोंमें भाग्य हमें बांध बना सकता है, जो कि नदीके तेजसे तेज प्रवाहको रोकनेमें समर्थ होगा,जिससे कि नदी एक नए पथ पर प्रवाहित हो।

—*—

पन्द्रहवां अध्याय ।

आवश्यक रक्षा ही अधिकार है ।

जब १९१८ ई० की नवम्बरको हमलोगोंने अस्त्र उठाया, उस समय एक ऐसी नीति उपस्थित हुई जिसके कारण मानव सभ्यताका पूर्ण विनाश होना अनिवार्य था।

यह प्रत्यक्ष होगया कि एक युग,जो कि १९०६और१९१३ ई०के बीचमें प्रसियाको उभाड़नेके लिये यथेष्ट था, यद्यपि उसी पराजय हो चुकी थी, एक नई शक्ति और उमंगके साथ बिना किसी उपयोगके ही अग्रसर होनेके लिये बाध्य था, और वास्तवमें, उसका उद्देश्य हमारे राष्ट्रको दुर्बल बनाना था । इसका कारण यह था कि लज्जाजनक सन्धिपर हस्ताक्षर होनेके पश्चात,किसीमें भी इतना साहस या बुद्धि-बल नहीं था कि वह उन अत्याचारी प्रयत्नोंको रोके, जो कि शत्रुओं द्वारा उपस्थित किये जा रहे थे । शत्रु प्रत्येक समय अधिक मांग उपस्थित करनेके लिये चतुर थे ।

शस्त्रोंका परित्याग करनेकी आज्ञा, हमें राजनीतिक दृष्टिसे दुर्बल बनाते हुए, हमारी आर्थिक उन्नतिका धीरे-धीरे अपहरण कर, जेनरल डौसके विचारोंका समर्थन करनेवाली भावनाओंको उत्पन्न करनेमें सहायक हो रही थी ।

१९२२-२३ ई० के शीतकालमें यह बात भलीभांति समझ ली गई कि फ्रांस, शान्तिके परिणामके पश्चात भी, अपने मौलिक युद्ध-उद्देश्योंकी प्राप्तिके लिये शस्त्रोंको तैयार करनेमें लगा हुआ है। कोई भी इसपर विश्वास करनेको प्रस्तुत न होगा कि फ्रांसने अपने इतिहासके चार वर्षव्यापी भीषण युद्धके बीचमें अपनी जनताका पवित्र खून बहाया था और केवल इसलिये उस महान क्षतिकी पूर्त्ति के लिये वह प्रयत्न करनेमें तल्लीन था। स्वयं एलस्क लौरेन फ्रांसके युद्ध-नेताओंके विषयमें किसी भी तरहकी व्याख्या करनेमें असमथ हो सकता था, यदि वह फ्रांसके भावी राजनीतिक कार्यक्रमका एक भाग न होता। वह कार्यक्रम इस प्रकार था—जर्मनीको छोटे-छोटे राष्ट्रोंमें विभाजित किया जाय। यह वही चीज थी जिसके लिये फ्रांस युद्धमें प्रवृत्त हुआ था, और ऐसा करता हुआ वह अपनी जातिको अन्तरराष्ट्रीय यहूदियोंके धनके हाथों बेच रहा था।

निस्सन्देह १९१८ ई० के नवम्बर मासमें जर्मनीका विनाश हो गया। किन्तु, जबकि घरमें विपत्तिके बादल उमड़े आ रहे थे, उस समय भी शत्रु देशोंमें काफी सेना थी। उस समय फ्रांसका ध्यान यह न था कि जर्मनीको विभाजित किया जाय, किन्तु उसका विचार था कि किस तरहसे जर्मन-सेनाको फ्रांस और बेलजियमसे निकाल बाहर किया जाय। इसप्रकार पेरिसस्थित नेताओंका प्रथम कर्त्तव्य जर्मन-सेनाको शस्त्रविहीन और यदि सम्भव हो तो उसे जर्मनी वापिस लौटनेके लिये बाध्य करना था, जबतक कि उसकी पूर्त्ति न होती तबतक वे अपने मौलिक युद्ध उद्देश्यकी ओर यान०

नहीं दे सकते थे। इङ्गलैंडकी दृष्टिमें युद्ध उसी समय समाप्त हो चुका था जब कि जर्मनीकी औपनिवेशिक एवं व्यापारिक शक्ति नष्ट हो गई थी,और वह एक मध्यम श्रेणीका राष्ट्र बननेके लिये बाध्य हो चुका था। जर्मन-राष्ट्रका समूल नाश करनेमें उसका कोई भी स्वार्थ न था, वास्तवमें उसका यही विचार था कि भविष्यमें फ्रांसका सामना करने के लिये योरुपमें एक प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्रकी आवश्यकता है। इस प्रकार युद्धकी नींवको परिपक्व करनेके पूर्व ही फ्रांसको सन्धिकी प्रतीक्षा करनी पड़ी, और पुनः क्लिमैनसिओकी इस घोषणाने कि उसके लिये सन्धिकी घोषणा युद्धकी क्रमानुगतता है, परिस्थितिको और भी महत्वपूर्ण बना दिया।

१९२२-२३ ई०के शीतकाल तक फ्रांसकी सभी आकांक्षाओंको समझ लिया गया।

दिसम्बर १९२२ ई० में जर्मनी और फ्रांसके बीचकी परिस्थिति पुनः भयोत्पादक प्रतीत हुई। फ्रांस अत्याचारके नवीन प्रयत्नों पर विचार कर रहा था, और अपने कार्य्योंके लिए स्वीकृतिकी आवश्यकता समझता था। फ्रांसमें यह आशा की जाती थी कि रूरको अधिकृत कर,वह जर्मनीके मुल रत्वका नाश कर देगा और हमलोगों को एक ऐसी आर्थिक परिस्थितिमें डाल देगा जिसमें हम उसकी अधीनताको स्वीकार करनेके लिये वाध्य किये जायेंगे।

रूरके अधिकृत होनेके पश्चात, भाग्यने पुनः जर्मनीको अग्रसर होनेका एक सुअवसर प्रदान किया, क्योंकि जो कुछ एक समय भीषण दुर्भाग्य दृष्टिगोचर हुआ था, वही एक सूक्ष्म दृष्टिकोणसे

जर्मनीकी समस्त यन्त्रणाओंको दूर करनेकी प्रतिज्ञा कर रहा था।

सर्वप्रथम पूर्णतया एवं सत्यतःफ्रांसने इङ्गलैंडको आश्चर्यचकित कर दिया था-केवल उन्हीं ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंको नहीं जिन्होंने फ्रेंच एकता-सन्धिके लिये चेष्टा की थी और सतर्क दृष्टियुक्त शान्त विचारोंसे उसका निर्माण एवं सम्मान किया था, किन्तु जातिकी महान श्रेणियोंकी भी यही दशा हुई थी। विशेषतः व्यापारिक संसारने महादेशमें फ्रांसकी उस अप्रतिहत वेगसे बढ़ती हुई शक्तिको अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक देखा और समझा। रूरकी कोयलेकी खानोंपर फ्रांसके अधिकारने इङ्गलैंडको उन सभी सफलताओंसे वञ्चित कर दिया जिन्हें उसने युद्धमें प्राप्त किया था,और यह मार्शल फौक और फ्रांस दोनोंका ही प्रताप था कि जिसने विजय प्राप्त की, इसके लिये इङ्गलैंड की सतर्क और कुशल कूटनीतिको श्रेय नहीं दिया जा सकता।

यह सब समझते हुए इटली भी फ्रांसके विरुद्ध हो गया। निस्सन्देह, एक तरहसे युद्धके साथ ही साथ मित्रताका गठबन्धन भी टूट गया,और अब उसका रूप पूर्ण घृणाके विचारोंमें परिवर्तित होगया। वह समय आगया था जबकि एक दिनके मित्र दूसरे दिन ही शत्रु बन सकते थे। इसका कारण यह नहीं था कि जर्मनीमें कोई भी अनवरपाशा नहीं था,किन्तु जर्मनीके पास अभी भी क्यूनो जैसा राजनीति का एक पण्डित था।

जो हो, १९२३ ई० के शरदकालमें जिसके पूर्व फ्रांसका रूरका अधिकार हमारी सेनाके पुनर्गठन पर प्रभाव नहीं डाल सकता था, जर्मन-जातिमें एक नया जोश भरा जा सकता था, उसकी शक्ति

बढ़ायी जा सकती थी, और एक जातिके धोखेबाजोंको उनकी करनी का समुचित दण्ड दिया जा सकता था।

जिस तरह कि १९१८ ई० का रक्तपात १९१४ एवं १५ ई० में मार्क्सवादके विषैले सांपको पैरोंतले कुचलनेकी उपेक्षाका प्रतिफल था उसी तरह १९२३ ई० का शरद्काल मार्क्सवादी धोखेबाजों और जातिके हत्यारोंका नाश करनेमें असफल होनेके परिणामस्वरूप दंड कालका रूप धारण कर रहा था। केवल मध्यश्रेणी ही इस अविश्वसनीय धारणापर पहुंची थी कि मार्क्सवाद पहलेकी अपेक्षा अब और अधिक सम्भव हो सकता था, और १९१८ ई० का पथ उस जातिके अधिकारोंकी रक्षाका साधन प्रतीत हुआ। इस बातकी आशा करना कि वे धोखेबाज जर्मनीके मुक्ति-संग्राम लड़ाके हो सकते थे, अविश्वासनीय मूर्खता थी। वे उस कार्यकी पूर्त्तिका स्वप्न नहीं देख रहे थे। एक मार्क्सवादी उसी तरहसे धोखेबाजी नहीं छोड़ सकता जिस तरह कि एक लकड़बग्घा सड़े हुए मांसको नहीं छोड़ सकता।

१९२३ ई० की परिस्थिति १९१८ ई० के वातावरणसे बहुत कुछ समानता रखती है। सबसे अधिक लाभदायक बात यह थी कि हमारी जातिके शरीरसे मार्क्सवादका विष दूर किया जाय और हमारी बाधा-शक्तिके स्वरूपका इसीके द्वारा निर्धारण हो सकता था। मुझे यह पूर्ण विश्वास हो गया था कि एक सच्ची राष्ट्रीय गवर्मेन्टका प्रथम कर्त्तव्य ऐसी शक्तियोंका सञ्चय करना होगा जो कि मार्क्सवाद का विनाश करें, और साथ ही साथ हमारी तथाकथित गवर्मेन्टको

उन शक्तियोंको सभी प्रकारकी सुविधायें प्रदान करनी होंगी, यह उसका कर्त्तव्य नहीं होगा कि वह "व्यवस्था और शान्तिकी" दुहाई दे,जब कि विदेशी शत्रु पितृभूमि पर प्राणघातक नोति द्वारा आक्रमण कर रहे हों, और देशमें सर्वत्र ही धोखेबाजी और जुआचोरीका साम्राज्य छाया हुआ हो। नहीं, एक सच्ची राष्ट्रीय गवर्मेन्टको अशांति और अव्यवस्थाकी रक्षा करनी चाहिए थी, यदि परिणामकारी गोल-माल हमारी जातिके शत्रु मार्क्सवादियोंकी नींवको दृढ़ करनेका एक अन्तिम प्रयत्न था।

मै प्रायः ही तथाकथित राष्ट्रीयतावादो दलोंसे इस बातकी प्रार्थना कर चुका हूं कि वे हमारे आन्दोलनको मार्क्सवादसे टक्कर लेनेकी अनुमति प्रदान करें, किन्तु मैंने बहुतोंको ही यह शिक्षा दी थी वे, सब यही सोचते थे कि वे अच्छे जानकार हैं, जबतक कि उन्हें समय समय पर विपत्तिका सामना करनेका अवसर नहीं प्राप्त हुआ। यही बात रक्षण सेनाके प्रधान नायकके विषयमें थी। मैं उस समय भली-भांति समझ गया कि जर्मन-मध्यश्रेणीके उद्देश्यका पतन हो गया है और अब वह कर्त्तव्य-क्षेत्रमें अग्रसर न हो सकेगी।

उस समय—मैं इसे निर्भीकतापूर्वक स्वीकार करता हूं—मेरे हृदयमें आल्पस पर्वतके दक्षिणमें रहनेवाले एक महान पुरुषके प्रति श्रद्धा थी,जिसके जाति-प्रेमने उसे इटलीके घरेलू शत्रुओंसे सौदा करने से इन्कार कर दिया,और जिसने उनके विनाशके लिये प्रत्येक सम्भव उपायसे काम लिया। मुसोलिनीमें संसारके महान पुरुषोंकी भांति जो गुण है वह इटलीको मार्क्सवादसे नापाक रखनेकी दृढ़ इच्छा ही

है, और इसप्रकार जातिके शत्रुओंका विनाश करते हुए देशकी रक्षा करना है। उसकी तुलनामें हमारे पाखन्डी राजनीतिज्ञ कितने नीच प्रतीत होते हैं।

हमारी मध्यश्रेणी द्वारा अख्तियार किये हुये रुख और मार्क्स-वादके लिये निर्धारित पथने प्रारम्भमें ही रूरके भाग्यका निर्णय कर दिया था। अपने बीच वैसे शत्रुके रहते हुये भी फ्रांससे लड़ना महान मूर्खता थी।

१९२३ ई० में ही होनहारको समझना बहुत सरल था। इसबात पर विवाद करना कि उस समय फ्रांसके विरुद्ध सैनिक सफलता संभव थी या नहीं हमारी अनाधिकार चेष्टा थी। यदि रूरके विषयमें जर्मन-जातिके प्रयत्नका अर्थ मार्क्सवादका विनाश करना होता, तो निस्सन्देह हम सफलता प्राप्त कर सकते थे। जर्मनी, अपने जीवन एवं भविष्यके शत्रु से एक बार भी स्वतन्त्र हो जाता, तो एक ऐसी शक्ति की सृष्टि करता जिसका सामना विश्वकी कोई भी शक्ति नहीं कर पाती। जिस दिनसे जर्मनीमें मार्क्सवादका पतन हुआ है उसी दिन से सत्यका प्रचार बढ़ता ही जा रहा है।

अपने इतिहासमें कभी भी हम अपने शत्रुओं द्वारा नहीं जीते गये हैं, किन्तु हमारी पराजयका कारण-हमारा घरेलू शत्रु और हमारी भ्रष्टता ही रही है।

जो हो, आकांक्षाओंके एक महान अवसर पर,विधाताने जर्मनी को हर क्यूनो जैसा एक पुरुष दिया है,जिसका पथ-प्रदर्शन इसप्रकार है—"फ्रांस रूरपर अधिकार जमा रहा है,क्या जो कुछ वहां था वह है?

क्या फ्रांस रूरपर उसके कोयलेके लिये कब्जा जमा रहा है?" क्या जातिकी अपेक्षा हर क्यूनोको जो बात अधिक प्रत्यक्ष रूपमे प्रतीत हो सकती थी वह एक हड़ताल ही थी जोकि फ्रांसको कोयलेसे वंचित कर सकती थी,और इसप्रकार रूरपर पुनःहमारा अधिकार होसकता था, क्योंकि हमारा उद्योग लाभदायक नहीं प्रतीत हो रहा था ? यह उस"बाहरी""राष्ट्रीय""राजनीतिज्ञ"की विचारधारा थी।

मार्क्सवादी चाहते थे कि हड़ताल हो,क्योंकि इसका पहला संबन्ध कार्यकर्त्ताओंसे ही है। इसलिये किसी कार्यकर्त्ताको अन्य सभी जर्मनोंके साथ एकताके पथपर लाना लाभदायक था। मार्क्सवादी इस विचारसे सहमत होगये;क्योंकि मार्क्सवादी नेता क्यूनोंके धनको चाहते थे और क्यूनो अपने एकता-पथके लिये उन्हें चाहता था।

उस दिन यदि हर क्यूनो, एक क्रीत आम हड़तालको प्रोत्साहित कर उसे अपने ऐक्य-संगठनका आधार बनानेके स्थानपर, प्रत्येक जर्मनसे दो घन्टा अधिक काम करनेकी मांग पेश करता तो उसके ऐक्य-संगठनका कार्यक्रम तीन दिनमें पूरा होसकता था।

यह तथाकथित निष्क्रय विरोध किसी भी तरहसे स्थायी नहीं हो सकता था। और कोई नहीं केवल एक मनुष्य ही जो कि युद्धके विषयमें कुछ भी नहीं जानता था इस बातकी कल्पना कर सकता था कि उस प्रकारके व्यर्थ उपायसे एक कर्मतत्पर सेनाका सञ्चालन हो सकता था।

रूरमें यदि वेस्ट फेलियन्सोंको इस बातका भरोसा होता कि एक सौ या अस्सी विभागवाली एक सेना उनका समर्थन करनेको प्रस्तुत

है, तो फ्रेञ्च लोगोंको मुंहकी खानी पड़ती। परन्तु उस समय भाग्य हमारे विपरीत था।

ज्योंही मार्क्सवादी ट्रेड यूनियनोंके सन्दूक क्यूनोके चन्देसे भरे, और यह निश्चत किया गया कि निष्क्रिय विरोधके स्थानपर प्रगतिशील आक्रमण-नीतिको स्वीकार किया जाय, उसी समय लाल लकड़बाघा राष्ट्रीय भेड़ोंके बाड़ेको छोड़ पुनः उसी स्थानपर चला गया जहां पहले था। बिना किसी शिकायतके, हर क्यूनोने अपनी मनमानी करना आरम्भ किया और जर्मनी एक अनुभवसे धनी हो गया तथा एक महान आशाने उसे दरिद्र बना दिया।

किन्तु जब निकम्मा विनाश प्रारम्भ हुआ, और रुपयोंके त्याग पर उन हजारों जर्मन नवयुवकोंको, जो कि रीचके शासकोंकी बातों पर सहजमें ही विश्वास कर लेते थे, शर्त्तोंके अधीन होनेके लिये विवश किया गया,हमारे अभागे देशके प्रति होनेवाली उस धोखेबाजी के विरुद्ध घृणायुक्त क्रोधकी ज्वाला भभक उठी। लाखों लोगोंके हृदय में इस बातका प्रकाश छागया कि जर्मनीमें प्रचलित प्रणालियोंका क्रान्तिकारी उलटफेर ही मुक्ति-प्राप्तिमें सहायक हो सकता है।

इस पुस्तकमें मैं अपनी १९२४ ई० की शरदकालीन जांचके समयकी अपनी वक्तृताका अन्तिम वाक्य उद्धृत करता हूं:—

"यद्यपि इस राष्ट्रके निर्णायक हमारे कृत्योंकी निन्दा कर सुखी हो सकते हैं,तथापि इतिहास जो कि सत्य और नियमका ईश्वर है, इस प्रकारके न्यायपर दुःखभरी हंस हंसेगा, और इस बातकी घोषणा करेगा कि हम कलङ्कके भागी नहीं हैं और हमने सर्वदा ही अपने

कर्त्तव्यका पालन किया है। हमें अपने कार्य्योंपर पूर्ण विश्वास है।

मै यहां १९२३ ई० के नवम्बरकी घटनाओंका कोई भी वर्णन नहीं करूंगा; क्योंकि मेरे विचारसे इनसे भविष्यमें कोई भी लाभ नहीं होगा, और उन घावोंकेलिये रोनेकी कोई भी आवश्यकता नहीं है जिनपर झुर्रियां पड़ गई हैं, अथवा उन मनुष्योंके अपराधोंके विषयमें चर्चा छेड़नेकी कोई भी जरूरत नहीं है जो कि जाति और देशसे प्रेम रखते हुए भी दूसरोंके बहकावेमें आ भूल कर बैठे हैं।

—*—

नेशनल सोशलिष्ट जर्मन वर्कर्स पार्टीका कृषक और कृषिसम्बन्धी घोषणापत्र—

म्युनिक, मार्च ६, १९३०

१— जर्मनी के लिये कृषक श्रेणी और कृषिका महत्व।

जर्मन जाति अपने भोजनका अधिकांश भाग विदेशी खाद्य पदार्थ आयात द्वारा प्राप्त करती है। विश्वव्यापी महायुद्धके पूर्व हमलोगोंने इन आयातोंके बदलेमें अपने व्यापारिक निर्यातोंके सहित, अपना व्यापार और विदेशोंमें जमा अपना धन देनेका प्रबन्ध किया था। किन्तु युद्धके परिणामने इस सम्भवताका अन्त कर दिया।

आजकल अपने आयात द्वारा प्राप्त भोजनके लिये हमलोग अधिकांशतः विदेशी ऋणोंकी सहायता ले रहे हैं, जिससे जर्मन-जाति के सिरपर अन्तरराष्ट्रीय धनी महाजनोंके कर्जका बोझ लदता ही जा रहा है। यदि वातावरण ऐसा ही रहा जैसा कि है, जर्मन-जाति उत्तरोत्तर विनाश पथकी ओर अग्रसर होती जायेगी।

इस गुलामीसे जर्मनीका तभी उद्धार हो सकता है जब कि वह अपने देशमे लाभदायक खाद्य-पदार्थोंको उत्पन्न करे। इसलिये जर्मन कृषि द्वारा अधिक उत्पत्ति पर ही जर्मन-जातिके जीवन और मरण का प्रश्न निर्भर है।

इतना ही नहीं, एक देशकी आबादी, जो कि अर्थतः दृढ़ हो और पूर्णतः उत्पत्तिकारक हो, हमारे उद्योगधन्धेके लिये लाभदायक है, जो कि भविष्यमें हमारे घरेलू बाजारोंकी उन्नतिका साधन बनता जायगा।

हम देशकी आबादीको स्वास्थ्यके पैतृक धनका वाहक मानते हैं, जो कि जातिकी युवावस्थाका एक उपाय है, और हमारी अस्त्र-शक्ति के लिये एक बहुत बड़ा सहारा है।

एक बुद्धिमान कृषक श्रेणीका निर्माण, जिसकी संख्याकी वृद्धि साधारण जनताकी भांति ही होती रहे, नेशनल सोशलिष्ट मञ्चके लिये एक लाभदायक विषय है, क्योंकि हमारा आन्दोलन आगामी पीढ़ीकी जनताका हितचिन्तक है।

२—वर्त्तमान राष्ट्रकी कृषक श्रेणी और कृषिके प्रति उपेक्षा।

कृषिसम्बन्धी उपजमें जो कि स्वयं ही वृद्धिकारक है बाधायें पड़ रही है, क्योंकि बढ़ता हुआ ऋण कृषकोंको कृषिकी आवश्यक वस्तुओंको खरीदनेसे रोकता है, और पुनः लोगोंके हृदयकी यह धारणा कि कृषिसे कुछ भी लाभ नहीं है उपजकी वृद्धिमें बाधक सिद्ध होतीहै।

श्रमके बदलेमें हमें कृषिमें असफलता क्यों मिलती है इसके निम्न लिखित कारण हैं:—

(१) वर्त्तमान करसम्बन्धी नीति कृषिके ऊपर अकारण बोझ डालती है। यह दलके विचारोंका परिणाम है, और क्योंकि यहूदियों का विश्वव्यापी धनका बाजार—जो कि वास्तवमें जर्मनीके पार्लियामेन्टरी प्रजातन्त्रवाद पर शासन करता है, जर्मन-कृषिको नष्ट करनेकी इच्छा रखता है, क्योंकि जर्मन-जाति, और विशेषतः श्रमिक श्रेणीको इसकी दयापर निर्भर रहना पड़ता है।

(२) विदेशी कृषकोंको प्रतियोगितामें, जिन्हें हमसे अधिक सुविधायें प्राप्त हैं, हम नहीं ठहर सकते, क्योंकि उनपर हमारी भांति

किसी भी प्रकारका प्रतिबन्ध नहीं लगा हुआ है। उन्हें नानाप्रकारकी सुविधायें प्राप्त हैं।

(३) मध्यस्थ मनुष्य, जो कि उत्पादक और खरीददारके बीच अपना विश्वास जमाता है,बेतरह लाभ उठानेकी चेष्टा करता है।

(४) अत्याचारी करोंके अतिरिक्त कृषकको बिजलीका कर भी देना पड़ता है और इसके अतिरिक्त उसपर अन्य कई प्रकारके बोझ लादे जाते हैं जिनका सम्बन्ध यहूदियोंसे है।

भूमिपर श्रम करनेवाले कृषक इस तरहके अकथित करोंको बर्दाश्त नहीं कर सकते। कृषकोंको कर्ज लेनेके लिये बाध्य कियाजाताहै और उस कर्जके बदलेमें उन्हें करारा ब्याज देना पड़ता है। धीरे-धीरे वे इस अत्याचारके अथाह सागरमें डूबते जाते हैं, और अन्तमें यहूदी महाजन उनका सर्वस्व छीन लेते हैं।

इस प्रकार जर्मन कृषक श्रेणी बेतरह सताई जा रही है।

३—रीचमें, जैसा कि हम आशा करते हैं भूमिके अधिकारोंका सम्मान किया जायेगा और जर्मनीके लिये एक कृषिसम्बन्धी नीतिका निर्धारण होगा

देशकी जनताका हित या कृषिकी पुनरावृत्ति तबतक नहीं हो सकती जबतक कि अन्तरराष्ट्रीय धनिक,प्रजातन्त्रवादी पार्लियामेंटरी प्रणालीसे गवर्मेन्टका शासन करते हैं, क्योंकि इनकी एकमात्र इच्छा जर्मनीकी शक्तिका विनाश करना है,जो कि भूमिपर स्थित है।

नवीन और सर्वथा भिन्न जर्मन राष्ट्रमें,जिसे हम चाहते हैं,कृषक और कृषिकी समस्या पर भलीभांति विचार किया जायगा क्योंकि

ये ही एक सच्चे राष्ट्रीय जर्मन राष्ट्रके सहायक और समर्थक हैं।

(१) जर्मनोंकी भूमि, जिसकी रक्षा और प्राप्ति जर्मन-जाति द्वारा हुई है, जर्मन-जातिकी सेवामें लगाई जायेगी, जिससे कि रहन-सहन और जीविकाका सहारा बना रहे।

(२) जर्मन-जातिके सदस्य ही भूमिके अधिकारी हो सकते हैं।

(३) जो भूमि नियमतः उनके द्वारा प्राप्त की जायेगी वही पैतृक सम्पत्ति मानी जायेगी। जो हो, भूमिके अधिकारके साथ ही साथ इस बातका ध्यान रखना होगा कि राष्ट्रीय स्वार्थोंकी पूर्त्तिके लियेही उसका उपयोग किया जाय। इस बातका ध्यान रखनेके लिये एक विशेष न्यायालयकी स्थापना की जायेगी, उस न्यायालयमें भूमि-अधिकारी श्रेणीके सभी विभागोंके प्रतिनिधि और साथ ही साथ राष्ट्रका एक प्रतिनिधि रहेगा।

(४) जर्मन-भूमि धनके सट्टेका साधन नहीं बन सकती, और न यह अपने मालिकको श्रम बिना लाभ उठानेका अवसरही देसकती है। इसे वही प्राप्त कर सकता है जो कि इसे स्वयं ही जोतनेको प्रस्तुत हो। इसलिये राष्ट्रको यह अधिकार है कि वह विक्रयके लिये प्रस्तुत किसी भूमिको दूसरोंके पूर्व ही खरीद ले।

महाजनोंके पास भूमिको बन्धक रखनेकी सख्त मनाही है। कृषकोंको खेती-बारीके लिये आवश्यक ऋण राष्ट्र द्वारा स्वीकृत संस्थाओं अथवा स्वयं राष्ट्र द्वारा ही दिया जायेगा।

(५) भूमिके गुण और सीमाके अनुसार उसके उपयोगके लिये राष्ट्रको लगानके रूपमें कुछ कर देना होगा। इस कर के अतिरिक्त

गरीब कृषकों पर और किसी भी तरहका असह्य बोझ नहीं डाला जायगा।

(६) कृषिकेलिये किसीभी प्रकारका कठोर वा दुःखदायी नियम नहीं बनाया जायेगा। अपनी आबादी नीतिके दृष्टिकोणसे हमें छोटे और मध्य आकारके खेतोंकी एक बड़ी संख्यामें आवश्यकता है। वृहत रूपमें कृषि कार्य्य करना बहुतही लाभदायक है,और यदि छोटे-छोटे व्यापारोंसे इसका सम्बन्ध रहता है तो इससे राष्ट्रको और अधिक लाभ होता है।

(७) उत्तराधिकार सम्बन्धी एक ऐसा नियम बनाया जायेगा जिसके द्वारा सम्पत्ति-विभाजन और उसपर ऋणका संचय रोका जा सके।

(८) निम्नलिखित दशाओंमें राष्ट्रको अधिकार होगा कि वह भूमिको सुविधानुसार अपने कब्जेमें कर ले:—

(अ) जबकि जातिके किसी सदस्यका उसपर अधिकार न हो;

(आ) जबकि भूमि-न्यायालयसे इस बातका निर्णय हो जाये कि उसका मालिक, कृषिका दुरुपयोग कर, राष्ट्रीय स्वार्थोंको क्षति पहुंचा रहा है;

(इ) भूमिपर स्वतन्त्र कृषकोंको नियुक्त करनेके समय, जबकि मालिक स्वयं उसे न जोत रहा हो;

(ई) जबकि राष्ट्रीय स्वार्थके लिये राष्ट्रको किसी विशेष उद्देश्य के लिये उसकी आवश्यकता पड़े।

अनियमतः प्राप्त भूमि (जर्मन नियमानुसार) बिना किसी क्षति-

पूर्त्तिके ही जब्त की जा सकती है। गवर्मेन्टको अधिकार होगा कि वह अपना दखल जमा ले।

(६) राष्ट्रका यह कर्त्तव्य है कि वह प्राप्य भूमिको, उक्त आधारों पर स्थित आबादी-नीतिकी योजनानुसार बसानेका प्रयत्न करे। निवासियोंको भूमिपर ऐसी शर्तोंके अनुसार पैतृक अधिकार प्रदान किया जायेगा जिससे वे अपनी जीविकाको सरलतापूर्वक अर्जन कर सकें। उद्योगधन्धे एवं नागरिक योग्यताकी परीक्षाके पश्चातही निवासियोंका चुनाव होगा। कृषकोंके लड़कोंको जिन्हें उत्तराधिकारी होनेका अधिकार नहीं प्राप्त है विशेष सुविधा प्रदान की जायगी।

पूर्वीय सीमाओंको आबाद करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ऐसी दशामें केवल खेतोंकी स्थापना ही यथेष्ट न होगी, किन्तु यह आवश्यक होगा कि ऐसे नगरोंकी स्थापना की जाय जहां बाजार हों जिससे कि इस सम्बन्धमे उपयोगकी एक नई शालाका उद्घाटन किया जासके। छोटे खेतोंको लाभ पहुंचानेका यही एकमात्र तरीका है और इसीसे छोटे-छोटे खेत खोले जा सकते हैं।

जर्मनीकी परराष्ट्र नीतिका यह कर्त्तव्य है कि वह जर्मनीकी बढ़ती हुई आबादीको मद्देनजर रखते हुए उसके पालन-पोषण और रहनेके लिये बृहदाकार भूमि-खण्डोंको प्राप्त करनेका प्रयत्न करे।

४—कृषकश्रेणीकी आर्थिक एव शिक्षासम्बन्धी दृष्टि,

दोनोंसे ही उन्नति करनी पड़ेगी।

(१) भूमिकी आबादीको करोंकी माफी तथा अन्य आवश्यक प्रयत्नों द्वारा शीघ्र ही वर्त्तमान दरिद्रतासे मुक्त करना होगा। बढ़ते हुए

ऋणको व्याज दरमें कमी कर रोकना ही होगा,जोकि गत महायुद्धमें कानूनन लोगोंपर लादा गया था, अर्थात दूसरे शब्दोंमें, यह हमारी गवर्मेन्टके अत्याचारका एक रूप था।

(२) हमारे राष्ट्रकी यह नीति होगी कि वह इस बातका ध्यान रक्खे कि कृपि द्वारा कृषक लाभ उठा सकें। चुंगी, निर्यातोंके राष्ट्र नियम एवं राष्ट्रीय शिक्षाकी योजना द्वारा जर्मन कृषिकी रक्षा करनी होगी।

कृषिसम्बन्धी उपजके मूल्यको बाजारके सट्टोंसे स्वतन्त्र रखना होगा और ऐसा प्रबन्ध करना होगा कि मध्यस्थ लोग खरीददारों और उत्पादकोंके बीचमें पड़ किसी प्रकारका लाभ न उठा सकें,और राष्ट्र उस व्यापारको कृपि-संस्थाओंके रूपमें परिवर्त्तित करनेके लिये प्रोत्साहित करेगा।

ऐसी व्यापारिक संस्थाओंका कर्त्तव्य होगा कि वे कृषकोंके वर्त्तमान खर्चोंमें कमी करें और उपजकी वृद्धि करनेमें प्रयत्नशील हों। सुविधाजनक शर्त्तों पर यन्त्रों या औजारों,बीज,खाद,शिक्षा इत्यादिका प्रबन्ध, टिड्डी दलोंके विरुद्ध संग्राम, स्वतन्त्र सलाह, निदानसम्बन्धी अनुसन्धान इत्यादिही कृषिकी उत्पत्तिमें सहायक हो सकते हैं। राष्ट्र ऐसी कर्त्तव्यशील प्रत्येक संस्थाको अपनी सहायता प्रदान करेगा और विशेषतः राष्ट्र कृषकोंके खाद एवं बिजलीके खर्चों में कमी करने पर ध्यान देगा।

सङ्गठनोंको शर्त्तनामों द्वारा कृपि-श्रमिकोंकी एक श्रेणीकी स्थापना भी करनी होगी, जो कि कृषक-समाजके सदस्य माने जायेंगे,

और सामाजिक दृष्टिमें इसे उचित समझा जायेगा। इन विषयोंपर ध्यान रखना और इनपर उचित निर्णय देना राष्ट्रका एक कर्त्तव्य होगा। इस बातको सम्भव बना दिया जायगा कि अच्छे श्रमिक भूमिके अधिकारी भी होसकें। खेतीकी दशामें जितनी अधिक उन्नति होगी श्रमिकोंको भी उतना ही उन्नत बनानेकी चेष्टा की जायेगी। जब ऐसा हो जायेगा, तब विदेशी श्रमिकको नियुक्त करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी,और भविष्यमें यह प्रणाली सदैदाके लिये ही उठा द ।

(३) कृषकश्रेणीका राष्ट्रीय महत्व इस बातकी आवश्यकता समझता है कि राष्ट्र कृषिमें कार्यकुशल शिक्षाको उपस्थित करे। प्रारम्भिक शिक्षण संस्थायें, कृषिके लिये उच्च विद्यालय, जो कि युवकोंको कृषिकी शिक्षा प्राप्त करनेकी सुविधा प्रदान करें, कृषिकी दशाको उन्नत बना सकते हैं।

५—व्यापारिक संगठन कृषकश्रेणीकी सभी आवश्यकताओंकी पूर्त्ति नहीं कर सकते, नेशनल सोशलिष्ट जर्मन वर्कर्स पार्टीका राजनीतिक आन्दोलन ही ऐसा करनेमें समर्थ हो सकता है।

गावोंकी आबादी बहुत ही गरीब है, क्योंकि समस्त जर्मन-जाति ही गरीब है। इस बातकी कल्पना करना कि एक श्रेणी ही समस्त जातिके भाग्यकी हिस्सेदार है,हमारी महान भूल है, और नगरवासी एवं ग्राम्यवासियोंमें परस्पर विद्वेष फैलाना हमारा महान अपराध है, क्योंकि दोनोंका दुःख-सुख एक ही है।

वर्त्तमान राजनीतिक प्रणालीके अन्तर्गत आर्थिक सहायता स्थाय

उन्नतिको उपस्थित नहीं कर सकती, क्योंकि हमारी राजनीतिक गुलामीका कारण हमारी जनताकी दरिद्रता ही हैं,और यह निश्चित है कि राजनीतिक उपाय ही इसे दूर कर सकते हैं।

प्राचीन राजनीतिक दल, जो कि राष्ट्रीय गुलामीके लिये उत्तरदायी थे और हैं, हमारे स्वतन्त्रता-पथके प्रदर्शक नहीं बन सकते।

हमारे भावीराष्ट्रमें ऐसे अनेकों महत्वपूर्ण आर्थिक कर्त्तव्य है जो कि व्यापारिक संगठनोंकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, अभी भी उस ढङ्गसे ये एक संगठनकारी कार्य्य कर सकते हैं; किन्तु मुक्तिके राजनीतिक संग्रामके लिये, जिसका उद्देश्य एक नयी आर्थिक व्यवस्थाकी नींव डालना है, इन्हें समयानुकूल और योग्य नहीं माना जासकता,क्योंकि इस संग्रामका लक्ष्य किसी एक विशेष धन्धेके लिये लड़ना नहीं है, किन्तु जातिके समस्त हितोंकी रक्षा करना है।

नेशनल सोशलिष्ट जर्मन वर्कर्स पार्टीका आन्दोलन ही मुक्तिके इस राजनीतिक संग्राममें सफलता प्राप्त करेगा।

(हस्ताक्षर) एडलफ हिटलर

हमारी २५ मांगें

नेशनल सोशलिष्ट जर्मन वर्कर्स पार्टीने २५वीं फरवरी १९२०ई० को म्युनिकस्थित हौफ्रहोसफेस्टसलके सभा-भवनमें एक विराट भीड़के सामने संसारको अपना यह कार्य्यक्रम सुनाया था।

हमारे दलके विधानकी दूसरी धारामें यह बात स्पष्ट कर दी गयी है कि यह घोषित कार्य्यक्रम अपरिवर्त्तनीय है।

कार्य्यक्रम

नेताओंकी कोई भी इच्छा नहीं है कि वे एकबारके घोषित उद्देश्योंके स्थानपर नये उद्देश्योंको रक्खें, जिससे केवल जनताके ऊपरी असन्तोषको बढ़ाया जा सके, और इस प्रकार दलके अस्तित्वको दृढ़ बनाया जाय।'

(१) जातियों द्वारा उपभुक्त आत्म-निरूपणके अधिकारके आधार पर एक महान जर्मनीके गठनके लिये हम समस्त जर्मनोंके बीच एकताकी मांग उपस्थित करते हैं।

(२) दूसरी जातियोंके साथ व्यवहार करनेके विषयमें हम जर्मन जनताकी समानताका अधिकार, और वर्सिलीज एवं सेण्ट जर्मैनकी शान्ति सन्धियोंको मटियामेट करना चाहते हैं।

(३) हम अपनी जनताके पालन-पोषण और अपनी बढ़ती हुई आबादीके लिये भूमि और उपनिवेशोंकी परमावश्यकता समझते हैं।

(४) जातिके सदस्य ही राष्ट्रके नागरिक होसकते हैं। जर्मन खूनवाले ही, चाहे वे किसी भी श्रेणीके क्यों न हों, जातिके सदस्य हो सकते है। अतएव कोई भी यहूदी जातिका सदस्य नहीं होसकता।

(५) कोई भी जो कि राष्ट्रका नगरिक नहीं है जर्मनीमें अतिथि के रूपमें ही रह सकता है और उसे विदेशी कानूनोंको मानना ही पड़ेगा।

(६) राष्ट्रकी गवर्मेन्ट और असेम्बलीके लिये मत देनेका अधिकार केवल राष्ट्रके नागरिकोंको ही प्राप्त होसकता है। इसलिये हमलोग यह मांग पेश करते हैं कि सभी सरकारी पदोंपर, चाहे रीचमें, चाहे

गांवमें, या छोटी बस्तियोंमें ही क्यों न हो,केवल राष्ट्रके नागरिकोंको ही नियुक्त किया जाय।

हमलोग पार्लियामेंटको दलबन्दीयुक्त पद-नियुक्तियोंकी भूलभरी प्रणालीका तीव्र विरोध करते हैं,क्योंकि उसमें योग्यता और चरित्रका बिल्कुल ही ध्यान नहीं रक्खा जाता।

(७) हम चाहते हैं कि राष्ट्र अपने नागरिकोंके उद्योग एवं जीविकाकी उन्नति करनेके विचारको अपना प्रथम कर्त्तव्य माने। यदि राष्ट्रकी समस्त जनताका पालन-पोषण करना सम्भव नहीं है, विदेशी राष्ट्रीयतावादियोंको(एक राष्ट्रके अनागरिक), रीचसे निकाल देना होगा।

(८) सभी गैर-जर्मन प्रवासको रोकना पड़ेगा। हम यह चाहते हैं कि सभी अनार्य्य, जिन्होंने २ सरी अगस्त,१९१४ई० से जर्मनीमें प्रवेश किया है,रीचसे बाहर निकलनेके लिये वाध्य किये जांय।

(९) राष्ट्रके सभी नागरिकोंको कर्त्तव्य और अधिकार संबन्धी सभी प्रकारकी समानता प्रदान की जाय।

(१०) प्रत्येक नागरिकका यह कर्त्तव्य होगा कि वह अपने शरीर या अपनी बुद्धिसे काम करे। किसी व्यक्तिकी कार्यतत्परता समस्त जातिके स्वार्थों पर आघात न करे, किन्तु जातिके साधारण हितोंका ध्यान रखते हुए जाति द्वारा निर्धारित सीमाके अन्तर्गत ही रहे।

इसलिये हमलोग कहते हैं कि:—

(११) कार्य द्वारा अनर्जित अनुचित आयोंका नाश किया जाय।

(१२) युद्धमें आकांक्षित जातिके जीवन एवं सम्पत्तिके अनुपम त्यागके दृष्टिकोणमें, युद्धके कारण व्यक्तिगत धनार्जनता जातिके विरुद्ध एक अपराधके रूपमें मानी जायेगी। इसलिये हमलोग चाहते हैं कि युद्धकालीन अर्जित सभी सम्पत्तियोंको जब्त कर लिया जाय।

(१३) हमलोग कम्पनीके (ट्रस्ट) रूपमें उपस्थित सभी व्यापारोंका राष्ट्रीकरण चाहते हैं।

(१४) हम चाहते हैं कि थोक व्यापारमें अधिक लाभ न उठाया जाय।

(१५) हमलोग चाहते हैं कि वृद्धावस्थामें सहायता पहुंचानेके लिये आवश्यक प्रबन्ध किया जाय।

(१६) हमलोग एक स्वस्थ मध्यश्रेणीकी सृष्टि और निर्माण, थोक व्यापारके स्थानोंका जातिकरण, और छोटे व्यापारियोंको सस्ते दरमें उनको ठेकेपर देनेका प्रबन्ध करना चाहते हैं, हमारा विचार है यह सुविधा राष्ट्रके छोटेसे छोटे और बड़ेसे बड़े नागरिकको समान रूपमें प्रदान की जाय।

(१७) हमलोग अपनी राष्ट्रीय आवश्यकतानुसार भूमिका सुधार चाहते हैं, जातीय स्वार्थोंके लिये भूमिको विना किसी क्षतिपूर्त्तिके ही जब्त कर लेनेके वास्ते कानून बनाना आवश्यक समझते हैं, भूमि ऋणों पर व्याजको हटाना चाहते हैं, और भूमिके नामपर होनेवाले सभी प्रकारके सट्टोंको दूर करना चाहते हैं।

(१८) हम उन पर अभियोग लगाना चाहते हैं जिनके कार्य्य सर्वसाधारणके हितके लिये घातक हैं। जातिके विरुद्ध रहनेवाले कमीने

अपराधियों, सूदखोरों, अनुचित लाभ उठानेवालों इत्यादिके लिये मृत्युदण्ड ही उचित होगा, चाहे वे किसी भी श्रेणी या वंशके क्यों न हों।

(१९) हम चाहते हैं कि रोमन कानून, जो कि संसारकी भौतिक व्यवस्थाको ठीक रखता है,समस्त जर्मनीके लिये एक नियमित प्रणाली द्वारा नियुक्त किया जाय।

(२०) प्रत्येक योग्य एवं उद्योगशील जर्मनको उच्च शिक्षाकी सम्भवता प्रदान करते हुए और इस प्रकार उन्नति प्राप्त कर, राष्ट्रको हमारी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणालीका पुनर्गठन करना होगा। सभी शिक्षण संस्थापनाओंके पाठ्यक्रमको व्यवहारिक जीवनकी आवश्यकताओंके अनुसार ही बनाना होगा। राष्ट्र विचार [राष्ट्र समाजवाद] का ज्ञान कराना ही विद्यालयोंका उद्देश्य होगा,और प्रारम्भसे ही छात्रकी बुद्धि में इसे स्थान दिलानेकी चेष्टा करनी होगी। हम चाहते हैं कि गरीब माता-पिताके अनमोल बच्चोंकी उन्नतिके लिये, चाहे वे किसी भी श्रेणीके क्यों न हों, राष्ट्र स्वयं ही ध्यान दे।

(२१) बच्चोंके श्रमको दूर कर,नियमबद्ध अनिवार्य जिमनाष्टिक और खेल-कूदकी वृद्धि कर और नवयुवकोंकी शारीरिक उन्नतिमें व्यस्त संस्थाओंसे सहयोग रख, राष्ट्रको माताओं और शिशुओंकी रक्षा करते हुए,स्वास्थ्यके माध्यमको उन्नतिशील बनाना होगा।

(२२) हमलोग तनख्वाहपर नियुक्त सेनाका पृथकीकरण और राष्ट्रीय सेनाका गठन चाहते हैं।

[२३] हमलोग जागृत राजनीतिक मिथ्या और प्रेसों द्वारा

उसके प्रचारके विरुद्ध नियमानुकूल संग्राम करना चाहते हैं। एक जर्मन नेशनल प्रेसके निर्माणार्थ सुविधाके लिये हमलोग चाहते हैं कि—

[अ] समाचार पत्रोंके सभी जर्मन भाषाभाषी सम्पादक और उनके सहकारी जातिके सदस्य हों;

[आ] गैर-जर्मन समाचारपत्रोंके लिये राष्ट्रसे विशेष आज्ञा प्राप्त कर लेना आवश्यक होगा। यह आवश्यकता नहीं है कि उनका मुद्रण जर्मन भाषामें ही हो।

[इ] गैर-जर्मनोंको समाचारपत्रोंमे आर्थिक सम्पर्क वा अन्य किसी भी तरहका प्रभाव नहीं रखने दिया जायेगा, और यदि इस नियमकी अवज्ञा की जायेगी तो उस समाचारपत्रका प्रकाशन बन्द कर दिया जायेगा और उस गैर-जर्मनको देशसे निर्वासित करदिया जायेगा जो उससे सम्बन्धित है।

ऐसे कोई भी समाचारपत्र नहीं प्रकाशित होसकेंगे जो राष्ट्रीयता की शुभकामना न करें। हम नियमतः ऐसी सभी प्रवृत्तियोंपर कड़ा नियन्त्रण रखना चाहते हैं जो कि कला एवं साहित्यके अन्तर्गत हमारे जातीय जीवनमें बाधक सिद्ध होती हैं और ऐसी संस्थाओंपर प्रतिबन्ध लगाना चाहते हैं जो उक्तकथित मांगोंके विरुद्ध लड़ती हैं।

[२४] हम राष्ट्रमे सभी धार्मिक श्रेणियोंकी स्वतन्त्रता चाहते हैं, जहांतक कि वे राष्ट्रके लिये खतरनाक और जर्मन-वंशके नैतिक विचारोंके विरुद्ध संग्राम करनेवाली नहीं हों।

जहांतक हमारे दलका सम्बन्ध है, यह पूर्णतः क्रिश्चियन धर्मपर निर्भर है, किन्तु अपने आपको विशेष मतयुक्त किसी श्रेणीके

साथ सम्बन्धित रखनेको बाध्य नहीं है। यह हमारे बीच और हमारे बाहर उपस्थित यहूदी भौतिकवादी प्रवृत्तिसे संघर्ष करता है,और इस बातपर विश्वास करता है कि हमारी जाति—"सर्वसाधारणका स्वार्थ उसके सामने ही है"—इसी सिद्धान्त द्वारा स्थायी स्वास्थ्य प्राप्त कर सकती है।

[२५] जो कुछ भी होरहा है उसका अर्थ यही है कि हम राष्ट्र की एक दृढ़ केन्द्रीय शक्तिका निर्माण करना चाहते हैं। समस्त रीच और उसके संगठन पर राजनीतिक दृष्टिसे केन्द्रित पार्लियामेंटका असंशयात्मक अधिकार चाहते हैं, और संघस्थित विभिन्न राष्ट्रोंमें रीचके साधारण नियमोंको प्रचलित रखनेके लिये श्रेणियों और उद्योगधन्धोंके चेम्बरोंका गठन चाहते हैं।

दलके नेता अग्रसर होनेके लिये कसम खाते है कि—चाहे उनके जीवन-त्यागकी आवश्यकता ही क्यों न पड़ जाय—वे उक्तकथित उद्देश्योंकी पूर्त्तिके लिये तन-मन-धनसे चेष्टा करेंगे।

॥ समाप्त ॥

मुद्रक—दयाराम बेरी श्रीकृष्ण प्रेस १, नारायण बबू लेन कलकत्ता।